हरा समन्दर गोपी चन्द्र

डा0 लक्ष्मीनारायण लाल

सिमरिया की षोभा बहन और

श्रीरामपुर के षिवसागर को

चिरकाल से तुमने माता–पिता, पुत्र–दुहिता के मरण को
सहा, भोग–रोग की आफतों को सहा, प्रिय के वियोग, अप्रिय
के संयोग से रोते, कन्दन करते जितने आंसू तुमने गिराए,
वह चारों समुद्रों के जल से भी ज्यादा हैं..... जबकि सच्चाई
यह है कि हर सत्य परिवर्तनषील है ।

– गौतम बुद्ध

श्रीगणेषाय नम :

सुनिए । आप इस उपन्यास, चरितगाथा, कल्पना–कथा (आदि, जो भी नाम आप इसे देना चाहें) को पढ़ने से पूर्व इस बात को गांठ बांध लें कि दरअसल यह अजीबोगरीब कथाकृति एक अप्रकाषित ग्रंथ का सारांष है ।

मन तो नहीं हो रहा है, पर बैताल पांडे को दंडनीति से डरकर यह बताने को विवष हो रहा हूं कि वह अप्रकाषित ग्रंथ पता नहीं किसका लिखा हुआ था ।

ऐसी दषा में मुझे वह मूल पांडुलिपि मिली थी कि मैं जैसे–जैसे उसके पृष्ठ पढ़ता गया, वे पृष्ठ टूट–टूटकर नष्ट होते चले गए । आप विष्वास करें या न करें, पर हुआ यही है ।

इसका मूल लेखक निष्चय की कोई आधुनिक लेखक नहीं था । इसका प्रथम अध्याय था :

श्रीगणेषाय नमः

और उसकी प्रारम्भिक पंक्तियां ष्षुरू हुई थीं गणेषवन्दना से ; सोचिए यह भी कोई तरीका है !

जेहि सुमिरत सिधिं होय
गणनायक करिवर वदन ....

पांडुलिपि के ऊपर जहां ग्रंथ का नाम और लेखक का नाम होना चाहिए था, वहां लिखा था :

यह ग्रंथ न किसी के पढ़ने के लिए है
न कहीं प्रकाषित होने के लिए ।
ऐसा जो कोई भी करेगा, उसकी सारी
जिम्मेदारी उसी पर होगी ।

तो यह जिम्मेदारी मैं सहर्ष अपने सिर–माथे ले रहा हूं । मैं दरअसल उस पूरे ग्रंथ की चोरी कर लेना चाहता था, पर यह सम्भव नहीं हुआ । इसलिए नहीं कि वह पूरी पांडुलिपि टूट–टूटकर धूल हो गई, बल्कि उस ग्रंथ की सारी रचनाषैली ही ऐसी थी जो मेरे नाम के साथ खप नहीं सकती थी । इसका चरितनायक है विक्रमादित्य, मैं कभी भी ऐसे चरित्र की कल्पना नहीं कर सकता । न मैं इसके मूल लेखक के समान विद्धान, प्रतिभाषाली, अतिकल्पनाषील हूं और न उतना निर्भय हूं, और खास बात यह कि मेरे पास वैसा ह्रदय ही नहीं है – ऐसा उन्मुक्त ह्रदय जो निरन्तर न जाने कहां–कहां मनन करता हुआ विचरण करता है ।

और मेरी सबसे बड़ी दिक्कत यह है कि मैं एक तथाकथित आधुनिक लेखक हूं जिसके पैर के नीचे अपनी कोई जमीन ही नहीं है – जो उल्टा लटका हुआ है, पूर्व और पष्चिम के षून्य आकाष में । पर उस मूल कृति का लेखक बिलकुल औघड़ किस्म का रचनाकार था जिसे किसी भी बात की परवाह न थी – न व्यवस्था की, न अपनी, न अपने आसपास के बुद्धिमान–षक्तिषाली लोगों की ।

पर मुझे तो न जाने कितने दृष्य–अदृष्य लोगों की परवाह है, चिन्ता है, तभी मेरी कल्पना मर गई है । और यही कारण है कि मैं ऐसे चरित्रों की सृष्टि ही नहीं कर सकता, जैसी सृष्टि उस लेखक ने विक्रमादित्य, बैताल पांड़े, सुगनसुन्दरी, मिस सोनिया दंडवते, नयनतारा और गोइंठा सिंह आदि के द्वारा की है ।

ऐसा लगता है, इसके लेखक ने अपना प्राचीन साहित्य, धर्म और दर्षन खूब जमकर पढ़ा है, पष्चिम के साहित्य का भी खूब मनन किया है, पर अपने पांव भारत की ही मिट्टी में गाड़े हुए ।

इस उपन्यास के नायक, विक्रमादित्य, का चरित्र एक ओर कठोर आत्म–निरीक्षण, तपस्या और कर्म–साधना का अन्यतम उदाहरण पेष करता है तो दूसरी ओर षुद्ध भारतीय मनीषा और फक्कड़पन का भी बेजोड़ चित्र है ।

मसलन विक्रमादित्य के गृहत्याग का कारण प्रेम था । वह कैसा प्रेम था, क्यों और किसलिए था, यह पढ़कर ही जाना जा सकता है ।

उस मूलकृति का कोई नाम नहीं था । हां, पांडुलिपि में बार–बार हरा समन्दर गोपीचन्दर की उक्ति आई है । इसलिए मैं इसका नामकरण कर रहा हूं :

हरा समन्दर

गोपीचन्दर

जिसका आषय यह है कि यह दुनिया, इसकी सच्चाई, एक गहरे समन्दर की तरह है जिसमें कूदने वाला है एक गोपीचन्दर । वह इस समन्दर की अतल गहराइयों में जाकर उसके यथार्थ को थहाता है और उसे बदल देने के लिए विगतज्वर होकर कर्म करता है ।

तो मैं अब सीधे आपको उस चरितनायक की मूल कहानी से जोड़ देना चाहता हूं। वैसे मेरा यह बता देना साहित्यिक धर्म ही नहीं, नैतिक दायित्व है – इसलिए भी कि धर्म, दायित्व, नैतिकता, स्वतन्त्रता मेरे लिए मात्र षब्द है – कि जैसे मैं निरी कहानी आपसे कहने जा रहा हूँ, वैसा मूल में नहीं है । मूल का पहला अध्याय है ईष्वरवन्दना और स्तुति। दूसरा अध्याय है विक्रम की वंष–परम्परा । तीसरा अध्याय है नायक की जन्मभूमि और उसकी संस्कृति । चौथा अध्याय है भारत की आजादी से पूर्व का वह गांव । पांचवां अध्याय है आबादी के बाद का भेड़िया धसान,

मनुष्य किराये का टट्टू ।
हेरी मैं तो प्रेम दिवाना चौकीदार ।
कागज के जहाज में आग ।
जनकवाटिका में छछूंदर ।
वगैरह .... वगैरह .... ।

अब आप इसीसे अनुमान लगा लीजिए । मैं तो थर–थर कांपता हुआ, अपने दांतों तले दूब दवाकर उस मूल रचना की मूल कथा अपनी बुद्धि के अनुसार कहकर मुक्त हो जाना चाहता हूँ – बुद्धि के अनुसार इसलिए क्योंकि मेरे पास सिर्फ बुद्धि ही है, ह्रदय तो ले गया कोई आधुनिक पिषाच, जिसका कोई अता–पता ही नहीं है ।

1

सुनो कलन्दर ।

विक्रम को सदा से नये से नये जीवन–दृष्यों को देखने, विचित्र चरित्रों तथा जीवन–विधियों के निरीक्षण करने का गहरा षौक था । जब वह किषोर था और उन्नीस सौ बयालीस में उसके पिता महेन्द्रप्रताप सिंह जी आजादी की लड़ाई में अंग्रेजी हुकूमत से डटकर लोहा ले रहे थे और अपने महल में स्वराजियों तथा विप्लवकारियों को षरण दे रहे थे तभी उसने अपनी यात्राएं आरम्भ कर दी थीं । तब वह नवीं कक्षा का मेधावी छात्र था । गांव, कस्बे, षहर, जंगल, नदियों और पहाड़ों में घूम–घूमकर उसने न जाने कितने अज्ञात तथ्यों को खोज निकालने वाली ऐसी कितनी ही यात्राएं तय कर डाली थीं । वह ज्यों–ज्यों बढ़ता गया, अपने निरीक्षण की परिधि का विस्तार करता गया । इतिहास, पुराण, गांव के किस्से–कहानियों में जितने भी स्थान उसकी समझ में आते थे, उनसे वह अपने–आपको परिचित कर लेना चाहता था ।

उसका अपना मकान लालगंज गांव में था, पर बाप–दादों का एक आलीषान मकान बस्ती षहर में भी था । वह पढ़ता था तब लखनऊ षहर के किंग्स हाई स्कूल में । छुट्टियों उसकी अपने गांव में ही बीतती थीं । वह हर ऐसे स्थान को जानता था जहां कोई हत्या या डकैती हुई थी या कोई भूत–प्रेत रहता था । वह आस–पास के गांवों में चक्कर लगाता और वहां के निवासियों को आदतों और संस्कारों को अनुभव कर प्रसन्न होता । साधुओं, चोर–उचक्कों, फरारियों, क्रांतिकारियों एवं बुजुर्गों से वार्तालाप करके अपनी ज्ञान–राषि को बढ़ाता था ।

उसके गांव के पास ही एक बहुत ही ऊंचा टीला था । बचपन से ही उसने सुन रखा था कि उस टीले को लोग विक्रमादित्य का टीला कहते हैं । उसने एक अमर कहानी भी सुन रखी थी कि हजारों साल पहले यह सारा लालगंज का अंचल वियाबान जंगल था। इसमें तरह–तरह के जानवर और भूत–प्रेत रहते थे । वहां दिन के समय आसपास के लड़के ढोर–डंगर चराने आते थे । एक दिन ऐसा हुआ कि एक चरवाहा दौड़ता–दौड़ता उसी टीले पर चढ़ गया । वहां पहुंचते ही उसका सारा स्वरूप ही बदल गया । वह ज्ञान–दर्षन–कला–साहित्य की बातें करने लगा । उसमें इतनी षक्ति आ गई कि वह वहीं से सारे विष्व को चुनौती देने लगा । दूर–दूर तक खबरें फैल गईं । लोगों की भीड़ लग गई । सारा जमाना वहां हाजिर । कोई भी चाहे जो प्रष्न करता, वह चरवाहा तड़ाक से सही उत्तर दे देता । बड़ी–बड़ी पंचायतें वहां लगीं और हर मसले को पूरे न्याय के साथ वह लड़का उस टीले पर बैठकर तय कर देता । पता यह लगा कि टीले के नीचे विक्रमादित्य का सिंहासन है – क्योंकि जैसे ही वह लड़का उस टीले पर चढ़कर, उसकी चोटी पर बैठता वैसे ही मानो वह साक्षात् विक्रमादित्य हो जाता, और जैसे ही वहां से नीचे उतरता वह फिर वही मामूली चरवाहा हो जाता ।

सुना जाता है, एक अंग्रेज ने उस टीले की खुदाई करनी चाही थी, पर जैसे ही उसने पहला फावड़ा चलवाया,

उसे एक काले नाग ने आकर डंस लिया । तब से इस टीले पर कोई घास तक नहीं छीलता । पर जब से इधर आबादी बसी, इस टीले का वह प्रभाव जाता रहा । लोगों का विष्वास है कि विक्रमादित्य का वह सिंहासन टीले के अन्दर से पृथ्वी के भीतर ही भीतर डोलता हुआ पहले मनोरमा नदी में गया, वहां से सरजू नदी की धार में पहुंचा और अन्ततः समुद्र के अन्दर समा गया ।

हमारे इस नायक का नाम आदित्य नारायण प्रताप सिंह था । पर उससे बचपन में खुद ही टीले पर चढ़कर अपना नाम बदल लिया –विक्रमादित्य सिंह । वह तब से अक्सर उस टीले की चोटी पर खड़ा होकर जहां तक उसकी दृष्टि जाती, अपलक देखता और चकित रह जाता कि जिस पृथ्वी पर वह रहता है, वह कितनी विस्तृत और विचित्र है ।

अवस्थानुसार उसकी निरीक्षण–वृत्ति बढ़ती गई । देष–विदेष की समुद्री एवं स्थलीय यात्राओं, साहसिक–दुस्साहसिक कार्यों का वर्णन करने वाले ग्रंथ उसे प्रिय लगने लगे । महाभारत के युद्ध और उसके चरित्र उसे अत्यन्त आकर्षक लगे । प्राचीन भारत का इतिहास, उसकी संस्कृति, वीर योद्धा उसके आदर्ष हो गए । बी0 ए0 तक आते–आते उसने अपना सारा क्लासिक साहित्य पढ़ डाला और बी0 ए0 में तीन बार फेल हुआ । पर उसके आंतरिक आनन्द की कोई सीमा नहीं थी । उसे धीरे–धीरे विष्वास हो गया कि प्राकृतिक दृष्य में भव्य, मानव–गरिमा में श्रेष्ठ और सुन्दर, षिव और सत्य की खोज के लिए किसी भी भारतवासी को अपना यह महान देष छोड़कर अन्यत्र जाने की आवष्यकता नहीं ।

उसे पक्का विष्वास हो गया कि उसकी मातृभूमि समस्त जीवनपूर्ण संभावनाओं से परिपूर्ण है । उन्नीस सौ तैंतालीस में जब उसके पिता की मृत्यु उस अंग्रेज कलक्टर जान मारेस की पिस्तौल की गोली से हुई और उनके मुंह से तब भी वही षब्द निकला, भारतमाता की जय – तब से, उसी क्षण से, विक्रम की आस्था बन गई कि भारतवर्ष अपने संचित कोषों में सारी दुनिया से सबसे ज्यादा समृद्ध है । इसके ध्वंसावषेष भी अतीत युगों की मानव–जययात्रा के जीवंत उदाहरण हैं और इसका प्रत्येक ह्रासषील काल–खंड भी स्वयं मे एक गाथा है ।

अर्थात् , संक्षेप में, विक्रम का स्वभाव ऐसा बन गया कि वह अपने वर्तमान के रोजमर्रा यथार्थ से पलायन करके अतीत की छायामयी महानताओं में स्वयं को डुबा देने के लिए लालायित रहने लगा ।

उन्नीस सौ सैंतालीस में भारतवर्ष आजाद हो गया पर विक्रम बी0 ए0 नहीं पास हो सका । वह जब भी किसी सवारी को देखता – मोटरसाइकिल, रेलगाड़ी, तेजभागती हुई कार, या उड़ता हुआ हवाई जहाज, या पानी में चलती हुई नौका, या कोई दौड़ता–भागता हुआ यात्री – तब वह मन ही मन न जाने कहां की एक अटपटी कविता गुनगुनाने लगता :

हे यात्री, हे यान ! हे मुसाफिर, हे यान !
मैं पुकारता हूं तुमको इस सागर मध्य सुजान
मैं आऊंगा तुम्हारे पास
देखूंगा क्या है तुम्हारे पास
कहां की यात्रा तुम हो करते
किसका तुम प्रक्षेपण करते
क्या गन्तव्य तुम्हारा है और क्या है लक्ष्य महान् ?
हे यात्री, हे यान ! हे मुसाफिर, हे यान ··· !

ऐसी ऊटपटांग कविता नायक के मन में क्यों उपजी, इसके विष्लेषण के लिए उसके पिता और पितामह के जीवन में घटी दो–एक अतिमहत्त्वपूर्ण घटनाओं को यहां बता देना बहुत ही जरूरी है – खासकर एक ऐसी ऐतिहासिक घटना, जिसकी चपेट में सीधे विक्रम को ही आ जाना पड़ा ।

अठारह सौ सत्तावन की बात है । अंग्रेजों के खिलाफ जंग छिड़ी थी । एक नवाब साहब, अंग्रेजों की सेना और हुकूमत से अपनी बेगमों को महफूज रखने के लिए उन्हें पालकियों में बिठाकर सरजू पार भिजवा रहे थे । मगर कमाल है उस वक्त के अंग्रेजों का। उन्हें पता चल गया कि फलां–फलां नवाब अपनी दो सबसे ज्यादा हसीन और खास बेगमों को बस्ती से टांडा वाली सड़क से फैजाबाद भेज रहा है। षाम के चार बजने वाले थे । तभी नगर बाजार के पास पंचमइया पोखरे के निकट चार अंग्रेज घोड़े पर चढ़े हुए आए और लगे मारने और लूटने नवाब के सिपाहियों और पालकियों को । बेगमों का आर्तनाद चारों ओर हवा में फैलने लगा । अंग्रेज सिपाहियों को देखकर बाजार के लोग घरों के भीतर बन्द हो गए। मगर कमाल देखिए – उसी वक्त वहां नायक के पितामह पषुपतिनाथ प्रताप सिंह घोड़ा दौड़ाते हुए उधर से ही निकले और अन्याय–बदतमीजी देखकर उनका खून खौल उठा ।

तलवार खींच ली और लड़ाई षुरू । देखते ही देखते उन चारों अंग्रेजों के राम नाम सत्य । बेगमें बाइज्जत लालगंज की हवेली में लाई गईं । जब लड़ाई खत्म हुई तो पषुपतिनाथ सिंह जी बेगमों को फिर उसी पालकी में बिठाए नवाब के पास हाजिर। नवाब ने सिंह को गले लगा लिया और हाथ जोड़कर बोले – इस दायनतदारी और इंसानियत के लिए आपको एक निषानी देना चाहता हूं । बोलो, कबूल है ? सिंह साहब के मुंह से निकल गया – जी हां, षोक से । और हुआ यह कि नवाब ने उन दोनों बेगमों में से एक बेगम पषुपतिनाथ सिंह को दे दी ।

उस बेगम का नाम था जहांआरा परवेज । सिंह साहब ने बाकायदा उससे षादी करके उसका नाम रखा अरून्धती परवेज । सिंह साहब की पहली धर्मपत्नी का नाम था प्रेमलता देवी । उनको तब तक कोई बाल–बच्चा न था, और भगवान की कृपा देखिए – बेगम से षादी करते ही दोनों पत्नियां गर्भवती हो गईं । प्रेमलता ने जन्म दिया हमारे नायक के पिता – कुंवर महेन्द्रप्रताप सिंह को और अरून्धती परवेज ने जन्म दिया नायक के चचा जान – कुंवर अर्जुन सिंह परवेज को ।

दोनों भाई जब सात–आठ साल के हुए तब उन्हें सुनाई पड़ने लगा कि लोग–बाग कह रहे हैं कि अर्जुन सिंह परवेज मुसलमान मां का लड़का है, इसलिए यह हिन्दू नहीं है । इस बात से उस बचपन में भी कुंवर महेन्द्रनाथ के तन–बदन में आग लग जाती और गुस्से में आकर वे गांव गढ़ी के लोगों को गालियां सुनाने लगते – बद्दिमागो, कैसा हिन्दू, कैसा मुसलमान : हम सब भारतवासी हैं, इंडियन । समझे, या जूते से समझाऊं ?

अर्जुन सिंह परवेज बचपन से ही बड़ा समझदार था । उसने कहा – भाई, इसमें इतने गुस्से की क्या जरूरत ! यह सही है कि मैं मुसलमान मां और हिन्दू पिता की सन्तान हूं । मैं षुद्धि करा लेता हूं ; बात खत्म हुई । सो एक दिन दोनों भाई गए एक ठाकुरद्वारे में । पुजारी बड़ा कट्टर सनातनधर्मी था । उसने झाड़ दिया – जाओ, यहां षुद्धी–फुद्धी नहीं होती । फिर दोनों षिव मंदिर, नारायण मंदिर, राम मंदिर, कृष्ण मंदिर गए – सबने अर्जुन सिंह परवेज को हिन्दू सनातन धर्म में लेने से इनकार कर दिया । अन्त में दोनों भाई आर्यसमाज में गए – वहां झट अर्जुन हवनकुंड के पास बैठकर मंत्र पढ़ता हुआ अग्नि में स्वाहा डाल रहा था, उस समय महेन्द्रप्रताप गुस्से में हिन्दू धर्म के खिलाफ अनाप–षनाप बक रहा था।

बीस साल की उम्र तक आते–आते दोनों भाई स्वाधीनता–संग्राम में कूद पड़े । स्वदेषी आंदोलन के दिन थे । खादी के कपड़ों को केसरिया रंग में रंगकर दोनों भाई पहनते और तिरंगा झण्डा लेकर अंग्रेजों के खिलाफ भाषण देते, और गांव–गांव में घूम–घूमकर एक स्वर में गाते :

सिर बांधे कफनियां हो
षहीदों की टोली निकली ...

जेल जाते, पुलिस के डंडे खाते और सत्याग्रह करते । एक दिन दोनों भाइयों को अलग–अलग दिव्य दृष्टि प्राप्त हो गई । महेन्द्रप्रताप को प्रकाष मिला कि प्रेमानुभूति के बिना राष्ट्रानुभूति अपूर्ण है । और अर्जुन सिंह परवेज को लगा कि ब्रह्मचर्य ही जीवन है तथा भारत की बुनियादी समस्या है भोजन की कमी । सो अर्जुन सिंह ने स्वतंत्रता–संग्राम से सन्यास लेकर एक ओर आलू की खेती षुरू कर दी और दूसरी ओर मुर्गीपालन षुरू किया । दस बीघे जमीन आलू की खेती करने में लग गई और एक बीघे में चारों ओर से बाड़ा लगाकर स्वदेषी मुर्गियों का फार्म लगा दिया गया ।

उधर महेन्द्र प्रताप सिंह घोड़े पर सवार, हाथ में तिरंगा झण्डा लिए अपनी प्रेमिका की तलाष में निकल गए । कुआनो नदी के किनारे महेष्वरनाथ मंदिर के पास से गुजरते हुए उन्हें देखा कुंवरि चन्द्रप्रभा ने । वह सखियों सहित वहां षिव की पूजा करने आई थी। किस्सा बड़ा लंबा है, मगर असल बात यह है कि दोनों एक–दूसरे को देखते ही प्रेमपाष में बंध गये । महेन्द्र ने अपने गले का हार कुंवरि चन्द्रप्रभा के गले में डाल दिया और जयजयकार कर उठे – भारत माता की जय ! प्रेम तो गहरा हुआ, पर षादी में बड़ी ही कठिनाइयां हुईं । चन्द्रप्रभा रूद्रपुर के बाबूसाहब की इकलौती बेटी थीं । रूद्रपुर के बाबू लोग अंग्रेजों के बहुत बड़े खैरख्वाह थे – इक्यावन गांव माफी में मिले थे अंग्रेजों से । सो अंग्रेजों के दुष्मन पषुपतिनाथ के परिवार में कुंवरि का ब्याह नामुमकिन । पर वाह रे महेन्द्रप्रताप सिंह ! उन्होंने रूद्रपुर की कोठी के सामने सत्याग्रह किया, भूख हड़ताल की – सोलह दिन का आमरण अनषन । और अन्त में विजय हुई उन्हीं पवित्र प्रेमियों की । भारतमाता की जय–जयकार करते हुए महेन्द्रप्रताप जी अपनी प्रिया पत्नी को अपने घर ले आए और एक ही वर्ष बाद कुंवरि चन्द्रप्रभा के गर्भ से हमारे नायक – विक्रम का जन्म हुआ।

षहर की लिखाई–पढ़ाई छोड़कर विक्रम अपने गांव लालगंज की हवेली में रहने लगा । चचाजान – अर्जुन सिंह परवेज की उमर सत्तर साल की हो गई थी, पर आलू की खेती और मुर्गीपालन में उनकी दिलचस्पी किसी तरह भी कम नहीं हुई थी । विक्रम उन्हें चच्चू कहता था और चचाजान को नित्य अखबार पढ़कर सुनाता था । अखबार पढ़कर दूसरों को सुनाने की आदत विक्रम को बचपन से ही थी । एक बार वह अखबार पढ़ रहा था, और सामने बैठे उसके पिताजी धारोधार रो रहे थे । उस अब तक याद है, उसने तब पिताजी से पूछा था – 'आप क्यों रो रहे हैं ?' वह फफककर उसे अंक से लगाकर बोले थे – 'बेटा, लालाजी (लाला लाजपत राय) को अंग्रेजों ने बंदूकों के कुन्दों से पीट–पीटकर मार डाला ।' 'क्यों बाबू ?' फिर पिताजी ने वह पूरा संघर्ष का इतिहास बताया था । कैसे–कैसे नाम उसके बाल–हृदय पर अंकित होकर अद्‌भुत संस्कार देने लगे थे – गोखले, तिलक, गोपीनाथ वारदोलोई, विपिनचन्द्र पाल, अरविंद, गांधी, मोतीलाल नेहरू, रानाडे, मोहम्मद अली, षौकत अली, सरोजिनी नायडू, दादाभाई नौरोजी .... ।

उसे अब तक नहीं भूला है – पिताजी उस दिन फिर रोए थे । देष की युवा पीढ़ी के नायक सरदार भगतसिंह को लालाजी की मौत का बदला लेने के अपराध में फांसी पर लटका दिया गया था ।

यह कथा बहुत लंबी है । हां, इतना बता देना जरूरी है कि विक्रम ने अपने पिता के बलिदान के बाद जब उनकी व्यक्तिगत आलमारी खोली तब उसे एक अजीब पुस्तक मिली थी – क्रांतिकारी रामप्रसाद बिस्मिल की आत्मकथा और काकोरी षडयन्त्र के बारे में कुछ हस्तलिखित सामग्री । विष्वास कीजिए, तब विक्रम केवल छठी कक्षा का छात्र था ।

चौदह अगस्त उन्नीस सौ बयालीस को । ठीक ग्यारह बजे पिताजी को अंग्रेज ने गोली मारी थी और ठीक सोलह अगस्त को विक्रम अपनी नवीं कक्षा की पढ़ाई छोड़कर 'भारत छोड़ो' आन्दोलन में कूदा था । डेढ़ वर्ष की सख्त सजा भोगकर जब वह जेल से निकला, उसके बाद वह घूमता ही रहा – पूरा राजस्थान, मध्यभारत, बिहार, बंगाल, न जाने कहां–कहां ।

यह भी कथा बहुत लम्बी है । और पहले की है – अब आगे बढ़कर मूल कथा पर आ जाना चाहिए ।

देष आजाद हो गया था । विक्रम अपने गांव में चुपचाप पड़ रहता ।

तभी उसके जीवन में एक घटना घटी । प्रधानमन्त्री जवाहरला नेहरू आए थे बस्ती में – कांग्रेस–एलेक्षन के लिए भाषण देने । अपार जनता थी कचहरी मैदान में उन्हें सुनने के लिए । उन्होंने कहा – कांग्रेस की जीत जनता की जीत है । कांग्रेसी हुकूमत देष की उन्नति है .... जनता का राज है। भीड़ में खड़ा विक्रम एकाएक हंस पड़ा । एक बार नहीं, बार–बार हंसने लगा । पुलिस अधिकारियों ने आकर विक्रम को पकड़ लिया और उसे खींचकर बाहर ले गए । मगर उसके साथ लालगंज की तरफ से आए हुए गांव के तमाम लोग बाहर आ गए । विक्रम उनके सामने धड़ल्ले से बोलने लगा :

'भाइयो, अपने इतिहास को समझो । यहां की हिन्दू–मुसलमान दोनों जनता कितनी अभागी है, इसे आंख खोलकर देखो । तो हां, मैं कहता हूँ, देखो अपनी आंखों से सच्चाई को, खुद देखो ठंडे दिल–दिमाग से । किसी के भी बहकावे में मत आओ ! भारत का आधुनिक इतिहास क्या है, इसे समझो .... ।'

पुलिस अधिकारियों ने समझा, यह कैसा बुद्धिमान है – बोलता ही चला जा रहा है नेहरू जी के सामने – इसकी यह हिम्मत ! उसे खींचकर कचहरी से दूर पुलिस चौकी पर ले आए और उससे कहा गया – चुप होता है या हवालात की हवा खाएगा ? पर उसके साथ थी गांव की जनता, दो ढाई सौ लोग । विक्रम हंस पड़ा – जिस मुल्क में बोलना भी जुल्म है वह मुल्क आजाद कहां है ! बात सही थी।

पर पुलिस वाले भी सही थे ।

और वह नेहरूजी भी सही थे, जो बस्ती षहर में आए थे ।

नेहरूजी की सभा समाप्त हो गई । लोग अपने–अपने घर जाने लगे । षाम के पांच बजे थे । जाड़े के दिन । इक्के के अड्डे पर एक पुलिया पर चढ़कर विक्रम बोल रहा था और लोग उसके आसपास घिरते जा रहे थे ।

'भाइयो, भारत का आधुनिक इतिहास क्या है ? दरअसल यह है कांग्रेस का इतिहास । और कांग्रेस क्या है ? कुछ चंद लोग जिन्होंने अंग्रेजी हुकूमत से लड़ाई करके उन्हीं अंग्रेजों में अपने–आपको मिला दिया । अर्थात् वही अंग्रेज बन बैठे हमारे लिए । आप थोड़ा और पीछे जाएं तो इसके रहस्य का

पता चलेगा । आपने कभी देखा है पानी के अन्दर किसी बन्दर को ? नहीं देखा तो मैं बताता हूं, पानी के अन्दर उस बन्दर की कहानी। जरा गौर से सुनिए । हिन्दू जनता, चाहे वह पढ़ी–लिखी हो चाहे गंवार हो, उसका मन कहां रमता है ? ही–ही मत कीजिए, सोचिए । उसका मन रमता है भारत के हिन्दू युग में – चन्द्रगुप्त, अषोक, विक्रमादित्य, महात्मा बुद्ध, राम और कृष्ण में । पर सवाल यह है कि यह मन रमे कैसे ? बीच में तो है नौ सौ वर्ष का मुसलमानी इतिहास । सो हिन्दू का मन छटपटाता है – जहां से अपने–आपको जोड़ना चाहता है, वह इतना दूर है ... और असंभव है ।

'अब सुनिए मुसलमानों की बात । मुसलमान तो अपनी कल की तबारीख से जुड़ा था – पर मुसलमान नेता उन्हें छोड़कर भाग गए पाकिस्तान । अब बताओ कौन बने राजा ? देखिए, मुंह बन्द कीजिए । सिर मत खुजलाइए । हिन्दुस्तान में हमेषा राजा वह बना है जिसने पिछले राजा से अपना मन जोड़ा । मतलब, उसी में अपना रूप देखा । तो एक विषेष जाति, एक घराना आया सामने । उसने अपने–आपको एक तरफ मुसलिम संस्कृति से जोड़ा और दूसरी तरफ अंग्रेज संस्कृति से – और इस षून्य में वही राजा बन गया । क्योंकि सूने समंदर के अन्दर जो बन्दर घुसा वह यह सोचकर, पूरे विष्वास से घुसा कि आखिर इस काले, जाहिल, असभ्य मुल्क का राजा तो एक गोरे रंग का प्राणी ही हो सकता है। तालियां मत पीटिए, सिर पीटिए, जी हां .... ।

अस्कमात् उसी समय न जाने कहां से एक पत्थर आकर लगा नायक को और उसके सिर से खून बह चला । भीड़ में से किसी ने कहा – वाह, बहुत अच्छा हुआ । बड़ा कांव–कांव कर रहा था । दूसरा बोला – भाई, बोलने–बालने का काम तो नेता का था या मिनिस्टर–उनिस्टर का, यह कहां से आया ऊटपटांग बकने । हां, न सिर न पूंछ ।

पुलिस अधिकारी ने आकर धीरे से नायक के कान में कहा – झट यहां से नौ दो ग्यारह होइए, वरना आपकी पिटाई हो जाएगी ।

– मगर क्यों ?

– यह मत पूछिए ।

– और मेरे सिर का यह घाव ?

– इसे आप ही जानिए ।

– मुझे अस्पताल ले चलो । यह तुम्हारी जिम्मेदारी है, और मेरा आर्डर है । पुलिस अफसर जोर से हंस पड़ा – वाह ! बड़े आए आर्डर देने वाले ! कह दिया न, भाग जाओ यहां से । दिल्ली और लखनऊ की खुफिया पुलिस नोट कर ले गई है तुम्हारा नाम।

थोड़े ही दिनों बाद एक दूसरी घटना घटी । चच्चू ने कहा – विक्कू (विक्रम का प्यार भरा नाम), इस बार आलू की पैदावार बहुत अच्छी हुई है । गाड़ियां लदाकर षहर ले जाओ, जितना बिक सके बेच दो, बाकी यहां 'कोल्ड स्टोरेज' में रखवा दो । चचा जान जानते थे कि विक्कू इस काम को कतई नहीं जानता, मगर उन्होंने जान–बूझकर इसीलिए उसे इस काम से जोड़ना चाहा कि वह घर–गृहस्थी का कुछ काम तो करे । विक्रम का छोटा भाई उदयप्रताप सिंह खेती–बारी, घर–गृहस्थी का सारा काम अकेले सम्हालता है । उसकी षादी हुए भी पांच साल हो गए हैं । उसकी पत्नी चांद बहू न होती तो विक्रम की वृद्धा मां की सेवा कौन करता !

तो भइया, आलू–भरी तेरह बैलगाड़ियां लदाए विक्कू बाबू षहर की ओर रवाना हुए । षहर पहुंचते ही चुंगी पर गाड़ियां रोक ली गईं । साथ थे मुंषी इकबाल बहादुर । वह तपाक से चुंगी बाबू के पास बढ़े । विक्रम देखने लगा – चुंगी के आसपास सड़क की दोनों पटरियों पर माल लदे कई ट्रक खड़े हैं। कई टैम्पो, कई और बैलगाड़ियां। मतलब, भीड़ लगी है चुंगी पर, पास ही एक पेट्रोल पम्प है । एक होटल । एक चाय की दूकान । कई पान–सिगरेट की दूकानें । चुंगी का एक चौकीदार आया और बैलगाड़ी से आलू का भरा एक बोरा उतारने लगा । विक्रम ने उसे डांटा – यह क्या कर रहा है । उसने गुर्राकर कहा – जो कर रहा हूं । विक्रम ने अपने गाड़ीवान को आर्डर दिया – खबरदार, यह बोरा उतारने न पाए । फिर चौकीदार और गाड़ीवान में हाथापाई होने लगी । दूसरा चौकीदार दौड़ा । हाथापाई बढ़ गई । लोग तमाषा देखने लगे । मुंषी इकबाल बहादुर दौड़े आए । विक्रम को समझाया – चुंगी वालों को एक बोरा देना ही होता है – बिना दिए यहां काम नहीं चलता । विक्रम को बड़ी हैरानी हुई । वह चुंगी आफिस में घुस गया : वहां चुंगी क्लर्क, कैषियर और इंसपेक्टर उसका मुंह देखने लगे । उसने कहा – अपने कागजात दिखाइए – आप लोग किस तरह से चुंगी वसूल करते हैं । लोग गुर्राए :

– तुम कौन हो हमारे कागज देखने वाले ?

वह बोला – मैं आदमी हूं ।

– बड़े आए आदमी ... दफ्तर से बाहर निकलो ।

विक्रम की अवस्था करीब तीस साल की थी । बड़ा ही हृष्ट–पुष्ट षरीर, षरीर में इतनी ताकत कि किसी का कल्ला पकड़ ले तो वह धस्स से बैठ जाय । आंखों में ब्रह्मचर्य का इतना तेज कि जिसे वह घूरकर देख ले उसका कपड़ा गीला हो जाय । आवाज में इतना बल–प्रभाव कि लोगों को घिग्घी बंध जाय । सो चुंगी वालों की बोलती बन्द हो गई । उसने दफ्तर में देखा – साबुन भरा हुआ एक बक्स, मिर्च–मसाले भरी बोरियां, आलू–टमाटर, अण्डे–भरी खांचियां । एक–एक आदमी की जेबें नोटों से भरी हुईं ।

– यह सब क्या है ?

विक्रम की आवाज कांपी । चौकीदार ने तब तक पुलिस को फोन कर दिया था । पुलिस जीप वहां आ पहुंची । पुलिस इंस्पेक्टर ने कहा – चलो पुलिस स्टेषन, चुंगी कार्यालय को तूने दिन–दहाड़े लूटना चाहा ।

विक्रम बोला – जनता को तुम सब लोग दिन–दहाड़े लूट रहे हो, और ऊपर से यह झूठ ! देखो, इत्ता–इत्ता माल लूटकर यहां रखा हुआ है .... जवाब दो, यह सब क्या है ?

मुंषी इकबाल बहादुर ने पुलिस इंस्पेक्टर को अलग ले जाकर न जाने क्या कहा, पुलिस जीप चली गई । चुंगीवालों को न जाने क्या समझाया, वे लोग भी आए और बोले – हमसे गल्ती हुई, हम आपका आलू का बोरा नहीं उतारेंगे । जो कायदे से चुंगी की रकम बनी है, हमने वसूल पाई : यह लीजिए रसीद ।

– मगर तुम लोग यह गल्ती क्यों करते हो भाई ?

विक्रम का यह सवाल सुनकर सब सन्न रह गए । होटलवाला पास आया और बोला – हुजूर, ये चुंगी वाले करें भी तो क्या, बड़े ही मजबूर हैं – घूस की रकम, ये फल–फूल, सब्जियां, अंडे, मिर्च–मसाले, साबुन वगैरह ऊपर लोगों को बांटने पड़ते हैं – पुलिस इंस्पेक्टर से लेकर नगर महापालिका के अधिकारियों तक ।

फिर चुंगी पर खड़े ड्राइवर, कण्डक्टर, मुसाफिर लोग तरह–तरह की कहानियां सुनाने लगे । उधर मौका पाकर आलू–भरी गाड़ियों पर बन्दरों की सेना फट पड़ी और वे बोरे में से आलू निकाल–निकालकर खाने लगे । विक्रम ने बंदरों को देखकर कहा :

हे बन्दर !
क्या है तुम्हारे अन्दर ?
बोलो भाई गोपीचन्दर
आखिर तुममें इतनी भूख कहां से आयी !
तुम फर्क करना ही भूल गए ।
क्या है आलू क्या है चुकन्दर ?

आगे का किस्सा बहुत लम्बा था, जिसका सार–संक्षेप यह है कि षहर की मण्डी में सारी बैलगाड़ियां आ पहुंचीं और जब मुंषी इकबाल बहादुर ने देखा कि विक्रम की उपस्थिति में एक आलू भी नहीं बिक सकता, तब उन्होंने एक उपाय किया । पास ही पुरानी किताबों की दूकान थी, वहां फंसा दिया विक्रम को । वहां वह फिल्मी गानों, सस्ती चलताऊ किताबों के बीच अपनी पसन्द की कोई प्राचीन पुस्तक ढूंढने लगा । तभी उस दूकान में बुर्का ओढ़े एक युवती आई और किताबों को बड़े गौर से देखने लगी । विक्रम उसे देखकर परेषान होने लगा और जब उसकी परेषानी हद से ज्यादा बढ़ गई तब वह दूकानदार से बोला :

– श्रीमानजी, आप कृपा कर इस देवी से निवेदन कीजिए कि यह इस तरह की गन्दी पुस्तकें न पढ़े ।

दूकानदार उसकी ओर देखकर मुस्करा पड़ा ।

विक्रम फिर बोला – श्रीमानजी, आप मुस्कराइए नहीं, मैं एक गम्भीर बात कर रहा हूं । इसका बहुत बुरा प्रभाव चरित्र पर पड़ता है ।

इस बात को सुनकर दूकानदार बोला – श्रीमानजी, यह दूकान आप जैसे महापुरूषों के लिए नहीं है ।

इस बात पर बुर्केवाली बड़े ही मीठे ढंग से हंस पड़ी । विक्रम हैरान रह गया । बोला – श्रीमान दूकानदारजी, देवी को किस बात पर हंसी आई, क्या मैं जान सकता हूँ ? अब दूकानदार हंसने लगा ।

विक्रम से न रहा गया, बोला – देवी से मेरी प्रार्थना है कि यह कृपा कर बुर्का उतार दें । गर्मी के दिन हैं । इससे सेहत पर बुरा प्रभाव पड़ता है । और पढ़ी–लिखी देवियों को आजकल इस तरह का पर्दा षोभा नहीं देता ।

बुर्केवाली ने अपने चेहरे पर से जरा–सा बुर्का उठाकर विक्रम को देखा, विक्रम ने चिहुंकर अपना मुंह फेर लिया – अरे, आप तो अनिंद्य सुन्दरी हैं, आपको ये फिल्मी किताबें छूनी भी नहीं चाहिए, आपको उत्तम साहित्य पढ़ना चाहिए ।

बुर्केवाली दो किताबें उठाकर दूकान से बाहर चली गई । विक्रम ने पूछा – यह देवी कौन थी ?

– मषहूर तवायफ गौहरजान की लड़की मधुबाला ।

– ओहो, प्रसिद्ध नगरवधू देवी गौहरजान की सुपुत्री । क्या करती है यह देवी ?

– ब्रह्मचारिणी ।

– ब्रह्मचारिणी ! वाह ! तो भाई, मैं देवी का गायन सुनकर धन्य होना चाहता हूँ ।

– वह है सामने कोठा, पीछे गली से रास्ता है ऊपर ।

विक्रम देवी मधुबाला के लिए फल–फूल लिए गली में आया । सीढ़ियों पर चढ़ने को हुआ कि एक मुंडा आया – चाकू निकालकर गरजा – इस सीढ़ी पर चढ़ने के पहले मुझे कीमत अदा करनी है ।

– क्या है कीमत भाई ?

– एक हजार एक सौ एक रूपये !

– आप हैं कौन ?

– प्रोपराइटर ! मधुबाला कोई दूकान है – कोई इंडस्ट्री है, कोई फर्म है ? यह माजरा क्या है ? सरकार ने वेष्या–उन्मूलन भी कर दिया है, फिर यह चक्कर क्या है ?

विक्रम खड़ा–खड़ा सोचता रहा – फिर तेजी से वह सीढ़ियों की ओर चढ़ा । गुंडे ने उसे ललकारा । चाकू से आक्रमण किया । विक्रम ने उसका कल्ला पकड़कर इतनी तेजी से मरोड़ा कि वह वहीं धस्स से बैठ गया । चाकू उठाकर विक्रम ने वहीं नाली में डाल दिया और ऊपर कोठे पर चढ़ गया।

अब वह मधुबाला सामने खड़ी थी । परम सुन्दरी । स्नान कर सफेद वस्त्र पहने हुए । भेंट स्वीकार करते हुए उसने बड़े ही अदब से पूछा – हुजूर के बारे में क्या मैं कुछ जान सकती हूं ?

– देवी, मैं एक सामान्य आदमी हूं ।

– ऐसा हो नहीं सकता । आप जैसा पुरूष मैंने आज तक नहीं देखा ।

– बहुत–बहुत धन्यवाद आपको । मैं आपका गायन सुनकर जल्दी ही यहां से लौट जाना चाहता हूँ । कृपा कर षुरू कीजिए । मधुबाला ने मधु–भरे स्वर में कहा – हुजूर, आप मेरी तरफ तो देखिए । विक्रम ने सिर झुकाकर कहा – क्षमा हो देवी, मैं आपका गायन सुनने आया हूं , आपका मुख देखने नहीं।

मधुबाला बोली – पर हुजूर, बिना देखे सुना ही कैसे जा सकता है ! विक्रम ने गम्भीरता से कहा – मैं ब्रह्मचारी हूं देवी !

– आपकी उमर ?

– तीस वर्ष ।

– ब्रह्मचर्य की उमर तो ज्यादा से ज्यादा पचीस वर्ष तक ही होती है ।

– हां, देवी, थोड़ी उमर ज्यादा हो गई है, तो क्या ?

इस तरह दोनों में बातें हो रही थीं । मधुबाला विक्रम के मुख पर से एक क्षण के लिए भी अपनी आंखें नहीं हटा पा रही थी । जैसे वह अपनी जिन्दगी में पहली बार कोई पुरूष देख रही हो ।

तभी उस कमरे में उस गुंडे के साथ वर्दी पहने दो सिपाही आए और बोले – चलो कोतवाली ।

– बात क्या है श्रीमान ?

– वहीं पता चलेगा ।

विक्रम उनके साथ कोतवाली आया । षाम हो चुकी थी । सिपाही उसे हवालात में बन्द करने चले । उसने सबको झाड़ते हुए कहा – कहां हैं कोतवाल साहब ! उन्हें मेरे सामने हाजिर करो ।

विक्रम का तेज स्वर देखकर सारे सिपाही डर गए । वह वहीं बरामदे में कुर्सी पर बैठा हुआ कोतवाल की प्रतीक्षा करने लगा । रात के दस बजे कोतवाल साहब आए । दीवान ने चार्जषीट पढ़कर सुनाई – यह फलां–फलां षख्स षराब के नषे में मधुबाला के कोठे पर पागलों जैसी हालत में पाया गया। इसने खुदाबख्ष को, जो कि मधुबाला का गार्जियन है, जान से मार डालने की कोषिष की । मधुबाला को आज षाम फैमिली प्लानिंग के एक कल्चरल षो में षरीक होने के लिए जाना था, इसने उसे जाने से रोका और इस तरह फैमिली प्लानिंग के राष्ट्रीय कार्यक्रम में रूकावट पैदा की ....

कोतवाल ने गुस्से से कहा – इस बदमाष को हवालात में बन्द कर दो । सिपाही बोले – हुजूर, यह षख्स इतना

ताकतवर और निडर है कि इसे हवालात में बन्द करना मुमकिन नहीं है !

– मारो इसे !

मगर किसी सिपाही की हिम्मत न हुई, कोतवाल साहब बढ़े कि विक्रम ने उन्हें इतनी तेजी से डांटा कि वह बाथरूम भागे ।

पूरी कोतवाली उसे घेरे हुए खड़ी थी । विक्रम ने कहा – श्रीमानजी, अपने सिविल सर्जन को बुलाइए । वह मेरी परीक्षा लें कि मैंने षराब पी है या नहीं ।

– कौन है तू आर्डर देने वाला ?

.... मैं .... मैं चौकीदार हूं इस देष का और पहरेदार भी । बुलाओ सिविल सर्जन को ?

सिविल सर्जन आए । परीक्षा ली गई और सिविल सर्जन ने सर्टिफिकेट दे दिया कि इसने षराब पी है । विक्रम ठहाका मारकर हंस पड़ा ।

सुबह हुई । मुंषी इकबाल बहादुर सारा आलू बेचकर विक्रम को ढूंढते–ढूंढते कोतवाली पहुंचे । कोतवाल साहब से मिले । बताया – हुजूर, यह मेरे मालिक श्री विक्रमादियत्य सिंह जी हैं – बेहद षरीफ, ईमानदार आदमी ।

कोतवाल साहब बोले – हां भाई, इस वक्त इसका चेहरा देखकर मुझे भी ऐसा ही लगता है !

– रात को मेरा चेहरा देखकर क्या लगा था ?

विक्रम के इस सवाल पर कोतवाल ने कहा – बात यह है जी, इस मुल्क में पुलिस को जो ट्रेनिंग दी जाती है उसके मुताबिक हमें यहां हर आदमी अपराधी, गुंडा, बदमाष दिखता है । अगर हमारे सामने ईष्वर भी आए, तो जब तक ईष्वर अपने बारे में यह साबित न करे कि वह दरअसल ईष्वर है, हम उसे वही अपराधी, गुंडा, बदमाष ही समझेंगे !

दिन निकल आया था । कोतवाली के सिपाहियों की ड़िल हो रही थी मैदान में । विक्रम टहलता हुआ ड्रिल इंस्पेक्टर के पास गया और उसे हटाकर खुद बोलने लगा :

पुलिस सावधान ! आराम ! सावधान !
कुड़क मार्च ।
आंख खोलकर देख
आदमी पहचान
डर मत ।
भारत आजाद
जय हिन्द
आराम । कुड़क मार्च ।
बन्दर आया
गोपीचन्दर
समन्दर देख
हरा समन्दर
चुकन्दर मत खा ।
डरता क्यों भाई, डरता क्यों ?

मुंषी इकबाल बहादुर के साथ विक्रम सिविल सर्जन की कोठी पर आया । चपरासी ने पूछा – क्या है ? क्या काम है ?

– साहब से बोलो, उनके मेहमान आए हैं .... संग–संग चाय पिएंगे ।

यह कहता हुआ विक्रम धड़ल्ले से सिविल सर्जन साहब के ड्रांइग रूम में जा बैठा । मुंषी इकबाल बहादुर चपरासी को पांच रूपये का नोट थमाकर बोले – झटपट साहब से मिला दो । मैं यहीं खड़ा हूं ।

सिविल सर्जन साहब आए और उसे देखकर घबड़ा गए । बोले – आपकी तबियत तो अब ठीक है न ?

– आपका क्या ख्याल है ?

– बात यह है कि हमें एक–दूसरे की मदद करनी पड़ती है । वरना यह हुकूमत कैसे चले ! समझ गए न ? क्या पीएंगे, चाय या कॉफी ?

– जी, मैं तो षराबी हूं ।

– अजी, क्या कीजिएगा जानकर, यह सब बड़ा समन्दर है – अनेक नाले, परनाले आकर नदी में मिलते हैं और

अनके नदियां आकर समन्दर में गिरती हैं – इसका अता–पता करना मुष्किल है ।

– क्या एक बन्दर इस समन्दर का पता लगा सकता है ?

– मैं कहता हूं इससे फायदा ही क्या होगा ?

– बन्दर फायदा–नुकसान नहीं देखता ।

यह कहकर विक्रम हंस पड़ा और सिविल सर्जन से इतनी जोर का हाथ मिलाया कि आह–आह कर उठे ।

ललगंज लौटा तो विक्रम का मन उदासी से भरता गया । मुंषी इकबाल बहादुर ने जब षहर की घटनाएं घरवालों को बताईं तो लोग विक्रम पर हंस लगे । इधर–उधर गांवों में लोग उसका मजाक बनाने लगे । वह अपने दिल–दिमाग से जितना ही लड़ता रहा उतना ही यह सत्य उस पर हावी होता रहा कि क्या एक बन्दर इस समन्दर का पता लगा सकता है ? और अगर लगा भी ले तो इससे फायदा ही क्या?

धीरे–धीरे यह विचार उस पर छा गया । वह अब पुस्तकों से भी भागने लगा । कुछ भी पढ़ना उसके लिए असह्य होने लगा । जो कुछ अब तक पढ़ा था, उसे वह बिल्कुल भूल जाए , ऐसी कोषिष करने लगा ।

घर के बरामदे में बने एक कमरे में उसने अपना डेरा लगाया और दरवाजे पर यह लिखकर टांग दिया :

(1) आराम बड़ी चीज है मुंह ढक के सोइए
किस–किसको देखिए ओ किस–किसको रोइए ?

(2) कृपया विध्न मत डालिए ।

सो अब विक्रम के केवल इतने काम थे – खाना, पढ़ना, घूमना और सोना । विक्रम की बुढ़िया मां पुत्र की इस दषा पर दिन–रात रोतीं और तरह–तरह के उपाय करतीं ; मसलन जादू–टोना झड़वाना, भूत–प्रेत का पता लगवाना, मंत्र–तंत्र–जंत्र करवाना । पर कहीं कोई फायदा नहीं ।

वह जैसे किसीसे कुछ बोलना भी नहीं चाहता । एक दिन कहीं सफर में एक बूढ़ा आदमी मिला । उसने कहा – भैया जी, स्वराज तो मिला, मगर सुराज नहीं मिला ।

इस पर विक्रम ने कहा – तो जाकर कहीं डूब क्यों नहीं मरते, सुराज नहीं मिला ! आकर तुम्हारे हाथ में कोई लड्डू–पेड़ों की तरह सुराज पकड़ा दे !

एक बार उसकी मुलाकात कहीं किसी रेलवे स्टेषन पर अपने एक टीचर से हो गई, वहां वह बहुत मजबूर होकर बोला था – गुरूजी, भारतीय इतिहास का यह दौर राजनीतिक भेड़ियाधसान और भ्रष्टाचार का दौर है । ऐसी दषा में यहां कुछ करने का मतलब है उसी भ्रष्टाचार के षड्यन्त्र में भागीदार होना । इस समय अपने को बचा के रखना क्या कोई कम काम है !

– यह तुम बोल रहे हो विक्रम !

टीचर के इस आष्चर्य के सामने तब विक्रम जैसे स्वयं के प्रति नफरत से बोला था – नहीं, इससे कहीं बेहतर है आत्महत्या कर लूं । पर इतना भी साहस नहीं है । कोई मुझे मार क्यों नहीं डालता, मेरे जीने का आखिर मतलब और प्रयोजन क्या है ?

इस तरह के विचारों, बातों और व्यवहारों से विक्रम की बूढ़ी मां, पूरा घर जितना परेषान रहता, उससे कहीं अधिकवह स्वयं आत्मदाह में जलता । और बस, बिना अन्न–पानी के पैदल यात्राएं करने लगता । जब थककर बेहद चूर हो जाता, तब दो–दो, तीन–तीन दिनों तक सोता रहता ।

विक्रम के मन–प्राण के कहीं गहरे से एक भाव उठता िकवह क्यों नहीं इस भ्रष्ट, पतित, मृतप्राय समाज, राजनीति में कूद पड़े और इसे बदल दे । पर साथ ही एक दूसरा भाव भी उठता – बिना प्रेमानुभूति के, मतलब बिना प्रेम किए कर्मवीर होना असंभव है । पहले प्रेम फिर कर्म ।

सो एक दिन विक्रम गांव के सूने मैदान में चिल्लाया – सुनो बैताल, मुझे मेरी प्रिया से मिलाओ वरना मैं फिर अपने कमरे में जाकर बन्द हो जाऊंगा । ऐसा लगता है, प्राचीन काल में जो बैताल था, वही अब इस जन्म में विक्रम हो गया है ।

गांव में रामभरोसे उर्फ बैताल पांड़े विक्रम के एक अंतरंग मित्र थे । विक्रम ने बैताल से प्रेम करने और होने का प्रष्न किया । अगर बैताल इसका कोई उपाय नहीं करते तो विक्रम अपने कमरे में बन्द हो जाएगा । फिर बैताल पांड़े ने अपना दिमाग दौड़ाय । घरवालों को समझाया कि विक्रम की किसी तरह षादी करा दी जाए । इसके लिए पूरा जाल फैलाया बैताल पांड़े ने । उन्होंने विक्रम के घर–परिवार, नाते–रिष्तेदारों की पंचायत बुलाई । उस पंचायत ने यह फैसला

किया कि अगर विक्रमादित्य ने पांच महीने के भीतर षादी नहीं की तो इसे देष निकाला दे दिया जाए ।

देष निकाला, यह दंड हमारा नायक कभी नहीं बर्दाष्त कर सकता था । पांडवों का देषनिकाला हुआ था, राम का देषनिकाला हुआ था, सुभाषचन्द्र बोस और दलाई लामा का देषनिकाला हुआ था । वह कोई भी और दंड सह सकता था, पर यह दंड नहीं । क्योंकि वह अपने देष को, इसकी मिट्टी, हवा, लोग, पषु–पक्षी, यहां तक कि यहां के भूत–प्रेतों, राक्षसों तक को प्यार करता था – उनकी असंख्य कथा–कहानियों तक को ।

फलतः विक्रमादित्य ने भरी सभा में कहा – सुनिए मेरा निर्णय । मैं सहर्ष षादी करने का वचन देता हूं । पर एक षर्त है मेरी : मैं उसी कुमारी कन्यारत्न से विवाह करूंगा जो मेरी तरह ही ब्रह्मचारिणी हो और जिसने मेरी ही तरह तब तक ब्याह न करने का संकल्प किया हो, जब तक कि उसका मनचाहा वर न प्राप्त हो । और यह तलाष मैं नहीं, आप लोगों की इच्छा है, मेरी नहीं । चाचा अर्जुन सिंह परवेज बोले – ओरे नालायक, वीर पुरूष अपनी प्रेमिका स्वयं ढूंढ़ता है ।

– नहीं चचाजान, मैं पहले ब्रह्मचारी हूं, फिर और कुछ हूं ।

– इसका मतलब क्या हुआ ?

सारी सभा चिल्लाई । बैताल पांड़े ने कहा – इसका मतलब यह है कि इसीकी तरह वह स्त्री भी हो ।

– स्त्री नहीं, ब्रह्मचारिणी, अर्थ का अनर्थ मत कीजिए ।

विक्रम ने इतनी जोर से यह बात कही कि लोग उसका मुंह देखते रह गए ।

3

सारे नाते–रिष्तेदार, हितू–सम्बन्धी ढूंढ–ढूंढकर हार गए – वैसी ब्रह्मचारिणी – मतलब हठी–कठोर कन्या कहीं न मिलती । मतलब यह कि जहां विक्रम की षादी की बात चलायी जाती, लोग ऐसे वर को अपनी कन्या देने से सौ–सौ कोस दूर भागते । सो लोग हिम्मत हार गए ।

मगर रामभरोसे उर्फ बैताल पांड़े ने हिम्मत नहीं हारी । उन्होंने बड़ी–बड़ी यात्राएं कीं । अखबारों में विज्ञापन दिए, पर कहीं कुछ काम नहीं बना । और अन्त में हारकर बैताल पांड़े मनोरमा नदी के तट पर उस प्राचीन पीपल के पेड़ के नीचे जाकर सुबह–षाम महाउच्चाटन मंत्र जाप करने लगे, जिस पर उनके विष्वास के अनुसार, भूत और प्रेतनी का एक जोड़ा रहता था ।

एक दिन मंत्र जपते–जपते आधी रात हो आई । एकाएक उन्हें सुनाई दिया, भूत–प्रेतनी आपस में प्रेमचर्चा कर रहे हैं :

भूत ने कहा – सुनती हो जी, ओ जी, इधर आवो !

– क्या है ?

– अरे मैने एक ऐसा सुन्दर पुरूष देखा है कि तुम्हें कैसे बताऊं ।

प्रेतनी ने कहा – क्या बात करते हो जी, मैंने एक ऐसी कन्या देखी है कि जिसका कोई वर ही नहीं हो सकता ।

– अजी छोड़ो, मेरे उस पुरूष के बराबर वह कन्या क्या होगी !

– अरे तुम क्या जानो जी ।

पीपल के पेड़ पर भूत और प्रेतनी आपस में लड़ने लगे और नीचे बैताल पांड़े खुषी से पागल । पीपल की जड़ पर माथा टिकाकर पांड़ेजी विनय–स्वर में बोले – हे जगदम्बा, मां काली, हिंग क्रैग मां प्रेतनी, उस कन्या का कुछ पता भी तो बोलो ?

पर कौन सुनता है बैताल पांड़े की प्रार्थना । पीपल की डालियों पर कूद–कूदकर भूत और प्रेतनी आपस में लड़ रहे थे । भूत अपने पुरूष को श्रेष्ठ बताने में लगा था और प्रेतनी अपनी कन्या को । जब सुबह होने लगी तो भूत और प्रेतनी में समझौता हुआ कि एक रात पुरूष और कन्या को मिला दिया जाए। जो एक–दूसरे से न झुके वही श्रेष्ठ ।

बैताल पांड़े मारे खुषी के फूले न समाए । दौड़े हुए आए विक्रम के पास और भूत–प्रेतनी के पूरे प्रेमालाप को खूब नमक–मिर्च लगाकर बताया । फिर एक रात गजब हो गया । आधी रात के समय अचानक किसी स्त्री के षरीर स्पर्ष से विक्रम की आंख खुल गई । उसने प्रकाष करके देखा – उसके पास कोई परम सुन्दरी निद्रामग्न है । वह मंत्र मुग्ध उसकी रूप महिमा और पवित्र यौवन को निहारता रहा । अचानक उसे ध्यान आया – ब्रह्मचारी का स्वभाव यह नहीं

है । वह तत्काल मुंह फेरकर मानवचरित्र और हिन्दू–पराक्रम के बारे में ध्यान करने लगा और अलग हटकर न जाने कब खो गया । थोड़ी ही देर बाद उस कन्या की आंख खुली । वह भी अपने–आपको वहां पाकर आष्चर्य–चकित रह गई। वह लाज, संकोच और भय से थर–थर कांपने लगी – तभी उसकी दृष्टि उस निद्रामग्न पुरूष पर पड़ी और जैसे उसकी सारी सुधि–बुधि खो गई । एकटक उसे निहारती रही । और धीरे से अपनी अंगूठी पुरूष को पहना दी और पुरूष की अंगूठी स्वयं पहन ली ।

प्रातःकाल दोनों की जब आंख खुली तो दोनों अलग–अलग अपने निवास पर । मगर दोनों आष्चर्यचकित – यह हुआ कैसे ? अपनी–अपनी अंगूठी न देखकर दोनों विरह–व्याकुल । प्रेमाकुल दोनों आहें भरने लगे । जिसे ही वे अपनी प्रेम–सच्चाई बताते, वही हंसने लगता । पर अपनी आंखों देखी बात पर वे कैसे अविष्वास करें, यही तो सवाल था ।

किसी और को न सही, बैताल पांड़े को पूरा विष्वास था, यह मिलन सही है । और चूंकि सुन्दरी ने विक्रम की उंगली में अपनी अंगूठी पहनाकर उसकी अंगूठी को स्वयं पहना है, इसलिए भूत–प्रेतनी के अनुसार दोनों में परम श्रेष्ठ पुरूष ही है ।

विक्रम को क्या पता, प्रेम इतना प्रबल हाता है । मनुष्य को इतना विवष बना सकता है । उसकी नींद गायब । सुन्दरी की अंगूठी पर नजर पड़ते ही उसकी आंखों से प्रेम के आंसू धारा–प्रवाह बहने लगते । वह लम्बी–लम्बी सांसें भरता और आह–ओह करता । इससे बुरी दषा वहां उस सुन्दरी की हुई। वह दरअसल प्रेम–दीवानी हो गई ।

यद्यपि दोनों हर क्षण आष्चर्य भी करते – यह मिलन संभव कैसे हुआ ? और दोनों के घर–परिवार वालों ने तो फैसला ही दे दिया – जरूर कहीं दिमाग की गड़बड़ी है, वरन यह असंभव भी कहीं संभव हुआ है ।

पर केवल बैताल पांड़े ही जैसे सारे रहस्य को जानते थे । वह विक्रम की अंगूठी लेकर उस सुगनसुन्दरी की तलाष में निकले (यह नाम दोनों मित्रों ने पहले से ही रख लिया) ।

बस्ती षहर ही में विक्रम के लखनऊ यूनिवर्सिटी के दिनों का एक सहपाठी मित्र था दीनबन्धु अग्रवाल, जो अब एक बहुत ही धनी और षक्तिषाली आदमी बन चुका था । नेपाल से गांजा और भांग की स्मगलिंग का बहुत बड़ा कारोबार होता था उसके यहां । अफसरों और नेताओं का समान प्रिय । एक कोठी लखनऊ में थी, महानगर में । एक बंगला था नई दिल्ली की डिफेंस कालोनी में ।

घूमते हुए बैताल पांड़े अपने बस्ती षहर में उसी दीनबन्धु से टकरा गए । विक्रमादित्य के बारे में पूछते ही पांड़े ने बताया कि विक्रम षादी करने जा रहा है ।

– अरे उसके लिए कोई कन्या भी मिली ?

– मिल तो गई है, पर ढूंढ रहा हूं ।

– मिल गई है, फिर भी ढूंढ .... यह क्या तमाषा है ?

फिर बैताल पांड़े ने थोड़ी–सी बात बताई और दीनबन्धु को बड़ा मजा आया । मजाक–मजाक में ही उसके मुंह से निकला – हां, एक ऐसी जिद्दी और हठी लड़की मुझे सुनने में आई है । लोग उस पर फिदा हैं, पर वह भी कहती है – मैं 'ब्रह्मचारिणी' हूं ।

यह कहते हुए दीनबन्धु ठहाका मारकर हंस पड़ा ।

बैताल पांड़े उस ब्रह्मचारिणी का पता लेकर बेतहाषा भागे । उस बाजार में पहुंचकर जब उन्होंने यह देखा कि यह तो किसी नगरवधु के कोठे का पता है, तब उनके हाथ–पांव फूल गए । उन्होंने म नही मन महागायत्री मंत्र का पाठ करना षुरू किया और धड़धड़ाते हुए उसी मधुबाला के कोठे पर चढ़ गए । प्रातः का समय था । दायीं ओर के कमरे से तानपूरे पर किसी कोमल कंठ से मानो संगीत–अमृत की वर्षा हो रही थी । बैताल पांड़े वहीं फर्ष पर पल्थी मारकर बैठ गए और अपने उसी महागायत्री मंत्रपाठ में मानो समाधिस्थ हो गए । थोड़ी ही देर में गौहरजान आई और उस बैताल पांड़े को देखकर चीख पड़ी । आसपास की नगरवधुएं दौड़ीं आईं और लगी उन्हें जगाने, पर वह तो जैसे सचमुच गाढ़ी नींद में बैठे ही बैठे सो गए थे । तभी उनके कान में वही अमृतवाणी गूंजी ।

– श्रीमानजी, आप कौन हैं आंखें तो खोलिए ।

– देवि !

बैताल पांड़े आगे कुछ न बोल पाए । उस ब्रह्मचारिणी–महासुन्दरी को नतषिर प्रणाम करते हुए वही अंगूठी दे दी । अपनी वह अंगूठी देखकर मधुबाला गद्‌गद हो गई । उसकी प्रसन्नता का आरपार न रहा । उसकी आंखों से आंसुओं की धारा बहने लगी । यह सारा दृष्य देखकर सारी नगरवधुएं आष्चर्य–चकित रह गईं । फिर वे सब चांव–चांव करती हुई न जाने क्या–क्या बकने लगीं । बैताल पांड़े विजय–स्वर में तड़पे – देवियो, आप लोग कृपा कर यहां से तत्काल

निकल जाइए । विध्न मत कीजिए .... ।

हंसती हुईं सब चली गईं । मधुबाला ने बैताल पांड़े का सादर सत्कार करना चाहा । उन्होंने हाथ जोड़कर कहा देवि ! यह षुभ समाचार मुझे उस महापुरूष को तत्काल जाकर देना है । वह आपके प्रेम में उसी तरह व्याकुल है, जैसे पतंगा दीपक से प्रकाष के लिए है और प्रकाष पतंगे के लिए है ।

गौहरजान फफककर रो पड़ी – हे महाराज, कुछ मुझे भी तो बताइए, यह सब माजरा क्या है ! मेरी बेटी आज कितने दिनों से न पेट–भर खा सकी है, न नींद–भर सो सकी है । यह हर वक्त दीवानी रहकर सिर्फ आहें भरती रहती है । यह अंगूठियां कैसी हैं ? किसकी हैं ?

बैताल पांडे ने गौहरजान को सब कुछ आदि से अन्त तक बता दिया और झटपट वहीं षादी की तिथि–साइत आदि बातें भी तै कर दीं । गौहरजान का आष्चर्य अब और बढ़ गया । उन्होंने अपनी बेटी से बातें करनी ष्षुरू कीं । और अब बेटी की बातें मां को और ज्यादा आष्चर्य में डालने लगीं ।

पांड़ेजी अंगूठी बदलकर तीर की तरह बाहर निकल गए । पर मां अपनी बेटी से उलझी रही :

– बेटी, यह सब क्या है ? मैं कोई ख्वाब तो नहीं देख रही ?

– अम्मीजान, यह सारी दुनिया एक ख्वाब है ।

– वह महापुरूष है कौन ?

– मेरे स्वामी, नाथ, मेरे सब कुछ, मेरी जिन्दगी के नूर .... मेरे ईष्वर .... ।

– बेटी । डाक्टर बुलाऊं ? तेरी तबियत तो ठीक है न ?

– बिल्कुल ठीक है अम्मीजान । मैं जन्म से उन्हीं का रास्ता देख रही थी । उन्हीं के लिए इस जमीन पर आई थी ।

– मगर बेटी, यह सब कैसे हो सकता है ! हम मुसलमान–तवायफ । वह हिन्दू, इत्ता बड़ा ठाकुरों का खानदान !

– अम्मी, मैं तो तवायफ नहीं !

– मगर तू तवायफ की बेटी तो है ।

– अम्मीजान, जन्म इन्सान के वष से बाहर है, मगर उसका कर्म उसीके वष में है ।

इतना सुनकर गौहरजान को पक्का विष्वास हो गया कि उनकी एकलौती जवान बेटी का दिल और दिमाग कहीं फिर गया है । ठीक यही प्रतिक्रिया विक्रम के परिवार में भी हुई । मुसलमान तवायफ की बेटी से विक्रम का विवाह हो, यह किसीको भी सह्य नहीं था ।

अन्त में फिर वही पंचायत बैठी । विक्रम ने उस भरी पंचातय में कहा – मैं अगर विवाह करूंगा तो उसी सुगनसुन्दरी से ही करूंगा, वरना भीष्म पितामह की तरह आजन्म कुंवारा ही रह जाऊंगा ।

सुगनसुन्दरी – यह नया नाम सुनकर सब भौचक्के रह गए ।

लोगों ने पूछा – उस तवायफ की लड़की का तो नाम है मधुबाला .... यह सुगनसुन्दरी कौन है?

तब विक्रम ने बताया – सुगनसुन्दरी उसी मधुबाला का असली नाम है .... पूर्व जन्म का नाम ।

फिर वह सुगनसुन्दरी की अजीबो–गरीब सच्चाई बयान करने लगा – मधुबाला अपने पूर्वजन्म में सुगनसुन्दरी थी । वह एक ब्राह्मण–कन्या थी । उसे अपने रूप और चरित्र पर बड़ा गर्व था । इस कारण उसने एक बार किसी ऋषि का अपमान कर दिया । उस ऋषि के षाप के कारण ही उसे तवायफ के घर इस तरह जन्म लेना पड़ा ।

इस बात पर पूरी सभा हंस पड़ी और इस उत्तरषती में ऐसी मनगढ़ंत बातों पर किसीको भी यकीन न हुआ ।

तब विक्रम ने घोषणा की – जो भी हो, मैं अपनी उसी प्रिया से विवाह करूंगा – चाहे जो हो जाए ।

और ऐसा ही हुआ । दोनों परिवारों के लोगों के तमाम विरोधों के बावजूद निष्चित तिथि और लग्न के अनुसार विक्रम अपने साथी बैताल पांड़े को लिए हुए उस मुहल्ले में घुसा । संध्या समय । अप्रैल महीने के अन्तिम दिन । गले में पुष्पहार डाले हुए और हाथ में जयमाला लिए हुए विक्रम उस गली में दाखिल हुआ । संगीत के नाम पर गली के तमाम कुत्ते पूरी आवाज में भौंक रहे थे । और बाराती के नाम पर मोहल्ले के तमाम छोटे–छोटे बच्चे उनके साथ चलते हुए एक स्वर में जय–जयकार करते हुए बोल रहे थे :

विक्रम अंकल की षादी होके रहेगी ।
जो हमसे टकराएगा
चूर–चूर हो जाएगा ।
बारात में षामिल होना

हमारा जन्मसिद्ध अधिकार !
चुपके–चुपके कुछ न होने देंगे ।
मिठाई लेकर रहेंगे
चाहे टाफी ही मिले ।
होरी हप्प – होरी हप्प !

अपने कोठे पर सुगनसुन्दरी दुल्हन बनी, हाथों में जयमाला लिए, अपने प्रियतम के लिए मानो अनन्तकाल से प्रतीक्षा करती हुई खड़ी थी । विक्रम जैसे ही ऊपर कोठे पर आया, बैताल पांड़े ने षंख–ध्वनि की ओर दूल्हा–दुल्हन ने एक–दूसरे के गले में जयमालाएं डालीं । बैताल पांड़े ने झटपट वहीं गेंहूं के आटे से वेदी बनाकर बीच में अग्नि जला दी । दूल्हा–दुल्हन की षादी के मंत्र पढ़े जाने लगे । अग्नि के चारों ओर दूल्हा–दुल्हन ने षपथ ली – जीवन–पर्यन्त एक–दूसरे के प्रति प्रेम, सच्चाई और त्याग करने के लिए । यह सारा दृष्य देखकर अन्त में गौहरजान से न रहा गया । वह रोती हुई आई और दूल्हा–दुल्हन के हाथों को पकड़कर दुआएं देने लगीं । दौड़कर अपना बक्सा खोला – पूरी जिन्दगी की कमाई के नाम पर उसमें एक सोने की नथ थी और सात रूपये । उसे लिए हुए वह बाहर जाने लगीं। विक्रम ने रोक लिया ।

– देवि, आप कहां जा रही हैं !

– बेटे, अपनी बेटी की षादी में मुझे कुछ तो करना ही है ।

– जी नहीं, दिखावे की चीजों से हमारा कोई सरोकार नहीं । आप हमें आर्षीवाद दीजिए । आपने हमें अपना कन्या–रत्न दिया, इससे ज्यादा मुझे और क्या चाहिए ?

विक्रम की यह बात सुनकर गौहरजान मुंह निहारती रह गई और यह स्वप्न नहीं सच्चाई है, इस पर गौर करने लगीं । थोड़ी देर बाद बैताल पांड़े गौहरजान की षान्ति के लिए उन्हीं सात रूपयों की मिठाई ले आए – गट्टा बताषा । सारे बच्चों को मिठाई बांटी गई । खुषी से पागल गौहरजान जब वही मिठाई लेकर आसपास के कोठों पर देने गई तब सारी तवायफों के मुंह से सिर्फ एक ही बात निकली – हाय गौहरजान ! किस सिरफिरे के हाथ अपनी ऐसी खूबसूरत बेटी के हाथ इस तरह दे दिए ? तब गौहरजान को गुस्सा आया और वह तड़पकर बोलीं – मेरी बेटी की खुषी ही मेरी खुषी है । उसने मेरी तरह तवायफ बनने के लिए नहीं, एक षरीफ बेटी – बहू बनने के लिए इस कोठे पर जनम लिया था ।

दो घन्टे बाद अपनी दूल्हन को इक्के पर बिठाए विक्रम प्रसन्नमुख उस षहर के बाजार से गुजरने लगा । साथ में अपनी साइकिल पर सवार बैताल पांड़ेजी चल रहे थे । सारा बाजार वह अनोखा दृष्य देखने लगा । लोगों के मुंह से तरह–तरह की बातें निकल रही थीं । पीछे–पीछे ष्षोर मचाते हुए बच्चे दौड़ रहे थे – होरी हप्प, होरी हप्प ।

विक्रम के कान, आंख, मन, प्राण में अपनी प्रिया के अलावा और कुछ भी न था । उन स्थानों पर न कोई किसीकी आवाज ही पहुंच रही थी, न और कुछ दिख और महसूस ही हो रहा था । साथ में चलते हुए पांड़ेजी बिल्कुल विजयी योद्धा की मुद्रा में साइकिल चला रहे थे । एक जगह एक बैल से लड़ते–लड़ते बचे थे और सामने एक पेड़ से जा टकराए । साइकिल से ज्यादा उनके घुटनों में चोट आई थी । पर यह मानकर कि उस पेड़ में जरूर कोई भू–पिषाच होगा जिसने पांडे को बधाई देनी चाही होगी, वह खुषी–खुषी उस दूल्हा–दुल्हन की दिव्य सवारी के साथ साइकिल चलाते रहे ।

कहीं आधी रात होते–होते वह लालगंज दिखाई पड़ा । ऐसे वक्त दूल्हा–दुल्हन का गृहप्रवेष उचित होगा, इस प्रष्न पर दोनों मित्र विचार करने लगे । चारों ओर चांदनी बिछी थी । इतने में दूर सामने से साइकिल चलाते हुए कुछ लोग दिखे । पांड़े ने कहा – विक्रम । संभल जाओ, षायद कुछ षत्रु लोग हमपर आक्रमण करने आ रहे हैं ।

यह कहकर पांड़ेजी साइकिल में हवा भरने का पम्प हाथ में ताने हुए इक्के के पीछे खड़े हो गए। विक्रम उस बरसती चांदनी में अपनी सुगनसुन्दरी की रूप–सुधा का पान कर रहा था । एकाएक उसकी दृष्टि अपने बेतरह डरे हुए दोस्त बैताल पांड़े पर पड़ी । उसने मुसकराकर पूछा :

– क्या है ? क्यों इस तरह घबड़ाए हुए हो ?

– सावधान, षत्रु लोग षायद हमपर आक्रमण करने आ रहे हैं ।

– नहीं, हमपर कोई आक्रमण नहीं करेगा । हमें सबके प्रति प्रेम है । हम इतने डरपोक–भयभीत नहीं कि सबको अपना षत्रु समझें !

यह कहकर विक्रम अपनी प्रिया को एकटक निहारने लगा । सुगनसुन्दरी लाज, षील और सौन्दर्य के भार से इक्के पर बैठी–बैठी झुकी जा रही थी । साइकिल पर सवार लोग इक्के के पास आकर अचानक रूक गए ।

बैताल पांड़े इक्के के नीचे छिपकर दहाड़ पड़े – सावधान, कौन हैं आप लोग ? साइकिल वाले लोग हाथ जोड़ते हुए ही–ही–ही करते हुए बोले – हम कांग्रेस पार्टी के कार्यकर्त्ता हैं । हैं जी । वोट कांग्रेस को ही दीजिए ।

बैताल पांड़े बाहर निकल आए । विक्रम के सामने खड़े वे एलक्षनबाज, बस चांव–चांव बोलते ही जा रहे थे । एक ने कहा – विक्रम जी, आप तो इतने विद्धान, साहसी और निर्भीक हैं, आपसे राष्ट्र की बड़ी आषाएं हैं, आप जैसे महापुरूष से । आप कांग्रेस का साथ दें ।

दूसरा बोला – आप कांग्रेस की विजय के लिए इन गांवों में भाषण दें ।

तीसरा बोला – आपके विचारों से जनता प्रभावित होगी ।

बैताल पांड़े गरजे – जाओ, अपना रास्ता लो । देखते नहीं हम षादी करके वापस लौट रहे हैं !

साइकिल वाले अपने रास्ते चले गए और इक्का फिर लालगंज गांव में बढ़ा । अपनी हवेली के सामने आकर विक्रम ने संभालकर अपनी दूल्हन को इक्के के नीचे उतारा । घर का दरवाजा भीतर से बन्द था । विक्रम ने मां को आवाज दी । पर कहीं कोई उत्तर नहीं । चारों ओर सन्नाटा छाया हुआ था।

सुबह हुई । गांव गढ़ी के लोग – औरतें, बच्चे, बूढ़े, जवान सब विक्रम की दूल्हन देखने आए । मां रो रही थी । ऐसी बहू को वह स्वीकार करने को तैयार न थी । चचाजान – अर्जुन सिंह परवेज, छोटा भाई – उदयप्रताप और उसकी पत्नी, चांद बहू सब हतप्रभ । भला बस्ती षहर से लालगंज तक खबरें आने में कितनी देर लगती है ! सारी खबरें अब तक उधर फैल चुकी थीं कि विक्रम ने एक मुसलमान पतुरिया–रण्डी की लड़की से षादी की है । उसे बहू बनाकर अपने घर ले आया है ।

विक्रम अपनी पक्की हवेली की खुली छत पर खड़ा अपनी प्राणप्रिया को दिखा रहा था – यह है पूरा लालगंज, इधर है मनोरमा और कुआनो नदी का संगम । इधर बहती है संगम धारा जो आगे चलकर सरजू नदी में मिलती है। सरजू फिर गंगा में – गंगा फिर समुद्र में । यह भूमि पूरे भारतवर्ष का हृदय है।

प्रकृति की जितनी रंगीनियां, वनस्पतियां, पषु–पक्षी इस अंचल में हैं उतना और कहीं भी नहीं । अवध का यह पूर्वी छोर जितना ही मादक है, जितना ही भावुक है, उतना ही करूण है । यहां की गरीबी, अंधविष्वास, पिछड़ापन सब अद्वितीय है प्रिय । उधर देखो मेरी प्रियतमे, सूरज का कैसा अनुपम प्रकाष उस आम के बाग के ऊपर पड़ रहा है ।

उसी समय नीचे से दौड़ते हुए आए बैताल पांड़े । वह थर–थर कांपते हुए बोले – विक्रम ! सत्यानाष हो गया। गांव के ब्राह्मणों और क्षत्रियों ने सारे हिन्दू परिवारों को भड़काया है । भारी संख्या में वे लोग इधर ही आ रहे हैं .... वह देखो बानपुर का कांग्रेसी लीडर बाबू गोइंठा सिंह .... पूरी हिन्दू जनता को तुम्हारे खिलाफ भड़काकर लिए चला आ रहा है ।

विक्रम ने मुस्कराकर कहा – आने दो, इन सबका स्वागत है । ये सब अपने ही लोग हैं ।

पांड़ेजी हड़बड़ाकर बोले – अरे ये लोग हवेली में घुसकर हमें घसीट ले जाएंगे । जानते नहीं, ये लोग कितने बेवकूफ हैं ।

विक्रम ने अपना दायां हाथ पांड़ेजी के कंधे पर रखकर बड़े ही स्नेह से कहना षुरू किया – मेरे परम मित्र, इन्हें समझो, ये वे लोग हैं जिनकी भूमि आम, बबूल, कटहर और जामुन के वृक्षों की सघन छाया से आच्छादित है और जिसे मनोरमा और कुआनो नदियों के निर्मल जल से सींचा जाता है । ये वे लोग हैं जो इन पवित्र नदियों के निर्मल जल से अपने थके–उदास–निराष तन–मन को धोते हैं । ये नंगे, अधनंगे, बीमार और भूखे वे लोग हैं, जिनके टूटे–फूटे गंदे घरों में ईष्वर का निवास है । ये वे लोग हैं जो अपनी ही सुन्दर सुभूमि में अपनी विलासी प्रकृति का आनन्द नहीं ले पाते । ये वे लोग हैं जो स्वयं को भूखे रखकर पूरे हिन्दुस्तान के लोगों को भोजन–वस्त्र देते हैं, स्वयं को निरक्षर रखकर हम जैसे लोगों को पढ़ने का अवसर देते हैं । यही लोग हैं जो सिर्फ राजा बनाना जानते हैं, उसे सिंहासन पर बैठाकर यह जानते ही नहीं कि अब राजा को सिंहासन से उतारना भी है । ये बनाते हैं, नष्ट करना नहीं जानते।

इस तरह विक्रम भावावेष में कहता रहा था, उधर दरवाजे पर गांव के लोग घिरते गए । उनकी आवाजें ऊपर छत पर छाने लगीं । सुगनसुन्दरी मूर्तिवत् अपार विस्मय के साथ अपने प्रियतम के इस विषद और विचित्र वर्णन को सुनती रही । और बीच–बीच में वह अपने सिर को कभी इधर और कभी उधर अपने प्रियतम के बोलते हुए मुंह को देखने की नीयत से घुमाती रही ।

छत पर घर के सभी लोग, सारा दुखी परिवार घबड़ाया हुआ खड़ा था । किसीकी जैसे हिम्मत नहीं हो रही थी,

उस भीड़ से सामना करने की ।

सहसा अकेला विक्रम ऊपर से दौड़ता हुआ उस भीड़ के सामने आ पहुंचा । सारी जनत चुप उसे देखनी लगी । वहीं लीडर बाबू गोईंठा सिंह बोले – तुम्हारा यह विवाह हिन्दूधर्म और समाज के खिलाफ है । हम ऐसा हर्गिज नहीं होने देंगे ।

गोइंठा सिंह के समर्थन में सारी हिन्दू जनता चिल्ला उठी – हां, यह अधर्म है ।

विक्रम ने हाथ उठाकर पूछा – भाइयो, अगर यह अधर्म है तो धर्म क्या है : मैं यह आप लोगों से जानना चाहता हूं । सारे लोग चुप !

सन्नाटा ।

विक्रम की आवाज फिर कांपी – क्या है हिन्दू, यह भी मैं आपसे जानना चाहता हूं ।

वही सन्नाटा छाया रहा ।

सहसा गली के नुक्कड़ से एक वयोवृद्ध हंसराज महतो कमर झुकाए सामने आए और हांफते हुए बोले – ए बबुआ, इनसे पूछो ई लोग कहां के हैं धर्मात्मा ? कोई चमाइन राखे है तो कोई धुनियाइन, बेड़िन, धोबिन, कहाइन, उनकी मेहरियों से पूछो कितना–कितना दुख–तकलीफ देत हैं ई लोग – अपने कै, दूसरों कै । बड़े आए हिन्दू ··· । जाइ कै, तुम सब लोग पहले चूतर तो धोय आवो नदी मां ··· गंदे···· अंधविष्वासी···· बेवकूफ···· उल्लू के पेड़····

गालियां देता वह वृद्ध वहीं जमीन पर लाठी टेकता हुआ बैठ गया । बिल्कुल निर्धन, असहाय था वह, पर मजाल है कि कोई उसे डरा–धमका सके । कैसा निर्भीक था वह !

इस बीच गोइंठा सिंह ने विक्रम को एक तरफ ले जाकर कहा – भाई, देखो हम सब एक ही जाति, एक ही खानदान के हैं । क्षत्री का काम है जनता पर राज करना । सो यही मौका है, मुझे इस इलेक्षन में जिता दो । एम0 एल0 ए0 बनकर अगली बार तुम्हें यदि एम0 पी0 न बनाया तो गोइंठा सिंह की मूंछ उखाड़ लेना । और यदि नहीं, तो देख लो पूरी हिन्दू–मुसलमान जनता को तुम्हारे खिलाफ लगा दूंगा, हां···· ।

विक्रम को हंसी आ गई – बाबू गोइंठा सिंह, आपकी बाते मेरी समझ में नहीं आईं ।

– इसका मतलब ?

– मतलब इतना ही समझा दीजिए कि मेरी इस षादी का आपकी राजनीति से रिष्ता कैसे जुड़ा?

गोइंठा सिंह बोले – किस दुनियों में हो? यहां सब चीज की बुनियाद में अब केवल राजनीति है।

विक्रम तड़प उठा – गलत, झूठ, बिल्कुल असत्य । इस पूरी जिन्दगी, समाज, राष्ट्र और पूरे ब्रह्मांड की बुनियाद में केवल मनुष्य है, केवल मनुष्य । राजनीति केवल एक बाहरी पर्त है । सब चीज की बुनियाद है मनुष्य । वही धुरी है·· ·· वही···· षक्ति भी है ।

एक तरफ विक्रम बोल रहा था । दूसरी तरफ बाबू गोइंठा सिंह दहाड़ रहे थे । विक्रम की उस षादी को वह सांप्रदायिकता के विष में घोलने लगे थे । विक्रम बोल रहा था – भाइयो, बन्दर को देखा है कभी चुकन्दर खाते हुए ? बाबू गोइंठा सिंह को देखो, यह वही कर रहे हैं । बन्दर के मुंह के गले में दो थैलियां होती हैं···· मतलब कण्ठ में ही पेट । उस पेट का इस्तेमाल वह तब करता है जब वह संकट में पड़ने के बावजूद उसीमें अपना भोजन भरता है । गोइंठा सिंह के कंठ में वही पेट पैदा हो गया है । यह संकट में हैं, भयभीत हैं । राजनीतिक हैं चूँकि, इसीलिए इनकी दृष्टि तीक्ष्ण है । यह जमीन के नीचे इसके गर्भ में देख रहे हैं : वहां एक बन्दर इन्हें दिख रहा है ।

4

चार–छः को छोड़ घर–परिवार, गांव–गढ़ी, नाते–रिष्तेदारों में से कोई भी उस सुगनसुन्दरी को नहीं स्वीकार कर पा रहा था । ऊपर से वह गन्दा राजनीतिक वातावरण और उससे भी दूषित गोइंठा सिंह का वह एलेक्षन – सब एक–दूसरे में गड्डमड्ड ।

दूसरे, विक्रम अपनी प्रिया से एक क्षण भी तो अलग नहीं रह पाता था । क्या घर क्या बाहर, चारों ओर उसे संगिनी बनाए रहता । वह बड़े ही गौरव से कहता – पत्नियां दीप्तिमती होती हैं ; जरा उनकी आंखों में झांककर तो देखो पति लोग ।

ऐसी ऊटपटांग बातों को सुनकर लोग और जल जाते और उन्हें एक संग देखते ही झल्ला उठते – वेषरम···· निर्लज्ज···· खानदान का कलंक !

पर इन बातों से विक्रम को चोट नहीं लगती । उसे चोट तब लगती, जब इन बातों से सुगनसुन्दरी उदास–दुखी हो जाती ।

मगर यह तो कमाल की बात थी । सुगनसुन्दरी जैसी सभ्य, रूपवती स्त्री उन गांव वालों ने कभी देखी भी तो नहीं थी । उसका रंग अजब था – सुनहरा गोरा – जाड़े की दुपहरिया की धूप की तरह चमकता था । इसलिए गांव–गढ़ी के लोग तरह–तरह के बहाने से उसे देखने के लिए लालायित रहते । एक बात और भी थी । उनके निकट आने वाले की दृष्टि मानो उसके रूप से टकराकर सहसा पीछे हटती और गांव के उस परिवेष में चौधिंया जाती । इस आकर्षण–षक्ति के कारण उस उन्मत्त यौवन के आसपास गांव के लोग चक्कर लगाया करते । यही असह्य था गांव की स्त्रियों को । तभी वे सारी ब्याहता स्त्रियां उंगली फोड़–फोड़कर सुगनसुन्दरी को गालियां देतीं, और तरह–तरह के टूट सराप देतीं ।

बुढ़िया मां जब कहती कि हेरे विक्कू, तू बहू को परदे में क्यों नहीं रहने देता – तब वह विक्कू, मतलब विक्रमादित्य बड़े ही स्नेह से कहता – मां, रूप–सौन्दर्य देखने और सराहने की वस्तु है । और हमारे इन पुरजनों ने न जाने कब से सौंदर्य देखा भी तो नहीं है ।

मां तब बिगड़ जाती – बेवकूफ है तू । गांव वाले बहू को किस नजर से देखते हैं, तुझे कुछ पता है बौड़म !

– मुझे सब पता है मां ।

बस, यही कहकर विक्रम हंस के रह जाता ।

पर कैसी भी हो, सुगनसुन्दरी धर्मपत्नी और प्रिया थी, अपने उस विक्रम की । विक्रम उसके सोए हुए व्यक्तित्व और स्त्रीत्व को इस तरह से जगाता चला जा रहा था कि उसे लगता : वह नहीं है, जिसे वह अब तक जी रही थी, समझ रही थी । वह विक्रम की ही तरह अपूर्व है, अनन्य है । वह उसके साथ लालगंज के उस घर–गांव में जो जीवन जी रही थी, स्वभावतः उसका उसे अनुभव न था । वह अपने प्रेमी पति से हर क्षण अपनी प्रषंसा सुनकर सदैव अपने दाम्पत्य जीवन की इच्छापूर्ति को ही महत्त्व देती । दूसरी ओर लोगों की आलोचना, कटुवचन, अपमान–भरे षब्दों को सुनकर उसका स्त्री–गर्व रूपी भंयकर सर्प उसके कोमल मस्तिष्क में बैठकर उसकी भौंहों पर फन तानता और उसके समस्त षरीर में ताप फैल जाता ।

एक दिन सुबह ही सुबह सुगनसुन्दरी चुपचाप बैठी रो रही थी । विक्रम बाहर से आया और प्रिया के वे आसूं देखकर घबड़ा गया । उसे अंक में लेकर बोला – अरे, पृथ्वी कहीं रोती है ? .... मैं आकाष हूं, तू पृथ्वी है सुगन !

सुगनसुन्दरी पति का मुंह निहारती रह गई और वह कहता रहा – मेघ पृथ्वी पर बरसते हैं और पृथ्वी उस जल को गर्भ के रूप में धारण करती है । तभी तो पृथ्वी अनेक समृद्धियों को सुन्दर रूप–रंग देकर परम पुरूष के जीवन–यज्ञ को पूरा करती है । इसी प्रकार पृथ्वी रूपी–स्त्री–हृदय का रस आकाष रूपी पुरूष के हृदय में चढ़ता है और वहां से फिर वर्षा के रूप में स्त्री–हृदय में लौट आता है ।

सुगन ने कहा – आज की दुनिया में भला इसे कौन मानता है ?

– सत्य किसीके मानने न मानने की अपेक्षा नहीं करता प्रिय !

– तुम्हें लोग पागल कहते हैं मेरे प्राणनाथ !

– कहने दो हृदयेष्वरी !

यह कहकर विक्रम मुसकराकर बोला – स्त्री ऋक् है और पुरूष है साम । ऋकु से साम की वैसी ही उत्पत्ति होती है, जैसे समंदर के अन्दर पृथ्वी से आकाष के मेघ । और जैसे स्त्री के हृदय से पुरूष के हृदय की उत्पत्ति होती है ।

यह सुनकर सुगन का हृदय खिल गया । उसने विक्रम को अपने आलिंगन में बांध लिया ।

बड़े ही मधुर स्वर में बोली – यह भी सच है मेरे प्रियतम, कि पृथ्वी के समुद्र का खारा पानी आकाष के ही प्रभाव से मीठा हो जाता है । विक्रम ने प्रिया के ओठों को चूमते हुए कहा – इसीलिए स्त्री–पुरूष का हृदय एक–दूसरे को प्राप्त कर इतना मधुर हो जाता है । इसीलिए जीवन यात्रा के निमित्त ऐसी अमृत–धुरी से जुड़ने को हिन्दुओं ने विवाह की कल्पना की । पर अपने देष–समाज में आज इसकी क्या दषा है ? – यह प्रष्न मेरे घाव को हरा कर देता है प्रिये ।

इसी तरह के भावों में वे दोनों जीते रहते और हर क्षण मग्न रहते ।

पाठक यहां जानना चाहेंगे कि उस वेष्या–कन्या को ऐसे विचार–भाव–ज्ञान कहां से मिले ? इसकी बहुत लम्बी कथा मूल ग्रंथ में दी हुई थी । यहां उसका मात्र संक्षेप ही दे सकना संभव है ।

तब गौहरजान की उमर अधिक से अधिक बीस–बाईस की रही होगी । तब वह अंग्रेजों का जमाना था । मतलब राजा–जमींदारों का समाज था वह । तब गौहरजान बस्ती में नहीं, लखनऊ षहर के चौक में एक आलीषान कोठे पर रहती थीं । पूरे आगरा और अवध–भर के इलाके में मषहूर थीं । बड़े–बड़े राजा और जमींदार आते थे उस कोठे पर । न जाने कितने लोग गौहरजान से प्रेम–भिक्षा मांगने आते और निराष चले जाते ।

एक दिन षाम के वक्त एक युवक संन्यासी आया । सीधे गौहरजान के कोठे पर चढ़ गया । नौकर–चाकर उसे कोठे से नीचे धकेलने लगे । पर वह वहां स्थिर खड़ा रहा । गौहरजान ने पूछा – कौन हैं आप !

– संन्यासी ।

– यहां कैसे ?

– कुछ क्षण तुम्हारे साथ जीने आया हूं ।

– क्या है आपके पास ?

– क्या ?

– मतलब .... धन, रूपये, हीरे–जवाहरात ।

– ऐसा मेरे पास कुछ नहीं है ।

– फिर जाओ यहां से !

संन्यासी एकटक षून्य में देखकर बोला – नगरसुन्दरी, हां मेरे पास एक अमूल्य धन है ।

– क्या ?

संन्यासी ने बड़े ही सरल षब्दों में कहा – मेरे पास तीन धन हैं ।

मैं प्रेम कर सकता हूँ,

मैं प्रेम की प्रतीक्षा कर सकता हूं ।

और मैं बिना प्रेम के भी जीवित रह सकता हूं ।

यह कहकर संन्यासी तेजी से मुड़ा । पर गौहरजान ने दौड़कर उस संन्यासी का रास्ता रोक लिया । संन्यासी को सप्रेम अपना अतिथि बनाया और इस तरह वह मधुबाला उर्फ सुगनसुन्दरी गौहरजान के गर्भ में आई ।

सुगनसुन्दरी जब चार वर्ष की हुई तब वही संन्यासी फिर आया गौहरजान के पास और मां–बेटी को अपने संग लिए उसने चारों धाम की यात्राएं कीं । इस तरह चौदह वर्षों तक वह कन्या अपने उसी संन्यासी पिता के सत्संग में रही । उस पिता ने ही अपनी उस बेटी को पढ़ाया और अनोखे संस्कार दिए।

उसीने उसे यह आस्था दी कि इस जगत् के सभी लोग समान हैं और प्रत्येक इन्सान में ईष्वर और प्रकृति ने इतने तत्त्व दिए हैं कि जो जैसी कामना करे वह प्राप्त कर सकता है । पर इसके लिए अभय बुनियाद है तथा ब्रह्मचर्य और ज्ञान परमावष्यक है ।

तो इस पूर्वकथा के बाद अब असली कथा आगे बढ़ती है ।

गोइंठा सिंह का एलेक्षन बिल्कुल नजदीक आ गया था : कुल पांच दि नही रह गए थे वोट पड़ने को । तभी एक दिन विक्रम ने अपने ग्रामवासियों से कहा – इस ठाकुर क्षत्रिय समाज ने पहले राजा–जमींदार बनकर प्रजा को लूटा, षोषण किया । और जब जमींदारी टूटी तो यही खिसियाया हुआ वर्ग तरह–तरह से उसी हार का क्रोध इस सीधी–सादी जनता पर प्रकट कर रहा है । इस देष की यह सारी राजनीति केवल खिसियाहट की, ताकत हथियाने की राजनीति है; इसमें कहीं भी लोकमंगल, लोकन्याय की भावना नहीं है । पर यह राजनीति प्याज का महज बाहरी छिलका है, अगर प्याज में भीतरी दम है तो राजनीति का यह छिलका एक दिन में उतर सकता है । इसमें कोई दम नहीं । सारी षक्ति मनुष्य में होती है, एक–एक व्यक्ति में । इसलिए सबसे ज्यादा महत्त्वपूर्ण, षक्तिषाली व्यक्ति है, मनुष्य है । यह जो चाहेगा वही होगा ...

और उसी रात चचा अर्जुन सिंह परवेज की मुर्गियों के बाड़े में आग लगा दी किसीने । सारी राष्ट्रीय मुर्गियां बाल–बच्चों सहित जलकर स्वाहा हो गईं ।

गांव के लोगों ने कहा – यह दुर्घटना विक्रम के विरोध में हुई है । चचाजान बेहद दुखी हुए । विक्रम ने कहा – गांव वालों की सारी मति मारी गई है ।

तभी बैताल पांड़े ने आकर विक्रम को सूचना दी कि गोइंठा सिंह उससे मिलना चाहते हैं, उन्होंने उसे बुलाया है

।

पर विक्रम ने जाने से मना कर दिया । उनका कहना था – वह अंधी षक्ति के सामने कभी भी घुटने नहीं टेकेगा और यदि समय मिला तो डटकर उसका सामना करेगा ।

– पर कैसे ?

पांड़े के इस प्रष्न के उत्तर में विक्रम ने कहा – अकेला सामना करूंगा और इन सबसे बुनियादी लड़ाई लडूंगा ।

इलेक्षन में बाबू गोइंठा सिंह विजयी हुए । उनसे विरोधी कामरेड इन्द्रजीत तिवारी पराजित हुए। इधर सुगनसुन्दरी दिनों–दिन दुखी और अकेली होती गई । उसे बहू के रूप में विक्रम का घर–परिवार स्वीकार नहीं कर पा रहा था । विक्रम इस बात से चिंतित रहने लगा ।

और एक दिन विक्रम ने एक स्वप्न देखा । वह किसी नये ग्राम का निर्माण करेगा । और तब उसी गांव में जाकर सुगनसुन्दरी के साथ रहेगा । महात्मा गांधी की 'ट्रस्टीषिप' की योजना उसके मन में थी । पर इसके लिए उसे एक ऐसे नये ग्राम को ढूंढ़ना होगा जहां वर्गभेद कम–से–कम हो ।

सबसे पहले इस स्वप्न की चर्चा उसने अपनी सुगनसुंदरी से की । वह सहधर्मिणी की तरह सहमत थी । फिर अपने अंतरंग मित्र बैताल पांड़े से चर्चा की । बैताल पांड़े ने कहा – मित्र, पहले मैं इसके लिए अपनी पंड़ाइन से पूछ लूं ।

बैताल पांड़े बेहद डरते थे अपनी पंड़ाइन से । इसके कई कारण थे । पहला, आज तक पंड़ाइन को कोई बाल–बच्चा न हुआ । दूसरे, विक्रम से पांड़े की दोस्ती । तीसरे, पांड़े का स्वभाव । वह भोजन बहुत करते थे और सोते बहुत थे । साथ ही पराई स्त्री उन्हें बहुत प्रिय लगती थी । इन्हीं सब बातों से बैताल पांड़े अपनी पंड़ाइन से थर–थर कांपते थे ।

सो जैसे ही डरते–डरते पांड़े ने पंड़ाइन से कहा कि वह विक्रम के साथ एक गांव की खोज में जा रहे हैं, वैसे ही पंड़ाइन ने डंडा उठाकर पांड़े को खदेड़ते हुए कहा – वह पागल विक्रम, तुझे भी पागल बनाकर छोड़ेगा । पति–पत्नी का वह झगड़ा कहीं नहीं खत्म हुआ । पंड़ाइन डंडा लिए विक्रम की हवेली में जा घुसीं और लगी गालियां देने विक्रम को, सुगन को । विक्रम की बुढ़िया मां ने जब रोते हुए कहा कि पंड़ाइन, यह सब पूर्वजन्म के करम हैं ··· अपने–अपने भाग हैं तब पंड़ाइन की रूलाई षुरू हुई। पंड़ाइन की रूलाई उस पूरे गांव–जवार में दूर–दूर तक मषहूर थी । वह विभिन्न रागों में रोतीं और रोतीं ऐसे कि मानो कोई गीत गा रही हो ।

सो भीतर हवेली में पंड़ाइन का भीषण रूदनगान षुरू हुआ ।

अरी ओ मेरी बहिनो
अगिया लागी करमवां मो मारे
आहा हा आहा हा !
अरे ओ मोर करमवां
केहि दहिजरवा के संगवां मैं ब्याही
आहा हा आहा हा !

पंड़ाइन को चुप कराने का केवल एक ही तरीका था । बस, कोई आकर उनसे यह कह दे कि – ओ पंड़ाइन, पांड़े जी न जाने किस औरत से बतियाय रहे हैं ··· बस, पंड़ाइन चुप । और ढूंढ़न निकल जातीं पांड़े को ।

सो उस दिन ऐसा ही हुआ । पांड़ेजी हवेली के सामने आम के बाग में पेड़ की एक टहनी पकड़े खड़े थे । पंड़ाइन ने बिल्ली की तरह पीछे से आकर पांड़े को धर दबाया – बोल, किस मुंहझौंसी से बतिया रहा था ?

– अरे, किसीसे नहीं ।

– मुझे पता है, वह प्रेतिनी इसी पेड़ पर रहती है ··· तू उसीसे बतिया रहा था ? बोल ··· बता।

– अच्छा–अच्छा, मैं तुझे छोड़ कहीं नहीं जाऊंगा ।

– पकड़ कान, अब विक्रम के साथ नहीं रहेगा ।

– नहीं रहूंगा ।

पर जो होना था वही हुआ । एक दिन रात के समय पांड़ेजी विक्रम और सुगनसुन्दरी के साथ लालगंज गांव से बाहर निकल गए । आसपास के गांवों में वे तीनों घूमते रहे । जिस गांव में जाते, लोग सुगनसुन्दरी को घेरकर खड़े हो जाते । तरह–तरह की बातें षुरू हो जातीं । विक्रम जैसे ही लोगों से ग्राम–कल्याण योजना की बातें षुरू करता, गांव के बड़े लोग उसकः मजाक बनाने लगते ।

इस तरह गांव–गांव में घूमते हुए तीनों कुआनो नदी पार कर एक छोटे–से बेहद गरीब और पिछड़े हुए गांव में आ गए । उस गांव का नाम था भुइंलोटनपुर । गांव के इसम नाम से ही विक्रम को बड़ा आकर्षण हुआ । सुगनसुन्दरी हंसती रहीं । पर यह क्या, गांव में घुसते ही लोग उन्हें देखकर भाग रहे हैं । औरतें और बच्चों ने अपने–आपको घरों में बन्द कर लिया। मर्द लोग उन्हें दूर से ही हाथ जोड़कर सलाम कर रहे हैं । गांव–भर के कुत्ते उन्हें घेरे हुए पूरी षक्ति से भौंक रहे हैं।

गांव–भर में केवल तीन घर खपड़ैल के थे और षेष घर फूस के । तथा अधिक घर तो झुग्गी–झोंपड़ी ही थे । पता लगा, खपड़ैल के घरों में से एक घर है ब्राह्मण का, दूसरा घर है कुरमी का और तीसरा घर है एक नाई का । षेष छप्पर वाले घर हैं – चमार, हरिजन, धरिकार, कुम्हार, माली, धुनियां और अहीरों के ।

उस गांव में एक नौजवान नाईं मिला । नाम था तिल्लोकी बब्बर (त्रिलोकी बार्बर का गंवई रूप)। यह अपने इस गांव से तीन बार भागकर कलकत्ता–बम्बई के फुटपाथों पर हज्जामी कर चुका था । सबसे पहले उस गांव में इसी तिल्लोकी ने उनका हृदय से स्वागत किया और पूरे गांव के लोगों को यह समझा–बुझाकर बुला लाया कि चलो पंचो, भारत माईं आई हुई हैं भुइंलोटनपुर में । बम्बई कै फुटपैथी पर अपुन को हमन्ने जो देखा वैसा ही कुछ सीन है ....

लोग डरते–डरते विक्रम के चारों ओर घिरकर बैठने लगे । तभी बैताल पांड़े पूरे गांव की चौहद्दी दौड़कर आए और ऐसी राजनीतिक भाषा में बताने लगे कि उसे महज विक्रम समझ सके, गांव वाले कतई नहीं – मैंने देखा । हिसाब लगा लिया । पूरब दिषा में बरगद का पेड़, उसपर एक ब्रह्म सिटिंग कर रहा है । पष्चिम ओर पाकड़ का वृक्ष उसके नीचे एक काला नाग है और वृक्ष पर स्लीपिंग काल–भैरव और उसकी बाइफ भैरवी । उत्तर दिषा में काली मदर का थान और दक्षिण दिषा में सम्मत माता देय असीस लड़िकै जीवैं लाख बरीस – । यह गांव सूर्य अक्षांष पर चन्द्र–विन्यास के तीसवें कोण पर स्थित है ....

विक्रम ने बैताल पांड़े को घूरकर चुप करा दिया । पर उल्टे उसने देखा, बैताल पांड़े की उन ऊल्लजलूज बातों का गांव वालों पर भरपूर असर पड़ चुका है । तिल्लोकी से भी न रहा गया । आज ही तो उसे मौका मिला है कि वह दिखा दे कि वह कलकत्ता–बम्बई रिटर्न है । सो तिल्लोकी खीस निपोरते हुए बोला – अपुन कों हमन्ने सुनो जी, कलकत्ता के फुटपैथी पर एक मेम ने मेमिन 'कू' पूंछा – यू बब्बर टू किथै कूं रहने वाला ? तब अपुन का हमन्ने बोला – बिलीज .... भुइंलोटनपुर । मेम कागज पर लोटन षुरू किया । अपुन कों हमन्ने बोलन लगा । सहास एक अहीर ने डांटा – चोप्प, नाऊ कै जात, बेमतलब पर्र–पर्र ससुर त नाई । तिल्लोकी को भी ताव आया था – टुम चौप्प । अपुन को हमन्ने अपने गांव की कहानी बतिया रहा हऊं । हां तो साहेब और साहबिन, धियान लगाए कै सुनो । मेम नू कागज पर उधर लौटन षुरू किया, इधर अपुन कों हमन्ने बतियावन षुरू किया । एक समया की बात है । एक रहे ठाकुर । एक रहीं ठकुराइन । गर्मी कूं सीजनु । दोनों पलंग पर सोवत रहे । खबू सटे–सटे । ठकुराइन कूं लगी गर्मी । उन्होंने कही – अजी थोड़ा उधर कूं उठंग जाओ । ठाकुर कूं लगा गुस्सा । बोई पलंग सों लुढक कै जमीन पर गिर गए धांय सो । सोचा कि ठकुराइन अब तो बुलावैंगी । पर साहेब, ठकुराइन तो गईं सोय, अउर ठाकुर साहेब मारे गुस्से कै भुईं लौटते–लौटते सारी रात लोटते ही चले गए । यहीं आकर सुबह भई । अउर फिर यही नया गांव बनाया जिसकू नाम पड़ा – भुइंलोटनपुर ।

गांव की यह कथा सुनकर विक्रम और सुन्दरी हंसने लगे । थोड़ी देर बाद बैताल पांड़े उठे विक्रम और सुन्दरी का परिचय देने । विक्रम ने उन्हें खींचकर बैठा लिया । विक्रम ने गांव वालों से कुछ कहना षुरू किया और उसे लगा, वे लोग उसकी बात कतई नहीं समझ पा रहे हैं ।

रात को समस्या उठी कि तीनों उस गांव में कहां रहें । विक्रम ने तय किया, वे किसी हरिजन की झोंपड़ी में रहेंगगे – उसीके चूल्हे पर बना भोजन करेंगे । पर पांड़े ने तय किया, वह रहेंगे तो साथ, पर भोजन कहीं और करेंगे ।

यही हुआ । गांव–भर में जो सबसे अधिक गरीब–दरिद्र हरिजन था बीपत चमार – उसीकी झोंपड़ी में वे गए । बीपत के दो लड़के थे – एक बहू थी अैर बीपत की अंधी औरत थी । उस दिन उसके घर में कुछ भी खाने को नहीं था । बैताल पांड़े अपने साथ गट्ठर बांधकर आटा–चावल–दाल लेकर आए थे । सो उन्हींसे राषन लेकर सुन्दरी ने बोपत की बहू के साथ मिलकर झोंपड़ी के चूल्हे पर भोजन बनाना षुरू किया । धीरे–धीरे गांव–भर में बात फैली । इतनी ऊंची जात के बाबू और बबुआइन बीपत चमार के घर पर भोजन कर रहे हैं ।

उसी रात से विक्रम गांव के प्रत्येक घर में जा–जाकर उन्हें अपनी बात समझाने लगा – यह पूरा गांव एक परिवार है । जैसे पूरे परिवार का दुख–सुख, कमाई और खर्च एक ही है, वैसे ही बस पूरे गांव में क्यों नहीं हो सकता ? लोग विक्रम के पीठ पीछे कहने लगे – वाह ! ऐसा भी कहीं हुआ है ! कहां ब्राह्मण–ठाकुर का दुख–सुख और कहां

बीपत चमार का हअं, कहां राजा भोज कहां गांगू तेली ।

अगले दो–तीन दिनों में विक्रम और सुगन ने गांव के लोगों से बातें कीं । औरतें मुंह पर आंचर रखकर ही–ही–ही–ही करके हंसती और आपस में बातें करती – ई मनसेधुआ पगलाय तो नहीं गैबाय । कैसन अचंभे की बातें करत है । मगर ई मेहरयिा कैसी है एकर – राम–राम । मरद लोग कहते – ऐसी भी कहीं हुआ है ?

बैताल पांड़े ने आकर बताया – यह जो एक घर ब्राह्मण का है और एक घर कुरमी और नाई, यहीं लोग पक्के विरोधी हैं । गांव की सारी जमीन इन्हीं लोगों की है । षेष लोग खेतहीन मजदूर हैं । ब्राह्मण कहता है : सब पूर्व जनम की कमाई है । सब बराबर कैसे हो सकते हैं ! ब्राह्मण तो षूद्र का छुआ पानी भी पीने को तैयार नहीं । यद्यपि ब्राह्मण के दोनों लड़कों ने चमाइन–धरकारिन रख छोड़ी है ।

यह सुनते ही विक्रम गया ब्राह्मण के दरवाजे पर ।

– क्या नाम है आप लोगों का ?

– मेरा नाम रामजीत तिवारी है, मेरे छोटे भाई का नाम तीरथ है ।

– आप लोग अपने गांव की षूद्र औरतों के साथ सो सकते हैं, पर उनका छुआ खा–पी नहीं सकते ?

विक्रम के इस मुंहतोड़ सवाल से सारे लोग सन्न हो गए । सारा गांव दो भागों में बंट गया । एक ओर वही ब्राह्मण, कुरमी और नाई, दूसरी ओर षेष सारा गांव । वे तीनों घर मिलकर विक्रमसुन्दरी और बैताल पांड़े को गांव से खदेड़ देने की योजना बनाने लगे । तभी बैताल पांड़े ने एक चमत्कार किया। उन्होंने गांव–भर में छिपे–छिपे यह बात फैला दी कि विक्रम सुभाषचन्द्र बोस हैं और सुन्दरी गान्ही माई हैं । इन लोगों को भगवान ने भेजा है – भुंइलोटनपुर को स्वर्ग बनाने के लिए ।

फिर क्या, सारा गांव हाथ जोड़े उन दोनों के सामने उठ खड़ा हुआ । जो आज्ञा धर्मावतार । गान्ही माई की जै । सुभाषचन्द्र बोसकी जय । विक्रम घबड़ा गया वह दृष्य देखकर – यह क्या ? हम न सुभाषचन्द्र बोस हैं न गांधी जी । मेरा नाम विक्रम है, यह है मेरी पत्नी सुगन । किसने फैलाई यह बात?

कहां हैं बैताल पांड़े ?

बैताल पांड़े उस समय एक जगह छिपे हुए थाली–भरे खिचड़ी खा रहे थे । और वह खाते समय बोलना पाप समझते थे । उन्हें जवाबदेही न करनी पड़े इसलिए वह दिन–भर थाली लिए भोजन पर बैठे रहे ।

उधर उस पूरे गांव–जवार में वह आष्चर्यजनक बात मलेरिया बुखार की तरह फैलती गई । लोग, स्त्री–पुरूष, बूढ़े–जवान–बच्चे दौड़े गान्ही माई और सुभाषचन्द्र के दरसन पाने के लिए ।

धीरे–धीरे मेला बढ़ने लगा । चारों ओर षोर । जै–जैकार – गान्ही माईं की जाय ! सुभाषूचन्द की जय ! दौड़े हुए थानेदार आए । पुलिस आई । खबर बस्ती की कोतवाली तक पहुंची ।

विक्रम उस पागल भीड़ के सामने चिल्लाता रहा – नहीं, नहीं, यह झूठ है .... बकवास है .... यहां कोई गांधी महात्मा नहीं । कहीं कोई सुभाषचन्द्र बोस नहीं । भाइयो, गांधी पुरूष थे । माई नहीं थे। वह स्त्री नहीं थे । वह कब के मर चुके हैं । सुभाषचन्द्र भी कब के मर चुके हैं ।

पर कौन सुनता है अब इन बातों को । विक्रम सुन्दरी को संग लिए हुए उस भीड़ में पूरे गांव–भर में बैताल पांड़े को ढूंढने लगा ।

पर बैताल पांड़े न जाने कहां लापता हो गए ।

रात–भर विक्रम और सुगन एक जंगल में छिपे रहे ।

गांव वाले मषाल जलाए हुए गान्ही माई और सुभाषू बोस को चारों ओर ढूंढ़ते रहे ।

सुबह बैताल पांड़े ढूंढ़ते–ढूंढ़ते उसी जंगल में मिले विक्रम को । विक्रम और सुगन ने एक पेड़ पर बैठकर सारी रात काटी थी ।

विक्रम ने कहा – सुनो बैताल, अमर तुम फिर कभी झूठ बोले तो मैं फिर अपने उसी कमरे में जाकर बन्द हो जाऊंगा ।

बैताल ने कहा – नहीं विक्रम, ऐसा मत करना । मैं वह विक्रमादित्य नहीं, जो बार–बार बैताल को पेड़ की डाल से उतारकर अपने कंधे पर बैठाए । मैं बेताल हूं और विक्रमादित्य तुम हो इस जन्म में। सो पूर्वजन्म का कहीं बदला न लेने लगना । मैं वचन देता हूं । अब झूठ नहीं बोलूंगा ।

– ऐसा ही हो !

विक्रम ने बैताल को हाथ उठाकर आर्षीवाद दिया ।

5

अपने लालगंज गांव में लौटकर विक्रम अत्यधिक उदास रहने लगा । सुन्दरी ने उसकी उदासी देखकर कहा – हे आर्यश्रेष्ठ ! हमें जो अनुभव मिला है, वही क्या कम है । इससे यह तो पता चला कि हम अपने गांव वालों को नहीं जानते । उनके और हमारे बीच कितनी लम्बी–चौड़ी खाई है और हम जब उस खाई को पाटेंगे तभी हम अपनी मिट्टी से जुड़ेगे । क्योंकि हम भी तो कहीं अपनी असली बुनियाद से कट गए हैं।

अचानक विक्रम ठहाका मारकर हंस पड़ा । सुगन डर गई । विक्रम फिर उदास हो गया । बोला – हे प्राणेष्वरी ! क्यों मुझे एक ऐसे खतरनाक रास्ते पर भेजना चाहती हो, जहां से मैं कभी फिर वापस नहीं लौट सकता ।

– क्या कोई वापस लौट सका है आर्यपुत्र !

– प्राणप्रिये, तुम्हें पता नहीं, तुम कितनी खतरनाक बात कह रही हो ।

सुन्दरी माथा उठाकर बोली – तो क्या अब पढ़े–लिखे, सोचने–विचारने, खाने–पीनेवाले लोगों का सिर्फ वही एक काम रह जाएगा : व्यवस्था की आलोचना और षासनतंत्र का महज मानसिक विरोध !

– तुम मुझे नहीं जानतीं, मैं चाहता हूं ....

विक्रम ने अचानक अपनी जवान रोक ली और उसकी आंखों से आंसू गिरने लगे । सुन्दरी सामने से हटने लगी । विक्रम उसे बांहों में भरकर बोला –

राष्ट्राय स्वाहा
राष्ट्राय इदं
इदन्न मम ।

मैं चाहता हूं – आग लग जाए । सबसे पहले मेरा स्वाहा । हमारी खामोषी विस्फोटक हो । जो भ्रष्टाचार का सिर्फ मानसिक विरोध और सत्ता की महज आलोचना करके सज्जन बुद्धिजीवी बना रहना चाहते हैं उनके मुखौटे नोचकर कहूं – भ्रष्ट तुम हो, राजनीति नहीं ! तुम चुप हो तो सत्ता बहरी हो गई। तुम सो गए तो चोर घुस आए नारों की छाया में । यहां का व्यक्ति अनैतिक नहीं, व्यवस्था अनैतिक है । इस देष को राजनीतिक–सांस्कृतिक विकल्प चाहिए .... राष्ट्राय स्वाहा .... ।

– कौन दे वह विकल्प ? तुम क्या हो ?

सुन्दरी की आंखों में विक्रम देखता रह गया ।

वह कांपने लगी । विक्रम उसे अपनी बांहों में इस तरह भरता गया, जैसे वह किसी युद्धक्षेत्र में जाने के लिए पूरे षरीर में किसी अनुपम वीर, योद्धा के सारे अस्त्र–षस्त्र धारण कर रहा हो ।

उधर बैताल पांड़े जब अपने घर में घुसे तो पंड़ाइन डंडा लेकर दौड़ी । पांड़े ने उन्हें समझाना चाहा, पर पंड़ाइन कुछ भी सुनने को तैयार न थी । दूसरे, पांड़े के साथ उस तिल्लोकी नाऊ को देखकर गरजीं – यह मुंहझौंसा कौन है ?

पांड़े बोले – यह अपना मित्र है ।

तिल्लोकी ने पंड़ाइन के पैर छूकर कहा – माताजी ! परमपूज्य ! अपनु कौं हमन्ने प्रजा हैं आपकी, देवी । अपन कूं नाम है तिल्लोकी, साकीन, भुइंलोटनपुर । हम सबका सेवक है । हम गांव में आया है और अपनु कूं अच्छा आदमी हूं । विक्रम बाबू का हम खास आदमी हूं ।

– तो आओ उसी विक्रमबाबू के घर ।

– अरे भाग्यवान, हमको कुछ खाना–पीना तो दो ।

पांड़े को घूरते हुए पंड़ाइन ने तिल्लोकी से पूछा – यह बताओ, तुम लोग गए कहां थे ?

पांडे ने तिल्लोकी को आंख मारकर कहा – बात यह है कि इसके गांव में गांधी बाबा आए थे, सुभाषचन्द्र बोस आए थे, हम उन्हींसे मिलने गए थे ।

– ये कौन लोग हैं ?

तिल्लोकी को हंसी आ रही थी । पांड़े ने उसे डांटकर चुप कर दिया । पंड़ाइन से बोले – पहले हमें कुछ खिला दो, बड़ी भूख लगी है । यह बहुत गुणी आदमी है । इसके हाथ में जष है ।

पंड़ाइन बड़बड़ाती हुई चौके में चली गई । तिल्लोकी ने कहा – – पांड़ेजी, अपनु कों हमन्ने बड़ा डर लग रहा

है आपकी 'वाइफ' (पत्नी) से । हमन्ने कूं यहां खाना नहीं खाया जाएगा । इनकूं इत्ता क्रोध क्यों है पांड़े जी ?

पांड़े बोले – क्या करूं भाई, इसे कोई बाल–बच्चा नहीं है, सो सारा गुस्सा मुझपर ही उतारना चाहती है ।

– अरे बच्चों की क्या कमी है । हमन्ने कूं एक उपाय है । एक काली बिल्ली मारकर उसे जमीन में गाड़ दिया जाए । फिर उस जमीन पर पीली सरसों बोई जाए । फिर जो सरसों पैदा हो उसे सफेद कबूतर को खिलाया जाए और फिर उसी कबूतर का मांस पकाकर आप खाइए –

धड़ाक से बच्चा हो जाएगा माताजी को !

– ऐसा ?

– बिल्कुल ।

पांड़ेजी पंड़ाइन के पास दौड़े । पंड़ाइन बेहद खुष । एक लोटा षरबत बनाकर झट ले आई और तिल्लोकी को षरबत पिलाती हुई आषीर्वाद देने लगीं – तू जुग–जुग जीवै मोर भाई । तेरे घर दूध–घी की नदी बहे । तू पूतौ फलै, दूधो नहाय ।

तिल्लोकी चिल्लाया – ना ना माताजी, अपनु कौं 'बेचलर – अनमैरड', कुंवारा है । अपनु को हमन्ने अभी तक कोई लड़की पसन्द नहीं आई ।

– अरे तू काहे चिन्ता करौ भइया, गांव में जिस प्रजा की लड़की तुम्हें पसन्द आ जाए, तुमसे ब्याह न करा दूं तो पंड़ाइन नहीं ।

– वाह माताजी, तो सुन लो – अगर तुम्हें एक साल के भीतर बच्चा न रहि जाए, तो अपनी मुंछ मुड़ा दूं, हां जी, अपनु कौं बोल दिया ।

पर सवाल उठा कि काली बिल्ली गांव में कहां से लाई जाए और उसे मारे कौन ? बिल्ली–हत्या गौ–हत्या से भी बड़ा अधर्म–अपराध है । सो इस सबकी जिम्मेदारी तिल्लोकी नाऊ ने ले ली और पंड़ाइन उसे जीजान से मानने–जानने लगीं ।

लालगंज में सारी बिल्लियां भूरे रंग की थीं । सो तिल्लोकी आसपास के गांवों में काली बिल्ली तलाषने लगा । कई दिनों बाद एक दूर के गांव में उसे एक छोटी–सी बीमार काली बिल्ली मिली और उसे झोले में डालकर वह लौटा ।

विक्रम ने संकल्प किया – वह अपने इसी गांव में ही क्यों न कुछ करे ! पर ग्राम–सुधार की जिस किसी भी योजना पर वह लोगों से बात करता, लोग हंस पड़ते और पीठ पीछे कहते –

पागल है ससुरा ।

जब से षादी की, पता नहीं क्या हो गया इसे ।

रंडी पतुरिया की लड़की से षादी की है, दिमाग क्यों न उल्टे ?

जरूर इसपर किसी भूत–प्रेत की छाया पड़ गई है ।

एक दिन विक्रम ने गांव के लोगों के सामने कहा – हमने अपने गांव में सहकारी खेती षुरू करनी चाही । जिसके पास जमीन है, और जिसके पास जमीन नहीं है मतलब जो खेतहीन मजदूर है – उन सबका संघ हो और सब मिलकर सहकारी खेती करें और उपज का सबमें समान बंटवारा हो ।

इस बात से सारे जमीन वाले विक्रम को उल्टी–सीधी बातें करने लगे । विक्रम का छोटा भाई उदयप्रताप और चचाजान अर्जुन सिंह परवेज तक ने कह दिया – भइया, तुम अपना हिस्सा बांट लो । फिर उसे चाहे फूंकों या तापो, बाकी जमीन पर तुम अपना हाथ तक न लगाना ।

फिर ऐसा ही हुआ । विक्रम ने अपने हिस्से के पैंतालीस बीघे खेत से सहकारी खेती की योजना बना ली । तब तक उधर काली बिल्ली मारी जा चुकी थी । जमीन में उसे दफनाकर उसपर पीली सरसों बोई जा चुकी थी । पंड़ाइन बेहद खुष । सो बैताल पांड़े ने भी अपने पन्द्रह बीघे खेत में सहकारी खेती में मिला दिए । गांव में जितने खेतहीन मजदूर किसान थे, सब उस खेती की ओर दौड़े । विक्रम ने फैसला किया – नहीं, एक घर से सिर्फ एक आदमी इस खेती में लगेगा, वरना रोज की मजदूरी बिना, तुम्हारे घरों में चूल्हे कैसे जलेंगे ?

पहली फसल गेंहूं, मटर, गन्ना, आलू, चना और अरहर की हुई । इतनी अच्छी फसल कि गांव वाले उसे खलिहान में ही निहारते रह गए । सारी फसल की उपज का दसवां हिस्सा निकालकर ग्रामकोष के नाम से सहकारी बैंक में जमा किया गया । षेष उपज सबमें बराबर–बराबर बांट दी गई ।

इसका सबसे बुरा प्रभाव पड़ा स्वयं विक्रम के ही घर – परिवार पर । उसका सगा छोटा भाई, चचाजान, मां – तीनों ने विक्रम से बोलना बन्द कर दिया ।

अगली फसल धान की बोई जाने लगी इसमें गांव के कुछ और भी लोग, अपने चार–चार, छः–छः बीघे खेत के साथ सहकारिता में षामिल हुए। इससे गांव के सवर्ण लोग, विषेषकर ग्राम–पंचायत के मुखिया विजयी षुकुल, काफी आतंकित हुए । उस क्षेत्र के कांग्रेस एम0 एल0 ए0 गोइंठा सिंह से लोगों ने बताया कि अगर विक्रम की यह सहकारी खेती इसी तरह चलती रही तो गांव का और सारा कामकाज ठप्प हो जाएगा । न किसी को हलवाहा मिलेगा न किसी को कोई मजदूर । और फिर इन खेतहीनों का दिमाग भी बिगड़ जाएगा ।

गोइंठा सिंह और क्या उपाय बताते, बस यही राय दी कि मारो सालों को । षूद्र को जब तक मारो नहीं, काम नहीं चल सकता ।

सहकारी खेती में उधर धान की बोआई हो रही थी, इधर इन खेतहीन मजदूरों, षूद्रों के घरों में पत्थरों की बारिष होती । उनके बाल–बच्चे, स्त्रियों और ढोर–डंगर को अनायास पीट दिया जाता । सवर्ण बस यहीं चाहते थे कि किसी तरह फौजदारी, मारपीट हो जाए और लोग डरके मारे भाग जाएं ।

विक्रम ने एक दिन अपने सहकारी खेती संघ की सभा की । और समझाते, उदाहरण देते हुए कहा – क्रोध, गुस्सा एक अत्यन्त अस्थायी भाव है : इधर आया, उधर गया । असली चीज है विचार । विचार करो, लोग आखिर क्यों इस तरह वैर–विरोध कर रहे हैं हमारी इस खेती का । इसे सोचो, हमारा सारा समाज क्यों दो भागों में बंटा है, सवर्ण और षूद्र .... धनी और गरीब .... पैदउा करने वाला और भोगने वाला ? इस लालगंज गांव के लोग पुष्त–दर–पुष्त से महज इसी विष्वास पर जिन्दा है कि जो जितना ही कम काम, परिश्रम, मेहनत करे, वह उतना ही श्रेष्ठ, इज्जतदार और धनी है, और जो जितना ही अधिक काम, परिश्रम, मेहनत करे, वह उतना ही नीच है, तुच्छ है और बेकार है । इसका एक जीता हुआ उदाहरण खुद इन्हींके घरों में है : इनके घरों में स्त्रियां कितने–कितने काम करती हैं, और इसके बदले में अपने पुरूषों से कितने–कितने अत्याचार सहती है । इसलिए पहले सोचो, पूरी स्थिति पर विचार करो, फिर ठंडे दिल–दिमाग से फैसला लो कि क्या करना है ।

विक्रम ने तिल्लोकी नाऊ को भेजकर अपने इलाके के थानेदार को बुलाया । दूसरी ओर ब्लाक विक्रम अधिकारी को । उन्हें गांव की पूरी कैफियत बताकर कहा – अभी वे लोग किसी और की बात नहीं समझते सिर्फ आप जैसों की समझते हैं : भय की भाषा .... उन्हें समझाइए कि ये लोग ऐसा न करें, वरना इसका परिणाम उन्हींके लिए बुरा होगा ।

सहसा थानेदार के मुंह से उसी गोइंठा सिंह जी का नाम निकला, जिसका समर्थन ब्लाक–अधिकारी ने किया । तब हंस–हंसकर विक्रम, एक कहानी सुनाने लगा :

एक खेत में एक छोटी–सी चिड़िया रहती थी । साथ में उसका चिड़ा भी था । वे दोनों जब–जब अपना घोंसला बनाते, अंडे देते, तब–तब एक जंगली सांड आकर उसे नष्ट कर देता । चिड़िया रोकर रह जाती और फिर वही अपना घोंसला बनाती । अंडे देती । और सांड़ उसे नष्ट कर देता । चिड़िया उस खेत को छोड़कर दूसरी जगह गई । फिर तीसरी जगह और चौथी जगह । और चारों ओर वही जंगली सांड़ उसके पीछे । एक बार जब चिड़िया अपना नया घोंसला बनाकर उसमें दो अंडे देने लगी, तब चिड़े ने कहा – देख भाई, अब मैं उस सांड़ को खत्म करता हूं .... तू बच्चों से यह कहानी जरूर बता देना।

अगले दिन जैसे ही वह सांड़ आया, चिड़ा तेजी से उड़कर उसकी नाक में घुस गया । सांड़ तड़प–तड़पकर वहीं मर गया ।

इस कहानी का अर्थ सबसे ज्यादा उस नवयुवक थानेदार की समझ में आया । उसने लालगंज के सवर्ण लोगों के प्रतिनिधि और विक्रम के विरोधी, रामचन्द्र तिवारी और ग्राम पंचायत के प्रधान मनोहर सिंह से स्पष्ट् कहा – अगर इस गांव में कोई भी दुर्घटना हुई तो इसकी जिम्मेदारी आप दोनों पर होगी। विक्रम से मैं लोहा नहीं ले सकता, क्योंकि वह ईमानदार है । उसकी अजब ताकत है, क्योंकि वह निडर और निःस्वार्थ है !

सहकारी संघ ने फैसला लिया कि ग्रामकोष और सरकार से ऋण लेकर एक नलकूप का निर्माण हो । साथ ही दो कमरों की एक पक्की इमारत बने, जहां रासायनिक खाद, उन्नत बीज और खेती के अन्य सामान रखे जाएं । बरामदे में एक प्राइमरी स्कूल खोला जाए । सरकार से ऋण लेने का प्रबन्ध और जिम्मेदारी बैताल पांड़े को दी गई ।

धान की फसल बोई जा चुकी थी । इसी समय गांव में एक अजीब घटना घटी । सुदीहल चमार के घर में रामचन्द्र तिवारी उसकी लड़की फुलगेंदा के साथ रंगे हाथों पकड़े गए । सारा चमारटोला रामचन्द्र तिवारी को पकड़े हुए बैठा था । और पुलिस को बुलाने के लिए आदमी भेजा जाने लगा था, तभी तिल्लोकी नाऊ बीच में आकर बोला – अपनु कूं कहना कि पुलिस को क्यों बुलाते हो ? मामला आपसु में दफा–रफा करि लो । पुलिस तो खामखा दोनों पार्टी से रूपये खींचकर ले जाएगी ।

अन्त में बात विक्रम के पास पहुंची । उसने तिवारी को बुलवाया । तिवारी आकर विक्रम के पांवों पर गिर पड़े और गिड़गिड़ाते हुए बोले – मुझे बचा लो किसी तरह ।

विक्रम ने पूछा – तिवारी, क्या तुम बिल्कुल सच–सच बता सकते हो कि तुमने ऐसा क्यों किया ?

– सच–सच बताता हूं : गांव में ऐसा होता ही है । सुदीहल ने खाने के लिए मुझसे एक मन गेंहूं लिया और ... ।

– और क्या ?

– मैं पकड़ लिया गया, यही अपराध हुआ ।

– अगर पकड़े न जाते तो अपराध न होता ?

विक्रम के इस प्रष्न से तिवारी मुंह देखते रह गए । बैताल पांड़े से जब विक्रम ने राय ली तो उन्होंने अपना फैसला सुनाया कि या तो तिवारी फुलगेंदा को अपने घर में रखें या पूरे पांच बीघे खेत जुर्माना दें सुदीहल को । खेत फुलगेंदा के ही नाम लिखे जाएं ।

विक्रम ने फुलगेंदा को बुलवाया । वह लाज–षर्म से मरी हुई थी । सामने नहीं आई । आया केवल सुदीहल ।

विक्रम ने पता लगाया कि जवान, ब्याहता बेटी को अपने घर में क्यों रखे रहा ? पता चला, फुलगेंदा का पति कोढ़ी हो गया है, वह अब ससुराल नहीं जाना चाहती । दूसरी षादी क्यों नहीं कर दी?
इसीलिए कि उसका ससुर बहुत ही जालिम आदमी है – ऐसा घरफुंकना, हत्यारा कि पूछो नहीं साहेब !

एक दिन, सुबह ही सुबह विक्रम खुद गया सुदीहल की झोंपड़ी में । बिलख–बिलखकर रोती हुई फूलगेंदा के सिर पर हाथ रखकर वह बोला – रोती क्यों है रे ! तेरा क्या कसूर ? चल । आ मेरे साथ । सहकारी खेतों के बीच जहां नलकूप बनाने की जमीन छोड़ी हुई है, उसे साफ–सुथरी करके रोज गोबर से लिपाई कर । हां, लीपते हुए तुझे गीत गाते रहना होगा ।

सच, विक्रम उसे संग लिए हुए वहीं गया। वहां तिल्लोकी नाऊ और मजदूरों के साथ, पास के एक खेत में निराई कर रहा था ।

विक्रम ने पुकारकर कहा – ओ तिल्लोकी, चल फुलगेंदा के साथ यह जमीन साफ कर ।

ष षाम को बैताल पांड़े ने षहर से वापस आकर विक्रम को बताया कि सरकार से ऋण पाने के लिए हमें घूस देना होगा – पहले ग्राम–पंचायत के प्रधान मनोहर सिंह को, दूसरे ब्लाक डवलपमैंट अधिकारी सुधाकर राय को, एम0 एल0 ए0 गोइंठा सिंह को, फिर सहकारी बैंक के मैंनेजर रमेष श्रीवास्तव को अन्त में सड़क से गांव तक बिजली की लाइन लाने के लिए सिंचाई विभाग के चीफ इक्जीक्यूटिव इंजीनियर के सहायक के0 सी0 वर्मा को ।

विक्रम ठहाका मारकर हंस पड़ा । फिर मुस्कराते हुए बोला – चलो, तैयार हैं । हम सबको घूस देंगे ।

– अरे, पर इत्ता धन कहां है ?

– वह मेरी जिम्मेदारी है । मैं अपने हाथ से घूस देना चाहता हूं और उस अनुभव का आनन्द लेना चाहता हूं ।

पांड़े बोले – यही तो बात है, घूस हमारे हाथों से नहीं, उन सबका एक एजेण्ट है .... बनवारी लाल, वही सब को घूस देगा ।

– अच्छा, अगर बनवारीलाल खुद मार ले तो ?

– नहीं, नहीं । इस काम में बड़ी ईमानदारी है । सारा काम जैसे अपने–आप ही हो जाता है । मैंने अपनी आंखों से सब होते देखा है ।

दूसरे दिन सुबह विक्रम, बैताल पांड़े के साथ बस्ती षहर जाने को था – उसी बनवारीलाल के दर्षन करने । पर पांड़े जी ने देखा, विक्रम उस खेत के बीच मैदान में चुपचाप खड़ा फुलगेंदा का संगीत सुन रहा है । तिल्लोकी के साथ गोबर से जमीन लीपती हुई वह अजब स्वर में गा रही है :

जुगति बताए जाव
कवना विधि रहबो राम ।
जो तुहू साम बहुत दिन बितिहैं
अपनी सुरतिया मोरे बहियां पै लिखाये जाव ।
जो तुहु साम बहुत दिन बितिहैं
बहियां पकड़ि मोके गंगा डुबाए जाव ।

दोनों को इस तरह एकसाथ गाते देखकर गांव की औरतें बोलीं – हे, बड़ा मेहरा मरद है ।

तभी उधर बैताल पांड़े आए । घबड़ाकर पांड़े बोले – अरे, तुम्हें षहर नहीं चलना ?

विक्रम के मुंह से निकला – जाना कहां है, सब कुछ तो यहीं है ।

– क्या ?

– सच पांड़े, यह फुलगेंदा कितनी सुंदर है । सुनो इसका संगीत .... जैसे हवा में कमल के पुष्प हिल रहे हों । यात्रा तो यहां से षुरू होती है भाई ! अरे, तुम परेषान क्यों हो ?

दोनों गांव की सीमा पारकर आगे बढ़ने लगे, तभी रामचन्द्र तिवारी मिले – सुनो भाई, मैं पांच बीघे खेत फुलगेंदा के नाम सहकारी खेती में मिलाने के लिए तैयार हूं !

– पर क्या तुम हमसे मिलने को तैयार नहीं हो ?

तिवारी बिना कुछ उत्तर दिए गांव की तरफ बढ़ गए । विक्रम आगे बढ़ते हुए गा पड़ा :

सरफरोषी की तमन्ना
आज मेरे दिल में है
देखना है जो कितना
बाजुए कातिल में है ।

षहर में उस दिन उस बनवारीलाल का कोई अता–पता नहीं था । दोनों कचहरी से लेकर रेलवे–स्टेषन तक रिक्षे में बैठे हुए इधर–उधर घूम रहे थे । सहसा उनकी भेंट अपने भूतपूर्व मुंषी इकबाल बहादुर से हुई । अब वह लालगंज की हवेली और वहां की मुंषीगिरी छोड़कर कचहरी के वकीलों की दलाली करते थे ।

उन्हें पता था – आज वह बनवारीलाल कहां है । बनवारीलाल मिला दीनबन्धु के बंगले पर । वही दीनबन्धु, विक्रम का बी0 ए0 का सहपाठी ।

मुंषी इकबाल बहादुर ने विक्रम को एकांत में ले जाकर पूछा – बनवारीलाल से काम क्या है ? विक्रम ने सारी कैफियत बयान कर दी । मुंषीजी विक्रम को लगे समझाने – भइया जी, यह सब काम आपके बूते का नहीं । आप किस–किससे अपना सिर फोड़ेगे ? जहां नीचे से ऊपर तक अन्याय और बेईमानी है, वहां आप किस–किसको क्या कहेंगे ? मुझे मालूम है कि आप किसीको घूस नहीं देंगे, किसीसे दबेंगे नहीं, फिर लालगंज में बिजली का नलकूप और वह इमारत कभी भी संभव नहीं है । यह सब काम अब आप जैसे सज्जन, षरीफ–ईमानदार आदमी के मान का नहीं ।

विक्रम बोला – तो षरीफ–ईमानदार लोग इस तरह चुप रहें, हाथ पर हाथ धरे बाहर बैठे रहें तो यह कैसी ईमानदारी है ? नहीं, मैं अब इसमें कूद पड़ा हूं, और देखूंगा, मुझमें और इस समन्दर में कितना पानी है !

मुंषीजी ने विक्रम की मुलाकात उस बनवारीलाल से करा दी । पांड़े जी सामने खड़े थे ।

– बनवारीलाल, मुझे सब मिलाकर कितने रूपये घूस देने हैं ?

– आपकी तारीफ ?

– विक्रमादित्य !

दूर से ही मुंषीजी ने बनवारी को आंख मारी । वह घबड़ाकर बोला – ज्यादा नहीं, यही कुल सात–आठ सौ रूपये, आप तो अपने आदमी हैं । पांड़ेजी कई दिनों से दौड़ रहे थे ।

आठ सौ रूपये निकालकर बनवारी के सामने विक्रम ने रख दिए । बनवारी रूपये गिनकर जैसे ही अपने झोले में रखने को हुआ, विक्रम ने उसका हाथ पकड़ लिया – प्यारे भाई, सीधे चलो जिलाधीष के पास ।

बनवारी थर–थर कांपने लगा । वह हाथ छुड़ाकर भागना चाहता था, पर विक्रम की पकड़ और सख्त हो गई । बनवारी चिल्लाया । भीतर से दौड़ा हुआ वही दीनबन्धु निकला ।

मुंषीजी ने सारी कैफियत दीनबन्धु को बता दी । दोनों सहपाठी अब सामने–सामने खड़े थे – मुद्दत बाद, नहीं–नहीं, बीस वर्षों बाद दोनों आज इस तरह एक–दूसरे से परिचित हो रहे थे ।

दीनबन्धु सबको अपने ड्रांइगरूम में ले गया । सबको बैठाकर बोला – देखो बनवारी, यह साहब अपने दोस्त हैं – मेरे 'क्लासफेलो', इनका काम बिना घूस के होना चाहिए ।

– पर साहब, इसमें मेरा क्या कसूर ? मुझे तो सबसे सिर्फ पांच–पांच रूपये कमीषन के मिलेंगे ।

विक्रम को आनन्द आ रहा था । वह सारा दृष्य चुपचाप देख रहा था । दीनबन्धु टेलीफोन पर बातें करने लगा – पहले सहकारी बैंक के मैंनेजर से, फिर चीफ इक्जीक्यूटिव इंजीनियर के सहायक से ।

टेलीफोन रखकर दीनबन्धु ने कहा – मिस्टर विक्रम, जाइए आपका काम हो जाएगा !

– मिस्टर विक्रम नहीं, श्री विक्रम ।

यह कहकर विक्रम ने दीनबन्धु से पूछा – भाई, तुम्हारे पास इतनी ताकत कहां से आई ?

– ताकत आती नहीं, हासिल की जाती है ।

– कैसे ?

– क्या करोगे जानकर, जाओ चुपचाप अपना काम करो ।

यह कहकर पहले दीनबन्धु हंसा, फिर विक्रम हंसने लगा । दोनों मित्र एक–दूसरे से और ज्यादा परिचित होने लगे । दीनबन्धु के पास बहुत कुछ था अपने बारे में बताने के लिए । इन बीस वर्षों में उसने कितना धन कमाया, कितनी ताकत हासिल की, बड़े गर्व से वह बताता रहा । विक्रम ने कहा, वह अब जीवन–समुद्र में कूद पड़ा है । जीवन माने राजनीति, जो आज सब चीजों का संचालन कर रही है । वह विष्लेषण करके बताने लगा कि राजनीति एक ऐसा नया दर्षन और षक्ति है, जिसका संबंध और बोध भारतीय जन–जीवन और मनीषा से कभी नहीं रहा है । भारत के जीवन का संबंध और बोध केवल धर्म से रहा है । राजनीति का जन्म और उदय हुआ है स्वतंत्रता से । जब तक स्वतंत्रता का संघर्ष हो रहा था, तब तक यह राजनीति उसी धर्म, उसी आदर्ष के भीतर से प्रकट हो रही थी । पर जब देष आजाद हो गया, तो इसके बाद राजनीति, धर्म और आदर्ष से मुक्त होकर, नंगी हो गई । और तब यह राजनीति कुछ ऊपर के ही लोगों की, चन्द व्यक्तियों और घरानों की ही षक्ति बनी हुई है । इससे कोई मूल्यगत, जीवनगत संबंध नहीं रहा यहां की जनता से । यहां का सारा पढ़ा–लिखा वर्ग, बाबू या सज्जन बनकर इससे दूर ही रहा । और यहां की सारी राजनीति केवल दो पहियों पर चल रही है – एक पहिया है कांग्रेसी नेता और दूसरा है यहां का पूंजीपति, ठेकेदार, साहूकार, मालदार – ठीक उसी तरह जैसे मध्ययुग में जीवन का एक पहिया था धर्म और दूसरा सामन्त । यहां षुद्ध राजनीति – जिसकी धुरी है मानवकल्याण, मानव मुक्ति का दर्षन – अभी विकसित ही नहीं हो पाई । इसलिए आज की राजनीति एक ऐसा रथ है, जिसमें सिर्फ एक पहिया है : षासन की राजनीति, अधिकार की राजनीति और उस रथ में बैठी हुई है भारत की साठ करोड़ जनता .... जनता माने मनुष्य नहीं, मतदाता – वोटर्स । और वह चिल्ला रही है जनता – रथ आगे क्यों नहीं बढ़ता ? अरे भाई रथ का दूसरा पहिया कहां है ?

दीनबन्धु ने पूछा – वह दूसरा पहिया क्या है ?

– यह आप बताइए, आप तो इतने षक्तिषाली हैं, साधनसम्पन्न हैं ।

यह कहकर विक्रम वहां से उठ पड़ा । गाते हुए सड़क पार करने लगा :

उठ जाग मुसाफिर भोर भई
अब रैन कहां जो सोवत है !
जो सोवत है, वह खोवत है
जो जागत है वह पावत है ।

लालगंज लौटकर विक्रम ने बैताल पांड़े से कहा – नलकूप और इमारत बनने का काम कल से षुरू होना है । संघ के सारे लोग समान से रूप मिलकर एकसाथ काम करेंगे ।

पांड़े ने बताया – सीमेंट और लोहा ब्लैक से ही खरीदना होगा । यह सुनते ही विक्रम ने कहा – सारा कुछ काला बाजार हो गया, इसके जिम्मेदार हम सब हैं । जाओ, काम षुरू करो !

अगले दिन सुबह ही सुबह विक्रम अपनी पत्नी के संग उस मैदान में आया, जहां नलकूप बनना था । गोबर से लिपी–पुती वह स्वच्छ जमीन – तिल्लोकी और फुलगेंदा वहां आमने–सामने बैठे थे ।

विक्रम खुषी से भर गया । बोला – फुलगेंदा, गीत सुनाओ ।

वह गाने लगी – संग तिल्लोकी भी गाने लगा ।

विक्रम बढ़कर उन दोनों के हाथ पकड़कर बोला – तिल्लोकी, तुम फुलगेंदा से षादी करोगे !

षादी हो गई । सारा गांव खड़ा देखता रह गया ।

नलकूप बन गया । इमारत बनने लगी । लोग विक्रम को सीमेंट की बोरियां खोल–खोलकर दिखाते – सीमेंट में बालू की मिलावट है । विक्रम जवाब देता – मिलावट पहले हममें हुई है; फिर चीजों में मिलावट षुरू हुई है । खुद देखो अपने–आपको, फिर इस मिलावट की सीमेंट से अपनी तुलना करो ।

बताओ, हमने कब किससे विरोध किया इस मिलावट, चोरबाजारी के खिलाफ ! हम तो सिर्फ वोट देते रहे और सोचते रहे कि हम नहीं, कोई और आकर हमारी सारी समस्याओं, मुसीबतों को दूर करेगा ।

एक दिन बाबू गोइंठा सिंह आए, बोले – विक्रम बाबू, हमने सिंचाई के मिनिस्टर को तैयार कर रखा है । वह आकर इस नलकूप और इमारत का उद्घाटन करेंगे । विक्रम ने कहा – अपने मिनिस्टर से बोलो, उद्घाटन के लिए हमारे ग्रामसंघ को पचास हजार रूपये दें ।

– इसमें क्या रखा है; दे देंगे । वह जो अपना दीनबन्धु है, वही कर देगा प्रबन्ध ।

विक्रम बाबू गोइंठा सिंह का मुंह देखता रह गया ।

– मेरा मुंह क्या देखते हो यार ?

– यह सब कैसे हो गया भाई ? अब संकोच भी नहीं रहा ? याद है न, उन्नीस सौ बयालीस में हम लोग हाई स्कूल में पढ़ते थे – तब हम कैसे थे ? क्या सोचते थे ? क्या था कर्म और व्यवहार हमारा ? आज यह सब क्या है – जरा बताओ मुझे गोइंठा बाबू !

गोइंठा सिंह हंस पड़े, हंसते रह गए ।

उसी षाम, विक्रम के मामा जी आए – कुंवर दिलीप सिंह । बम्बई से लखनऊ तक हवाई जहाज से ; लखनऊ से लालगंज तक वातानुकूलित बेषकीमती कार से । मां ने विक्रम से तंग आकर अपने भाई को इस तरह यहां बुलाया था । विक्रम ने सुन तो बहुत रखा था इस बम्बई वाले मामा के बारे में, पर मुलाकात पहली बार हुई ।

मामाजी से, पूरे घर–परिवार, गांव में रहे – बिलकुल चुपचाप सिर्फ लोगों को सुनते रहे । मामा जी के लिए यह प्रसिद्ध था कि जब बहुत नाराज होते हैं, तब चुप हो जाते हैं । और इस तरह लोग, विषेषकर मां, विक्रम के लिए चिंतित थे कि दोनों में कहीं कुछ बुरा न हो जाय ।

विक्रम जैसे रोज, नित्य रहता था, वैसा ही मामाजी के सामने, उनके साथ रहा । और लोग आष्चर्यचकित तब रह गए जब मामाजी बिना किसीसे कुछ बोले ही बम्बई चले गए ।

इसकी चोट मां पर ऐसी पड़ी कि उन्हें दिल का ऐसा दौरा पड़ा कि तीन दिन के भीतर ही स्वर्ग सिधार गईं ।

मां को चिता पर आग देकर विक्रम ने उसी षाम संघ में घोषणा की कि नलकूप का उद्घाटर करेंगी श्रीमती फुलगेंदा और बिल्डिंग में प्रवेष–पूजा करेंगी श्रीमती पंड़ाइन ।

अगले दिन समारोह में गाने–नाच हुए । चमारों ने कठघोड़वा खेला । सुदीहल चमार ने दौरीदफला बजाया । हनुमान धरिकार ने तुडु ही – नागबाजा का संगीत सुनाया । कन्हई के मृदंग पर रमरतिया अभुआती रही । रामलोटन नाऊ की स्त्री मुंगरी अपने छप्पर पर बैठकर सूप और थाली बजाती हुई गालियों भरा अनुआंदरै करती रहीं । पंड़ाइन ने फूहड़ से फूहड़ गीत सुनाए । रामआसरे धोबी के लड़के ने तिल्लोकी नाऊ की नकल उतारी । तिल्लोकी और फुलगेंदा ने गा–गाकर सवाल–जवाब किए :

फुलगेंदा –

झिरझिर–झिरझिर नदी बहत है
झिरझिर बहुत बयार
हे मुरहा हम तोंहसे पूंछी
तीहरे जुल्फी के कौन सिगार ?

तिल्लोकी –

झिरझिर–झिरझिर नदी बहत है
झिरझिर बहुत बयार
हे दिलजानी अपन्नु कों तूंसों पूछूं
तेरे 'वाडिस' मानो चोली का कौन सिगार ?

और अन्त में गायन हुआ सुगनसुंदरी का । सारा गांव, दिन निकल आया तब तक, संगीत सुनता बैठा रहा ।

6

सचमुच पंड़ाइन मां बनने को हुईं । अभी कुल चार महीने का गर्भ, बात पूरे गांव–ज्वार में फैल गई कि तिल्लोकी नाऊ के हाथ में ऐसा जस है ।

चैत–बैसाख के दिन थे । तिल्लोकी फुलगेंदा के साथ उसी सहकारी संघ की नई बिल्डिंग के पिछवाड़े अपनी छोटी–सी घर–गृहस्थी बनाकर रहता था । वही नलकूप, इमारत और चीजों की रखवाली करता था । फुलगेंदा सबकी रखवाली करती थी – खेत, फसल से लेकर तिल्लोकी तक की ।

एक दिन आठ–दस औरतों का झुंड सुबह ही सुबह तिल्लोकी के दरवाजे पर आ धमका । तिल्लोकी ने पूछा – क्या है ? औरतें षरम से पानी–पानी हो गईं । मारे लाज के न कुछ बोलतीं, न वहां से हटतीं । फिर फुलगेंदा ने बताया – सबको बच्चा चाहिए । अब मारो काली बिल्लियां ।

उसने कहा – नहीं, नहीं, अपन कूं कुछ नेहीं जानता । वह सब खुद पांड़े ने खुद किया .... जोग, मंत्र पावर से .... ।

थोड़ी ही देर में बैताल पांड़े दौड़ते आए, पीछे–पीछे वही स्त्रियां । सबके सामने हाथ जोड़कर बोले – मैं हाथ में जल लेकर सच–सच कहता हूं, मैंने भंईलोटनपुर से यहां लौटते ही अपना वह सारा तंत्र–मंत्र, भूत–प्रेत माया–जोग–तंत्र छोड़ दिया – वरना विक्रम मुझे सदा के लिए छोड़ देता । पंड़ाइन के जीवन में यह चमत्कार इसी तिल्लोकी के उपाय का फल है ।

तिल्लोकी चिल्लाया – नेहीं–नेहीं, यह सब पोप लीला है । पांड़े कमजोर थे, मैंने इन्हें इसी उपाय से कबूतर का खूब गोष्त खिलाया । इनकी तंदुरूस्ती ठीक कोई गई । फिर पंड़ाइन कूं बच्चा होना ही था । जाओ–जाओ, अपनी और अपने मर्दों की तंदुरूस्ती ठीक करो । भाग जाओ यहां से !

औरतें बड़ी मुष्किल से गईं । पांड़े हंस पड़े । तिल्लोकी बहुत नाराज था – बेवकूफ साला लोग, घर में खाने कूं नेहीं, तंदुरूस्ती एकदम फोकट, इनकूं बच्चा चाहिए । इनके बदन में है क्या जो बच्चा होई जाए – फोकट में बमें मारती हैं साला लोग – जरा भी अकल नेहीं । इस माने में तो जैसा अपना भुंईलोटनपुर, वैसा यहां भी । तुम क्या हंसता पांड़ेजी ! हमकूं बताओ – यह गांव वाला लोग इत्ता बच्चा क्यों मांगता !

पांड़ेजी गंभीर होकर बोले – यह सारा चक्कर बहुत पुराना है भाई । धर्म का अंधविष्वास इससे जुड़ा है । कौन जाकर समझावे यहां की एक–एक औरत और मरद को, और अपना सर फोड़े !

आषाढ़ का पहला पानी बरसा । इस साल धान की श्रेष्ठ फसल के लिए नये उन्नत किस्म के बीज और रासायनिक खाद, सरकारी ऋण से खरीदकर सब पहले से ही संघ की नई इमारत में स्टोर कर लिए गए थे ।

जोताई–बोआई षुरू होने से पहले संघ के मजदूर–किसानों ने बीज और खाद में मिलावट देखी। वह सहकारी खेती सबकी समान रूप से थी, उसकी पैदावार, लागत, पूंजी, मेहनत में सब समान और सामूहिक प्रतिक्रिया हुई । दुःख, आवेष और क्रोा का वह वातावरण देखकर विक्रम बोला – यह मिलावट करने वाला कौन है ? आदमी है । अच्छा, यह आदमी कहां से आया ? हमारे समाज और देष से । अच्छा, इससे किसने कहा कि इस तरह चीजों में मिलावट करो ।

सब चुप ।

तब विक्रम ने कहा – सुनो पंचो, एक कहानी हरा समन्दर में गोपीचन्दर की । एक था अंगरेज बन्दर, दूसरा था भारतीय बन्दर । भारतीय बन्दर गुलाम था अंगरेज बन्दर का । जुल्म–अत्याचार सहते–सहते भारतीय बन्दर एक दिन उठ पड़ा : मारो, निकाल बाहर करो इस अंगरेज को । सो भइया, आजादी की वह लड़ाई जब चली, तो खूब चली – नीचे से ऊपर तक – नहीं–नहीं, ऊपर से नीचे तक चारों ओर विरोध ही विरोध उस अंगरेज बन्दर का । और हमने उससे लड़कर एक दिन आजादी पाई । तो जब हमने अपने मुल्क का संविधान बनाया तो उसमें भी हमने वही विरोध प्रकट करने का पूरा अधिकार लिखकर दे दिया और हम एकदम भूल गए कि आजाद बन्दर के लिए जितना ही खाना रहना जरूरी है, उससे कहीं ज्यादा जरूरी है रीति–नीति और मूल्यों की एक संहिता जो उसके सार्वजनिक जीवन का नियमत और नियंत्रण कर सके ।

अचाजक तिल्लोकी की आवाज आई – अय चौप्प रहो ! क्या खिसिर–खिसिर करता है बीच में । बन्दर के माने हम लोग, इंडियन ।

विक्रम कह रहा था – इसी बुनियादी भूल के कारण आज जीवन के हर क्षेत्र में भ्रष्टाचार का बोलबाला है । आज चाहे सत्ताधारी षासक हो, चाहे उसका विरोधी हो, दोनों भ्रष्ट और निरर्थक हो गए हैं। फिर हम यह आषा कैसे करें कि लोग बेईमानी न करें, चीजों में मिलावट न करें । पर नहीं, हमारी वह आषा, आस्था नहीं मरी है, न कभी मरनी चाहिए कि मनुष्य बुनियादी तौर पर एक अच्छा, बेहतर प्राणी है : उसने कितने संघर्षों के बाद सार्वजनिक जीवन–मूल्यों की तलाष की है और वहीं वह जीना चाहता है ।

सहसा किसी की आवाज आई – अरे भाई, वह बंदरवाली कहानी कहां गई ?

– वही तो हमारे साथ है । सबके बीच में घूम रही है ।

– क्यों घूम रही है बेमतलब ?

बैताल पांड़े के मुंह से बड़ी गंभीरता से यह प्रष्न निकला । विक्रम ने कहा – इसलिए कि यहां कोई बुनियादी परिवर्तन नहीं आया । फिर वही बात । यह मत पूछिए कब से ? समझिए कि जब से हम गुलाम हुए । फिर वही बात । यह सोचिए कि जब से हमें होष आया । कब से होष आया ?.... धत्तेरे की ! मैं अब कुछ नहीं बोलूंगा ।

– बोलो भइया, क्यों नहीं बोलोगे । हे भाई, चुप्प हो जाओ । ऐ लड़का लोग, भाग जाओ यहां से – मिठाई नेहीं बंट रही है । अपनु कूं बोलता है कि.... । यह इलेक्षन की मीटिंग नेहीं है – चौप्प !

चारों ओर सन्नाटा छा गया ।

विक्रम कहने लगा – पंचों, अब तो बोलने का मतलब सिर्फ एक है – वोट लेना, वोट मांगना । षासक भी वोट मांगता है । जनता अब इन्सान न रहकर वोटर हो गई । फिर मैं क्या बात करूं !

यह कहकर विक्रम वहां से चुपचाप चला गया ।

एक दिन गांव में बाबू गोइंठा सिंह जी आए । ग्राम पंचायत प्रधान के दरवाजे पर सवर्ण लोगों की भीड़ लग गई । विक्रम और सहकारा खेती के सारे विरोधी वहां जमा । गोइंठा सिंह ने कहा – सब समान हों, सबके अधिकार और फर्ज समान हों, यह कुदरत के खिलाफ है । विक्रम की सहकारी खेती आंदोलन के पीछे जरूर किसी विदेषी सरकार का हाथ है । कुछ विदेषी सरकारें नहीं चाहतीं कि हम तरक्की करें । लोकतात्रित समाजवाद के रास्ते पर हम चल पड़े हैं । हमें रोकने वाला कोई नहीं है ।

उसी षाम विक्रम प्रधान के घर स्वयं आकर गोइंठा सिंह से मिला । वह कुछ बातें उनसे समझना चाहता था । वह उनसे प्रष्न पर प्रष्न करता रहा । पर गोइंठा सिंह के पास तो सारे प्रष्नों का केवल एक ही उत्तर था – भाई, कहां–कहां की बात तुम मुझसे पूछते हो ! साफ बात यह है कि तुम चुपचाप अपना काम करो और मुझे अपना काम करने दो ।

– क्या है आपका काम ?

– अपने इस क्षेत्र का एम0 एल0 ए0 का बना रहना । इसके लिए मात्र मेरा काम है : अपने विरोधियों के खिलाफ बोलना, बस । देखिए विक्रम बाबू, आप बुरा मत मानिए, मैंने जो आपके लिए कहा, आपकी सहकारी खेती के खिलाफ, वह मुझे कहना ही था क्योंकि इससे सवर्ण लोगों को प्रसन्नता होती है।

विक्रम चुप रह गया । जाने–जाते उसके उसके मुंह से एक प्रष्न निकला – आपका विरोधी कौन है ?

– अरे, कौन नहीं ?

– असली विरोधी आपका या आपकी पार्टी या सत्ता का कोई नहीं है ।

– यह क्या बात करते हो ?

– सच कहता हूं ठाकुर साहब, कितने वर्ष बीत गए, न यहां कोई योद्धा हुआ न कहीं कोई वास्तव में विरोधी देखने को मिला । योद्धा था गांधी, पर वह सच्चा विरोधी नहीं था । योद्धा और विरोधी थे भगतसिंह आजाद, सुभाष, लोहिया, पर इस मुल्क में उसके बाद कोई सच्चा योद्धा–विरोधी नहीं पैदा हुआ ।

– मतलब, अब तुम पैदा हुए हो ?

– हां, वे सब हैं मेरे भीतर – गौतमबुद्ध से लेकर राममनोहर लोहिया तक । गोइंठा सिंह जी हंसने लगे । विक्रम भी मुस्कराने लगा – बिल्कुल बेवकूफों वाली हंसी हंसने लगा । लोग ताज्जुब करते हैं – विक्रम को गुस्सा क्यों नहीं आता ! आता है तो बाहर नहीं दिखता । वह उदास–निराष नहीं होता – बस, भीतर कहीं पहुंचकर जैसे विश्राम करने लगता है । निरूद्देष्य घूमने निकल जाना, कोई पुस्तक लेकर पेड़ पर चढ़ जाना और कहीं चुपचाप पढ़ने लगना, कहीं भी कुछ सुन्दर दिख जाए, उसे एकटक निहारना, और अकस्मात् गाने लगना – ये कुछ ऐसी आदतें थीं विक्रम की, जिनसे लोग–बाग घबड़ा जाते थे ।

खरीफ की फसल में संघ के कुछ लोगों ने विक्रम से एक अजीब षिकायत की । चमार, धुनियां, डोम से ऊपर की जाति वाले मजदूर किसान, जैसे कहार, नाऊ, धरकार और धोबी–नाई सहकारी खेती में मेहनत से जी चुराते हैं । तरह–तरह के बहाने बनाकर या तो अपने घरों में ही पड़े रह जाते हैं या कहीं खिसक जाते हैं । पता यह भी चला कि ये लोग कहते हैं कि अब तो सहकारी खेती से बराबर गल्ला मिलेगा ही । तिल्लोकी नाऊ ने यह बताया कि ये लोग अपने–आपको चमार, धुनिया, डोम से ऊंचा समझकर मेहनत से जी चुराते हैं और अपने बड़प्पन को साबित करना चाहते हैं ।

विक्रम को इस ज्ञान से बड़ा मजा आया । उसने रबी की फसल में एक प्रयोग किया । उसने हर जाति के लोगों को अलग से उसी सहकारी खेती में से एक–एक बीघा खेत दिया और संघ ने निर्णय लिया कि जिसकी उपज सबसे ज्याद होगी, उसे इनाम दिया जाएगा । बैसाख के पहले पखबारे में फल सामने था – गेंहूं की सबसे ज्यादा फसल चमारों के खेत में । पर इसका फल अन्त में हुआ बुरा । हर जाति के लोग अपने–आपको अलग–अलग गुटों में सोचने और पाने लगे । गांव के सवर्णों को मजा आने लगा । लगे एक–दूसरे को लड़ाने और फोड़ने ।

तभी संघ की बैठक में विक्रम ने एक अजीब निर्णय लिया – सहकारी खेती के जितने भी सदस्य हैं, जितने घर–परिवार हैं, उनके दुख–सुख, समान रूप से सबमें बंटेंगे .... यहां सिर्फ एक जाति है मनुष्य, बाकी सब जात–पांत झूठ है । बेमतलब है ।

दुख–सुख समान !

यह कैसे हो सकता है !

जब ब्राह्मण का दुख–सुख क्षत्रिय, कुरमी, लाला, बनिया के समान नही ंतो कहार का दुख–सुख चमार के समान कैसे हो सकता है ! और इस तरह चमार का दुख–सुख डोम के बराबर कैसे होगा ?

सही बात है ।

हम आधा ही पेट खाइकर रह जाएंगें, पै ऐसी सहकारी खेती को मारो गोली ! भला बताओ भइया, कहां लोचन चमार, कहां मानू डोम । सोचने की बात है, धर्म बड़ा कि पेट ससुरा । अजी धरम बड़ा बबुआ !

और धर्म सिर्फ इसी जांत–पांत में है ?

और नही ंतो का ?

उस नये स्कूल में गांव के बच्चे चिल्ला–चिल्लाकर पढ़ रहे थे – क माने कउआ, ख माने खरगोष, ग माने गधा, उसीमें विक्रम आकर घुस गया और बोला :

क, माने पहले खूब काम करो ।

ख, माने फिर खाओ ।

ग, माने – जो ऐसी नहीं करता, वह गधा ।

गांव के बच्चे यही गांव में आकर लगे बोलने ।

उन्हीं दिनों पंड़ाइन को पुत्र हुआ । बेहद खुषी । क्या कहने ! वाह पांड़ेजी । वाह बेटा तिल्लोकी ! बड़ा जस है तेरे हाथ में ।

पांड़े–पंड़ाइन ने इस खुषी में गांव–भर की दावत देनी चाही । विक्रम ने कहा – दावत नहीं सहभोजन, लंगर । सब एक साथ भोजन में षरीक हों ।

आधा गांव पहले ही बंटा था सवर्ण और षूद्र वर्ग में । अब इस नये मसले पर और भी बंटवारा होने लगा ।

अब अपने ही लोगों में से विक्रम के खिलाफ बातें उठने लगीं । अपने ही लोग उसे उल्टी–सीधी बातें कहने लगे । वह मंद–मंद मुस्कराता और सिर्फ यही कहता – ऐसे ही होता है ।

एक दिन सुगनसुन्दरी ने विक्रम से कहा – जाओ कहीं कोई छोटी–सी यात्रा कर आओ, हम लोग यहां के काम संभाल लेंगे ।

बेहद प्रसन्नता से विक्रम बोला – प्रिये, तुम्हीं तो मेरे मन–प्राण की एकमात्र साक्षी हो, मैं अब छोटी–सी यात्रा नहीं, एक बड़ी यात्रा पर चला जाना चाहता हूं .... अकेले ।

– कहां ?

– अपने से बाहर ।

– किधर ?

– विकल्प और विरोध में ।

यह सुनते ही सुगनसुन्दरी की आंखें भर आईं । विक्रम के मन में जैसे इसी क्षण से ही वह मेघदूत का विरही नायक यक्ष तड़प उठा ।

आधी रात का सन्नाटा । सुगन और विक्रम आमने–सामने बैठे हुए कभी एक–दूसरे को निहारते रह जाते, कभी उनके होंठ फड़क जाते ।

सुगन ने पूछा – कहां जाओगे !

– समन्दर में !

– समन्दर ?

– हां, देवि, यह संसार समन्दर तो है ही, मैं इसी में गोता लगाऊंगा, देखूंगा कि इसके भीतर कुछ है क्या, ऐसा कुछ जिससे आज हमारे चारों ओर छाए हुए झूठ, प्रपंच, बेईमानी, पतन और निराषा के खिलाफ लड़ाई की जाए और समाज–देष के सामने एक विकल्प तैयार किया जा सके ।

– मेरी मंगल कामनाएं लो, ईष्वर तुम्हारे साथ है ।

यह कहकर सुगन ने विक्रम को अपने अंक में भर लिया । विक्रम उसे प्यार करते हुए बोला – मैं अकेला नहीं हूं । ऐसा लगता है, असंख्य लोग मेरे साथ हैं और वे मेरे चारों ओर प्रतीक्षा कर रहे हैं । इतने दिनों में तुम्हारे साथ जीकर, थोड़ा–सा ही कुछ काम करके मैंने अनुभव किया है कि भारत अपने मूल स्वरूप में कर्मभूमि है, भोगभूमि नहीं ।

बड़ी देर तक दोनों चुपचाप एक–दूसरे की आंखों में न जाने क्या निहारते रहे । सुगन के भरे कंठ से निकला – सुनो, कुछ लोग तुम्हें पागल, सिरफिरा कहेंगे, तुम कभी भी इन बातों से विचलित न होना । तुम अपने कर्म में आनन्द पाओ । सफलता–असफलता कभी भी तुम्हारे ध्यान में न आए, जाओ । विदा देती हूं । सांसारिक चिन्तांए विषेषकर मेरी चिन्ता और यहां तक कि अपनी भी चिंता तुम्हें एक क्षण के लिए भी कमजोर न बनाए .... यही मेरा प्यार, आषीष, अमृत पाथेय, जो कुछ भी समझो .... ।

विक्रम चुपचाप चल पड़ा – बिल्कुल अकेला । सुबह होने में दो घंटे की ही देर थी । गांव से बाहर निकला ही था कि बैताल पांड़े की आवाज आई – जै हो विक्रम की ! मैं साथ हूं ।

7

बस्ती षहर के पास कुआनो नदी पार करते हुए विक्रम ने सूर्योदय के दर्षन किए । पक्की सड़क पर आगे चौराहा था – जहां से बस्ती षहर का क्षेत्र षुरू होता है ।

बहुत ही तेज भागती हुई एक जीप बगल से गुजरी । चौराहे पर तैनात पुलिस के सिपाही ने उसे रोकना चाहा – पहले हाथ उठाकर, फिर सीटी बजाकर । पर जीप रूकी नहीं । बल्कि सिपाही को धक्का देती हुई सन्न से निकल गई । सिपाही सड़क पर घायल होकर गिर पड़ा । उसके सिर से खून बहने लगा । बेहोष ।

दौड़कर विक्रम ने सिपाही को सम्हाला । बैताल पांड़े ने गुहार मचाई – दौड़ो पंचो, दौड़ो ! बचाओ !

पर अजीब बात, लोग दूर से ही देखकर उल्टे भागने लगे । विक्रम बेहोष–घायल सिपाही को अपने कंधे पर लादे पास ही में चुंगी ठेके पर ले आया । जब वहां से वह पुलिस लाइन, कोतवाली और अस्पताल को टेलीफोन करने लगा तो चुंगी के बड़े बाबू ने उसे पहचान लिया कि मारे गए ! यह तो वही आदमी है जो कभी आलू–भरी कई बैलगाड़ियों के साथ यहां आया था और खामखा तूफान मचा गया था। फिर भी बड़े बाबू ने कहा – देखिए महाषयजी, यह पब्लिक टेलीफोन नहीं है ।

पांड़े तड़पे – देखते नहीं, एक आदमी मर रहा है !

– मरनेवाले को कौन बचा सकता है !

– हम किसलिए हैं ? और क्या काम है हमारा ?

– आप किस मुसीबत में फंस रहे हैं, समझते क्यों नहीं ? आपके फायदे की ही बात कर रहा हूं .... वह जीप किसी मामूली आदमी की नहीं थी । यहां चुंगी पर भी वह कभी नहीं रूकती ।

– तुम लोग बुजदिल हो । चोरी, बेईमानी, घूसखोरी ने तुम्हारी आत्मा को खा लिया है । बताओ, वह किसकी जीप थी ? कौन, क्या था वह ?

– मैं क्या जानूं !

बड़े बाबू यह कहकर भीतर कमरे में भागे । चुंगी के कर्मचारियों ने विक्रम को घेर लिया । तभी कोतवाली और पुलिस लाइन्स की दोनों जीपें आ गईं ।

विक्रम और पांड़े ने सारी बातें बता दीं और विक्रम ने यह भी बता दिया कि उस जीप की जानकारी चुंगी बाबू का है ।

एक जीप घायल सिपाही को लिए अस्पताल भागी । दूसरी जीप वहां रूक गई । चुंगीबाबू को विवष होकर बताना पड़ा – वह जीप थी दीनबन्धु गुप्ता की .... ।

इसके आगे पुलिस इंस्पेक्टर ने अविलम्ब सब कुछ पता लगा लिया । दीनबंधु की वह जीप नेपाल बार्डर से आ

रही थी । उसमें गांजा–चरस लदा था । सिपाही नया था । उसे क्या जरूरत थी वह जीप को सरेआम चौराहे पर रोके ।

पुलिस इंस्पेक्टर से विक्रम डट गया । दोनों में बातें बढ़ती गईं । विक्रम उस निर्दोष, ईमानदार सिपाही का पक्ष ले रहा था, इंस्पेक्टर अपनी नौकरी का पक्ष । विक्रम ने पूछा :

– फिर पुलिस का काम क्या है ?

– नौकरी ।

– कैसी नौकरी ?

– जैसी और लोग कर रहे हैं । हमीं सारी मुसीबतें क्यों लें ?

आदमी अपने काम से भाग रहा है । आदमी इतना कायर होता जा रहा है । वह जो कुछ भी कर रहा है, जितना कुछ भी सोच रहा है, उसके मर्म में है सिर्फ एक चीज । इसका फल, नतीजा क्या होगा ? छिः !

विक्रम सीधे दीनबंधु के बंगले की ओर बढ़ा – बिल्कुल पैदल । बैताल पांड़े से न रहा गया :

– हे वीर पुरूष, मुझे बहुत भूख लगी है ।

विक्रम ने गंभीरता से कहा – पांड़ेजी, अपनी भूख कम कीजिए वरना आप मेरे संग नहीं चल सकेंगे ।

पांड़ेजी बोले – हे विक्रम, तू ध्यान से सुन, भूख और प्यास, ये दोनों बुनियादी सत्य हैं । ऐसे सत्य, जिनपर मनुष्य का सारा जीवन, उसके सारे संस्कार और उसकी पूरी संस्कृति खड़ी हुई है । सो ऐसा है मित्र, तू थोड़ा षांत होकर मेरे साथ–साथ चुपचाप चल ।

बैताल पांड़े पैदल चलते–चलते बस्ती कचहरी से आगे, कटरा मुहल्ला में एक भड़भूजे की दुकान में आए । भड़भूजे की पत्नी काफी सुन्दर थी । पर पांड़ेजी का ध्यान उधर न जाकर सत्तू, चिउरा–दही–मटका की ओर गया, जिसे भड़भूजा बैठा बेच रहा था । भड़भूजिन बैठी पान लगा रही थी ।

विक्रम बस उसी ओर निहारने लगा और म नही मन उस सहज सौन्दर्य की प्रषंसा करने लगा ।

पांड़ेजी ने इस बीच भड़भूजे को समझाना चाहा – हे भड़भूजे, मेरा वह मित्र जो खड़े–खड़े चुपचाप तुम्हारी पत्नी के सौन्दर्य की प्रंषसा कर रहा है एक बहुत बड़ा महापुरूष है । तुम्हारे धनभाग हैं। तुम हमारी क्या सेवा कर सकते हो ?

भड़भूजे ने गुस्से में डांटा – हे महापुरूष, उधर से अपनी नजर हटाइए, वरना ठीक न होगा । इधर आइए .... जो कुछ भोजन–पानी करना हो, कीजिए और अपने रास्ते जाइए, बड़े आए हैं ! बहुत देखे हैं ऐसे महापुरूष !

विक्रम भड़भूजे के पास आकर खड़ा हो गया । उधर बैताल पांड़े पत्तल–भर के पूड़ी–सब्जी, चिउरा–दही पर टूट पड़े ।

विक्रम ने पूछा – क्यों भाई, तुम्हारा विष्वास अब नहीं रहा मनुष्य पर ?

– बिल्कुल नाहीं, न किसी महापुरूष पर, न किसी कार्यकर्ता पर, न किसी नेता पर .... मेरा जरा भी विष्वास नहीं, हां ! चारों ओर है धोखा और लूट, हां नही तो का ?

विक्रम चुपचाप भड़भूजे को देखने लगा । पांड़ेजी खूब छककर भोजन करने के बाद भड़भूजिन से पान लगवाने लगे ।

भड़भूजे ने एकाएक विक्रम को डांटा – यह तुम्हारी कौन–सी आदत है, टुकुर–टुकुर मुंह निहारने लगते हो !

– तुम्हें कुछ पता है, किससे बातें कर रहे हो ? यह लो अपने पैसे !

बंगले पर दीनबंधु नहीं था । पर वह जीप खड़ी थी । पता चला, साहब स्टेषन पर किसीसे मिलने गए हैं । डेढ़ बजे तक लंच के समय आएंगे । इस बीच विक्रम अस्पताल गया । पुलिस सिपाही अब तक बेहोष था । उसके घरवाले बाहर बरामदे में बैठे रो रहे थे । छः–सात पुलिस सिपाही भी वहां खड़े थे । विक्रम ने उन्हें सारी बातें बता दीं । और जब वह न्याय और संघर्ष की बातें करने लगा, तब एक सिपाही ने कहा – साहब, किसकी ऐसी हिम्मत है, जो दीनबंधु के खिलाफ आवाजा उठाए । इस जिले के दो एम0 पी0, चार एम0 एल0 ए0 उसके अपने आदमी हैं ।

पांड़े बोले – पर वह भगवान तो नहीं ?

– हां, पर कलयुग के भगवान का अवतार जरूर है ।

विक्रम के मुंह से निकला – ईष्वर इस सिपाही को स्वस्थ करे, फिर मैं देखूंगा, न्याय क्यों नहीं है ?

– आप कौन हैं श्रीमान ?

पांड़ेजी ने एक–एक की जिज्ञासा षांत की ।

ठीक डेढ़ बजे विक्रम दीनबंधु की कोठी पर पहुंचा । भेंट हुई । विक्रम ने उसे सारी बातें साफ–साफ बता दीं । दीनबंधु ठहाका मारकर हंस पड़ा ।

विक्रम ने आज्ञा दी – बैताल पांड़े, इनकी हंसी का जवाब हंसी में दो ।

पांड़े लगे हंसने । दीनबंधु घबड़ा गया। गंभीर होकर बोला – यह पुलिस और मेरा निजी मामला है, इससे तुम्हारा क्या मतलब ?

विक्रम बोला – सुनो मेरे सहपाठी दीनबंधु ! मेरे सामने, मेरे चारों ओर जो कुछ भी हो रहा है, उससे मेरा मतलब बिल्कुल सीधा और साफ है ।

– मतलब ?

– हां, मतलब, वही इन्सान होने का है ।

– सुनो विक्रमादित्य, मैं तुम्हें वही सहपाठी होने के नाते सलाह देता हूं : तुम बेकार दूसरों के चक्कर में मत पड़ो । मुझे मालूम है, षुरू से ही तुम्हारे दिमाग के कुछ कलपुर्जे ढीले हैं । और वह लाइलाज हैं । बेहतर यही होगा, तुम अपने उसी गांव–घर जाकर चुपचाप बैठो । किताबें पढ़ो, सोओ, सपने देखो और हो सके तो ईष्वर का नाम लो । सज्जनता का जीवन जियो ।

– सुनो दीनबंधु ! जो कुछ भी मैं कर रहा हूं, वही मेरे लिए ईष्वर का नाम है । मैं गांव में जाकर सोऊं, अर्थहीन सज्जनता का जीवन बिताऊं और तुम, तुम जैसे लोग – समाज और इंसानियत के दुष्मन – हत्या, कत्ल, लूट, डाके डालो । यह अधर्म है, अपराध है, विष्वासघात है ....

– क्या चाहते हो ?

– न्याय ।

– कैसा न्याय ?

– अपने अपराधी ड्राइवरी को मेरे सामने हाजिर करो । उस बेहोष पुलिसमैंन की सारी जिम्मेदारियां लो और अपने सारे तस्कर व्यापार का बाकायदा हिसाब–किताब हाजिर करो, सबके सामने !

– तेरा दिमाग खराब है ? चले जाओ यहां से ! निकल जाओ । तेरी यह हिम्मत ! तू समझता क्या है मुझे ?

विक्रम मुस्कराने लगा । दीनबंधु के नौकर–चाकर उसे धक्का देकर कोठी से बाहर करने की कोषिष करने लगे । दीनबंधु षहर कोतवाल और एम0 पी0 को फोन करने लगा ।

सामने कोठी के लान में विक्रम बैताल पांड़े के साथ विषुद्ध सत्याग्रह भाव से बैठ गया । पुलिस–षक्ति स्वभावतः विक्रम के साथ थी । यह ऐसा कौन सिर–फिरा वीर पुरूष है, उसे देखने के लिए षहर के लोग आने लगे ।

दीनबंधु परेषान । उसके घरवाले चितिंत ।

पूरे चौबीस घंटे बीत गए उस सत्याग्रह के । मौका पाकर बैताल पांड़े ने दीनबंधु के कान में कहा – चुपचाप अपना अपराध स्वीकार कर लो .... खैरियत इसीमें है ।

दीनबंधु ने वैसा ही किया ।

तब विक्रम बोला – मुझे पता है, तुम इसे अपराध नहीं, अपनी षक्ति समझते हो । चलो, षुरू से अपनी षक्ति की कहानी मुझे साफ–साफ सुनाओ । याद रहे मित्र से झूठ मत बोलना, वरना तुम 'ब्लडप्रेषर' और 'डाइबिटीज' के मरीज हो जाओगे !

दीनबंधु की कहानी

उसी की जुबानी

मित्र ! उन्नीस सौ पचास की बात है । मेरे पिता, जैसा कि तुम लखनऊ युनिवर्सिटी के दिनों में जानते थे, गल्ले के व्यापारी थे .... खासकर आढ़त का धंधा करते थे । एकाएक वह स्वर्ग सिधार गए। थोड़े दिनों बाद मां भी मर गईं । मेरे सामने अंधेरा छा गया । बी0 ए0 पास था । न मुझसे आढ़त का धंधा हो रहा था न दुकान पर बैठा जाता था । एक दिन मुझे एक आदमी मिला । उसके संग मैं बुटौल, भारत–नैपाल बार्डर, पर गया । वहां उसने मुझे दिखाया कि वह कैसे नैपाल से हिन्दुस्तान में चरस, अफीम, गांजा का 'स्मलिंग' करता है । बेहद खतरनाक काम । मैं भागा वहां से । पर जब मैंने देखा, वह आदमी अपनी उस हिम्मत से कितना अपार धन कमा रहा है, तो मैं भी धीरे–धीरे उस तस्करी पेषे के प्रति खिंचा । पहले मैं उसका नौकर बना, फिर उसका जीप ड्राइवर । और एक दिन उसने कहा – बेटे, अगर यह ट्रक–भरा माल तू बटौल से किसी तरह कानपुर के इस पते पर सही–सलामत पहुंचा दे तो तुझे पांच हजार इनाम । मैंने अपनी जान पर खेलकर यह काम पूरा किया। पांच हजार रूपये पाकर मस्त हो गया । तभी मुझे इक्साइज विभाग का

एक अफसर मिल । मैं झूठ क्यों बोलूं : मैं खुद उससे मिला । सौदा पक्का । उस स्मगलर ने पुलिस और इक्साइज वालों से सीधे मुकाबिला करा दिया । वह जीप पर गांजा–अफीम लादे जा रहा था । दोनों तरफ से गोलियां चलीं । वह मारा गया । पुलिस और इक्साइज अफसरों ने उस माल को बेचकर काफी धन कमाया । मुझे भी तीन हजार मिले । अफसरों ने उस जीप और उस स्मगलर की लाष दिखाकर सरकार से उल्टे इनाम भी लिए और अपनी तरक्की भी करा ली ।

.... इन सब घटनाओं ने मुझपर बेहद असर किया । मेरा जीवन–दृष्टिकोण ही बदल गया । मुझे लगा, आज सबसे बड़ी ताकत धन है । इससे कुछ भी खरीदा जा सकता है । मैंने पुलिस, इक्साइज और बार्डर पुलिस सबसे बाकायदा सांठ–गांठ की । और मेरा तस्कर–व्यापार षुरू । दोनों हाथों में धन ही धन। दो वर्षों के भीतर मैं लखपति हो गया । लखनऊ में एक षानदार कोठी खरीद ली । पर यह पुलिस, इक्साइज वाले अक्सर मेरी नाक में दम किए रहते । फिर एक दिन मेरे दिमाग में एक बात चमकी । प्रकाष फैल गया मेरे भीतर । उन्नीस सौ बासठ का आम चुनाव आ रहा था । तब तक मेरी एक कोठी दिल्ली की डिफेन्स कालोनी में भी बन चुकी थी । मेरे दिमाग में आया – क्यों न लोकसभा के ऐसे दो महत्त्वपूर्ण उम्मीदवारों की धन से पूरी सहायता की जाए जिनका भविष्य काफी उज्जवल है । यह खेल पहले से भी ज्यादा खतरनाक था, पर मैं सोचता – 'नो रिस्क, नो गेन' । मेरा हौंसला बुलन्द था । मैंने दिल्ली में ऐसे दो महत्त्वपूर्ण एम0 पीज को हासिल भी कर लिया जो षासन–तंत्र के अच्छे–खासे लोग थे । मैंने दोनों के लोकसभा चुनावों पर कुल सात लाख लगा दिए । दोनों विजयी हुए और मैं उनके जरिये समाज में कहां से कहां पहुंच गया । पुलिस, अफसर, इक्साइज सबको यह जानने में देर न लगी – दीनबन्धु क्या है ? इसके पीछे क्या ताकत है ?

.... इसके बाद, तब से आज मेरे दीनबंधु की यह ताकत और हैसियत .... ।

विक्रम ने रोक दिया – सावधान, दीनबंधु अब तुम्हारा नहीं है । वह तस्करों का है । भूत और प्रेतों का है !

– मैं .... मेरी .... ।

– चुप रहो ! चुपचाप मेरे साथ आओ ।

दीनबंधु और विक्रम में वहां झड़प होने लगी । अन्त में दीनबंधु ने कहा – मैं सिपाही को सहायता की षक्ल में एक हजार रूपये दे देता हूं । मगर इसके अलावा और बातें तो अब तक खत्म भी हो चुकीं। विक्रम ने कहा – क्या बेवकूफों की तरह बात करते हो ! यहां .... यहां, इस ब्रह्मांड में, जगत् में कहीं कोई चीज खत्म नहीं होती । लो यह तिनका ! इसे खत्म करके दिखा दो तो मैं चुपचाप गांव लौट जाऊं। चलो खत्म करो, मिटा दो इस तिनके को, हे अ–महापराक्रमी ! तिकड़मी ! चलो ।

दीनबंधु ने गुस्से में उस तिनके को चुटकी में मसल दिया – लो, खत्म हो गया !

विक्रम हंस पड़ा – अदीन, अबंधु ! तिनका खत्म नहीं हुआ, उसका महज रूप बदल गया । सुनो ध्यान से कछुए ! जब यहां कोई पदार्थ भी नहीं खत्म हो सकता, सिर्फ उसके स्वरूप में परिवर्तन लाया जा सकता है, तब यहां भाव, मूल्य, आदर्ष को कौन खत्म कर सकता है ?

दीनबंधु तड़पा – जब मैंने तुम्हें सारी कहानी बता दी, फिर भी तुम इस तरह की बातें करते हो !

– अच्छा, इसे रूपये दो और इससे माफी मांगो ! चलो !

दीनबंधु ने रूपये तो दे दिए, पर उस अदने–से आदमी से माफी कैसे मांग सकता था !

विक्रम ने अपना माथा उस घायल सिपाही के कदमों पर रख दिया – इसे माफ करो भाई !

विक्रम वहां से चल पड़ा । घायल सिपाही ने पुकारा – हे भाई, तुम कौन हो ?

– मैं बिल्कुल तुम्हारी ही तरह एक आदमी हूं ।

सिपाही हाथ जोड़कर बोला – भइया, मेरा नाम है रामफेर यादव, परमात्मा करे, फिर कभी भेंट हो जाए !

विक्रम उसके तप्त माथे पर हाथ रखकर चल पड़ा । दीनबंधु की आवाज आई – सुनो, मेरा ख्याल है तुम मेरे साथ विष्वासघात नहीं करोगे !

विक्रम बड़े प्यार से बोला – नही, कभी नहीं । बल्कि मैं तुम्हारी मदद करूंगा, और हो सका तो एक दिन तुमसे मदद लूंगा ।

– इसकी कोई जरूरत नहीं !

– यह तुम नहीं कह सकते ! अच्छा, फिर भेंट होगी, राम–राम ! बैताल पांड़े के साथ विक्रम आगे बढ़ गया ।

8

अगस्त का महीना था । विक्रम के साथ गांव, कस्बा, षहर, जंगल, मैदान, खेत, बाजार, मेले–ठेले में पैदल घूमते–घूमते बैताल पांड़े कुछ ही दिनों में थककर चूर हो गए । उनका कभी पेट भरता, कभी नहीं भरता और अक्सर विक्रम के कारण बिल्कुल भूखे रह जाना पड़ता । ऐसे क्षणों में पंड़ाइन की याद उन्हें बेहद सताती, फिर वह एकान्त में जाकर या तो षिवतांडव का जप करने लगते या गायत्री मंत्र पढ़ने लगते !

वे दिन उन्हें बेहद याद आते जब उन्हें भूत–प्रेतों में विष्वास था । अगर वही विष्वास अब तक अखंड बना रहता, तो उन्हें फिर किस चीज की कमी थी ! मगर विक्रम से दोस्ती करके वह कहीं के भी न रहे ।

चलते–चलते पांड़े ने विक्रम से पूछा – हे विक्रम, हम कहां जा रहे हैं ? हमारी यात्रा का लक्ष्य क्या है ? वह कौन–सी हमारी मंजिल है जिसके हम मुसाफिर हैं ?

विक्रम ने उत्तर दिया – सुना भाई बैताल ! ध्यान से सुनो ! पंड़ाइन का ख्याल थोड़ी देर के लिए हृदय से निकाल बाहर करो । भूख को भूलकर सुनो । हम स्वयं कहीं नहीं जा रहे हैं । बस, हमें कोई अदृष्य षक्ति लिए चली जा रही है । हमें इस यात्रा का उद्देष्य नहीं मालूम । समझो, हम निरूद्देष्य हैं । हमें अपनी मंजिल का क्या पता ?

पांड़े बोले – सो तो ठीक है मित्र, पर अब मुझसे पैदल एक कदम भी नहीं चला जाता !

– फिर बैठ जाओ !

विक्रम रास्ते के किनारे एक पेड़ के नीचे आराम से बैठ गया । थोड़ी ही देर में वहीं मजे से सो गया । पांड़ेजी को भूख लगी थी । इधर–उधर नजर दौड़ाना षुरू किया । सामने ही एक तालाब दीखा, जिसमें एक बुड्ढा हाथी खड़ा था । उसके आगे एक गांव था । पांड़ेजी उसी दिषा में बढ़े । गांव न जाकर भिक्षा मांगी । गांव वालों से उस हाथी के बारे में पूछा, तो पता चला – वह एक बुड्ढा हाथी है । काफी दिन हुए, न जाने कहां से आकर उसी तालाब के पानी में खड़ा है । न कहीं कुछ खाने जाता है, न वहां से हिलता–डुलता ही है । जो कोई वहीं उसे दे जाता है, वही खा लेता है । कोई डर के मारे उसके पास नहीं जाता । कोई कहता है, यह कोई भूत–प्रेत है हाथी के रूप में । कोई मानता है – यह वही गजग्राह वाली घटना है । पानी में कोई घड़ियाल है, जिसने हाथी के पांव को पकड़ रखा है ।

विक्रम को अचरज हुआ । गांव के लोग दूर खड़े तमाषा देखने लगे । विक्रम अकेला ही पानी में घुस गया । डूबकर देखा – एक खूंटे में बेचारे हाथी के दोनों पिछले पैर बंधे हुए हैं ।

पर यह बात गांववालों के विष्वास या अंधविष्वास के परे थी । विक्रम और बैताल पांड़े ने मिलकर बड़े ही परिश्रम से उस हाथी को मुक्त किया । उसे पानी के बाहर लाया गया ।

गांववाले चिल्लाए – भइया, इस हाथी को यहां से ले जाओ, वरना हमारी खेती चौपट करेगा और अगर कहीं यह भूत–प्रेत हुआ तो, बाप रे बाप .... !

एक पीपल पर चढ़कर उसकी डालियां, पत्ते काट–काटकर विक्रम नीचे गिराता रहा, हाथी न जाने कितने दिनों बाद आज अपना पेट भर रहा था ।

हाथी पर दोनों मित्र बैठ गए । और हाथी चुपचाप चलने लगा । कहां ? पता नहीं । चलने दो, जहां यह चलता है ।

पूरी रात वह हाथी चलता रहा । अगले दिन ठीक दोपहर के वक्त राजा भदैनी के टूटे महल के सामने जा खड़ा हुआ । कहीं से अचानक पुकार आई – गोपाल ।

अपना नाम सुनकर हाथी चिल्ला पड़ा और सूंड़ हवा में नचा–नचाकर जमीन पर पटकने लगा ।

एक वृद्ध पुरूष आकर गोपाल के पैर से चिपटकर रोने लगे । दो युवक आकर वहां खड़े हो गए।

किस्सा गोपाल हाथी का ।

वह वृद्ध पुरूष थे राजा भदैनी के सबसे छोटे भाई – कुंवर चन्द्रदेव महाराज । वे दोनों युवक उनके लड़के थे । बात यह हुई कि जब राज, जमींदारी, तालुकेदारी खत्म हो गई, तो जाहिर है वे पुराने ठाट–बाट, जीव–जन्तु भी खत्म हो गए । पर यह जो गोपाल हाथी था न, यह अद्भुत था । अपने उस महल का दरवाजा छोड़कर कहीं नहीं आता–जाता

था । राजा भदैनी ने अपने सारे पालतू जीव–जन्तुओं को या तो छोड़ दिया, या दान कर दिया – पर सिर्फ अपने सामने रखा इसी गोपाल को । मरते समय इसी कंवर से कह गए थे कि मेरे मरने के टीक तेहरवें दिन मेरे गोपाल को मार देना ।

लोग कहते हैं – ठीक तेहरवें दिन गोपाल स्वयं बन्दूक को सूंड़ से बांधे कुंवर के सामने आया था। कुंवर के दोनों लड़के दौड़े, बन्दूक दागने के लिए, पर कुंवर ने कहा – लाओ, इसे मैं ही दागूंगा । यह कहकर कन्धे पर बन्दूक रखे कुंवर चंद्रदेव महाराज पष्चिम दिषा की ओर चल पड़े और चलते चले गए । आगे–आगे कुंवर पीछे–पीछे वही गोपाल । कई वर्षों तक न जाने कहां–कहां घूमते रहे – तीरथ, व्रत, मेला, पर्व, पाप–पुण्य सब रास्तों पर वही गोपाल जैसे कुंवर का पीछा कर रहा था । कुंवर ने जब–जब उसे मार देने के लिए बन्दूक उठाई थी, हठात् उनके पांव आगे चल पड़ते थे । कई वर्षों तक उस रास्ते का, पथ का कोई आदि–अन्त न मिला तो कुंवर उस हाथी के पैरों पर गिरकर रोए थे । फिर वह हाथी आगे–आगे चला – कुंवर पीछे–पीछे ।

घर वापस आए तो कुंवर के वहीं दोनों लड़के पिताजी पर टूट पड़े और उस हाथी को मारने लगे। कुंवर ने रोक लिया और हाथी को लेकर फिर चल पड़े । चलते–चलते उसी तालाब में हाथी को उस तरह बांधकर अकेले घर लौटे । बन्दूक फेंकते हुए बोले – गोपाल अब नहीं रहा ।

पर आज इस तरह फिर उस गोपाल हाथी को देखकर लोग सन्न रह गए ।

9

भरपेट भोजन न मिलना, उसपर दिन–रात पागल–बेवकूफों की तरह पैदल चलना, न कभी नींद–भर सो पाना, न अब तक किसी मंजिल का पता लग पाना – इन बुनियादी बातों को लेकर एक दिन बैताल पांड़े विक्रम से लड़ पड़े । दोनों में पहले तो षास्त्रार्थ हुआ, फिर कहा–सुनी हुई । फिर बैताल पांड़े विक्रम से नाराज होकर अपने घर–गांव लौटने लगे ।

विक्रम ने देखा – पांड़े जी सचमुच बहुत तेजी से, उसे छोड़कर चले जा रहे हैं । एक बार भी मुड़कर नहीं देख रहे हैं । तब विक्रम ने पुकारा – पर उन्होंने ध्यान तक नहीं दिया । फिर विक्रम दौड़कर उनके सामने जा खड़ा हुआ ।

– हे मित्र, बोलो, तुम्हें क्या चाहिए ?

– धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष !

– चारों चीजें ?

– और नही ंतो क्या ?

विक्रम ने गम्भीरता से कहा – अच्छा, आओ, तुम्हें ये चारों चीजें प्राप्त होंगी ।

– वचन देते हो ?

– ईष्वर साक्षी है ।

पांड़ेजी पूर्ण प्रसन्न । मित्र विक्रम के साथ बड़े ही आनन्द से चलने लगे । अब पांड़े जी की बातें षुरू हुईं – अरे वह जो गोविन्दपुर का लाला का लड़का है .... अवधनारायन, सुना है बम्बई में सौ–सौ के नोट छापना जानता है । घर भर लिया धन से .... अरे वह जो रामझरोखा धोबी था .... अरे वही लंगड़ा धोबी, अब एम0 पी0 हो गया । .... और वह जो बस्ती का टेलर मास्टर है रामप्रसाद, असेम्बली के उपचुनाव में एम0 एल0 ए0 हो गया, हां । दोआब के तिवारीजी के समधी कहीं गवर्नर हैं । .... वह जो एडवोकेट सुषील दिलजन हैं .... अरे वहीं छांगुर, हाईकोर्ट में जज हो गया । .. .. वह जो राममूर्ति सिंह जी थे .... अरे वही पहलवान, वह अब गवर्नमैंट के कांट्रेक्टर हो गए ।

विक्रम ने पांड़े को रोककर पूछा – पांड़ेजी, बोलो, तुम क्या होना चाहते हो ?

पांड़े जी तमतमाकर बोले – अरे मित्र, सारी दुनिया जब कुछ से कुछ होती चली जा रही है लूट मची है जब चारों ओर, तब हमीं क्यों मारे–मारे फिरें ? सोचने की बात है !

– क्या होना चाहते हो, वही तो पूछ रहा हूं !

पांड़े जी बहुत सोच–समझकर बोले – मित्र, तुम हो जाओ मुख्यमंत्री, तो मुझे गवर्नर बना दो । या नही ंतो तुम हो जाओ प्रधानमन्त्री, मुझे राष्ट्रपति बना दो ।

– और ?

– या तुम कोई उद्योगपति बन जाओ, मैं मैंनेजर–डाइरेक्टर बन जाऊं !

– अच्छा, इनमें से कुछ न कुछ तुम्हें बनाकर रहूंगा ।

– देव वचन ?

– हां, पुरूष वचन !

– नहीं, कहो देव वचन !

– अच्छा, देव वचन !

अगले दिन जब पांड़ेजी थक गए, तब फिर पूछा – पर यह सब कब होगा ?

– होगा, होगा, धीरज रखो !

– वह तो है, पर होगा कैसे ?

– मित्र, याद रखो, जो तुम चाहोगे, वही होगा !

पांड़ेजी ने हवा में मुक्का मारते हुए कहा – मैं तो मन–वचन–कर्म से चाहता हूं !

– क्या ?

– यही तो पूछ रहा हूं !

विक्रम ठहाका मारकर हंस पड़ा । बगल से एक ट्रक गुजर रही थी । ड्राइवर ने गुस्से में डांटा ।

– मरना चाहते हो ! पटरी पर क्यों नहीं चलते ? हें–हें–हें.... बीच सड़क पर हंसते हैं !

पांड़ेजी सीधे से बोले – रोको गाड़ी !

ट्रक रूक गई । पांड़ेजी ने कहा – जानते हो, यह कौन हैं ? एक सूबे के चीफ मिनिस्टर । और मैं बंगाल का गवर्नर हूं । खबरदार, किसीसे जवान मत खोलना !

ट्रक ड्राइवर की हुलिया बैरंग हो गई । उसकी हालत खस्ता । वह इसलिए कि ट्रक पर उसका मालिक बैठा था !

ट्रक का मालिक हाथ जोड़े पीछे–पीछे । ये दोनों मित्र आगे–आगे । मालिक ने सौ–सौ के पांच नोट निकाले । पांड़ेजी ने जोर से डांट दिया । विक्रम देखने लगा ।

– क्या है पांड़े ?

– विक्रम भाई, यह कह रहा है ट्रक में बैठ जाइए.... सेवा करना चाह रहा है ।

दोनों मित्र ट्रक में बैठ गए । मालिक ने पूछा – हुजूर ! जाना कहां है ?

पांड़े बोले – हम तो देष–दर्षन के लिए निकले हैं, तुम्हें जहां जाना है, वहीं चलो !

– मैं आगरे जा रहा हूं ।

– इस ट्रक में क्या लदा है ?

विक्रम के इस प्रष्न से ट्रक का मालिक बिल्कुल घबड़ा गया । उसकी घिग्घी बंध गई ।

तब तक पांड़ेजी तड़पे – सच–सच बता दो, वरना षाप देकर भस्म कर दूंगा ।

विक्रम बोला – ऐसी कोई बात नहीं । बेफिकर रहो । बता दो, क्या है ? मालिक बोलने लगा – हुजूर, धर्मावतार, सच यह है कि ट्रक में कपास के बोरे लदे हैं,

– और झूठ क्या है ?

– कपास की बोरियों के भीतर गांजा–चरस रखा है !

– कहां से आ रहे हो ?

– हुजूर, यह नेषनल कामर्स है । पूरे हिन्दुस्तान में इसका जाल फैला है । बुटौल, बस्ती, गोंडा, कानपुर, आगरा, जालंधर, बड़ौदा.... ।

– बस, बस.... बस !

पर मालिक बड़े गर्व से बताता रहा – ये जगहें हमारे हेडआफिस हैं । बाकायदा हमारी पुलिस है रक्षा के लिए, खुफिया लोग हैं भेद के लिए, सुन्दरियां हैं जासूसी के लिए । अफसर लोग हैं सारा काम–धाम देखने के लिए । हमारी अपनी माया है, बैक है, कानून–कायदे हैं.... समझिए साहब, बाकायदा हमारी अपनी एक अलग सरकार है । ब्लैक मनी हमारा खजाना है । एम0 पी0, एम0 एल0 ए0 हमारे हाथ हैं । हम अफसरों का षिकार करते हैं, पुलिस से खिलवाड़, और हमारी पूंजी लगती है चुनाव में....

विक्रम अचानक गा पड़ा :

दूध मां का आज अपनी आन हमको दे रहा है
षक्ति मां के दूध की अब हम दिखाकर ही रहेंगे
नचता है नग्न होकर पीटकर जो ढोल अपना

सभ्यता का हम सबक उसको सिखाकर ही रहेंगे ।

आगरा षहर की दास्तान

आगरा षहर में घुमते ही कालेज के विद्यार्थियों का एक विषाल जलूस दिखा । उनके नारों से आसमान गूंज रहा था :

गुंडे नहीं, हमें अध्यापक दो
हमारी षिक्षा की कोई फीस न हो
डिग्री नहीं, हमें नौकरी चाहिए
कालेज के प्रबन्ध में छात्रों का हाथ हो
ऐसी पढ़ाई होगी क्या ? वही बेकारी वही निराषा
ऐसी षिक्षा अंधी है – वहीं नौकरी, वही गुलामी
सारे षहर में षोर है, हमारे अध्यापक चोर हैं ।

चारों ओर पुलिस का दस्ता, बीच में छात्रों का वह विषाल जलूस नारों के बम विस्फोटित करता हुआ न जाने कहां बढ़ा चला जा रहा था । विक्रम ट्रक के नीचे कूद पड़ा । पांड़े चिल्लाए – रोको, रोको ।

ट्रक रूक गई । पांड़े देख रहे थे – विक्रम भागता हुआ उसी जलूस के सामने जा खड़ा होना चाहता था । वह मित्र की रक्षा के लिए दौड़े ।

सहसा विक्रम के मुंह से निकला – मांगो नहीं । ले लो । मांगते किससे हो ? मांगने से कभी कुछ नहीं मिलता । लेने के लिए संघर्ष करना होगा ।

यह मनुष्य की प्रकृति है, व्यक्ति–व्यक्ति का सनातन स्वभाव है .... एक बार हाथ में आई हुई कोई भी भोग की चीज, वह किसीको मांगने से नहीं दे सकता । उससे छीनना पड़ता है । और वह अपनी भोग्य वस्तु, चीज को बचाने के लिए मरते दम तक संघर्ष करता है । इसलिए सुनो ....

संघर्ष करो .... लड़ाई .... । भीख मांगना बन्द करो । षर्म करो !
बोलो, चाहते क्या हो ? .... नौकरी .... गुलामी ...

जलूस के नेता छात्रों में से आवाज आई – कौन है तू ? भागता है कि नहीं ? हट जा हमारे सामने से !

– कहां जाओगे ? बोलो, वह मंजिल कहां है ?

विक्रम को किसीने धक्कादिया । जलूस में षोर मचने लगा । पुलिस अधिकारी आकर विक्रम को दूर खींचने लगा । जलूस में से हंसी का बम फूटा । फिर मुंह से हथगोले उछले हवा में – साला पागल है कोई । अरे नहीं, कोई एजेण्ट है । फोड़ने आया था । पूछता है – 'बोलो, क्या चाहते हो ?'

विक्रम खड़ा हो गया, एक किनारे फुटपाथ पर । सामने से छात्रों की धारा बहती चली जा रही थी । वही उनके नारे, वही उत्तेजना, वही जोष .... ।

किसी चीज की तनिक भी परवाह किए बिना विक्रम बोलने लगा – देखो, भिखमंगों का जलूस । देखो, विरोध इनका फैषन है । इनकी सारी लड़ाई, सारा विरोध, सारा असंतोष कुछ न करने के लिए है, नौकरी पाने के लिए है । जिसे यह पता नहीं कि लड़ाई की बुनियाद क्या है, जिसे यह नहीं मालूम कि वे चाहते क्या हैं, लक्ष्य क्या है, वे चले हैं विरोध का नाटक रचने । अभी थोड़ी ही देर बाद कोई गुंडा इस जलूस पर पत्थर फेंकेगा । जलूस में खलबली मच जाएगी । पुलिस डंडे बरसाना षुरू कर देगी ... ।

बिल्कुल वही हुआ, जलूस पर पुलिस लाठी चार्ज करने लगी । उपद्रव मच गया । आसपास की दुकानें लूटी–फूंकी जाने लगीं । भगदड़, तहलका .... ।

कुछ विद्यार्थी घायल–बेहोषी की हालत में अस्पताल ले जाए जाने लगे । कुछ भागकर काफी हाउसों में छिप गए । अनेक अपने गर्लफ्रेंड्स के साथ पिकनिक मनाने निकल गए ।

विक्रम वहीं खड़ा–खड़ा सारा दृष्य देखता रहा । अचानक एक पुलिस अफसर ने आकर विक्रम को धर लिया ।

– अबे, कौन है तू ?

– आपको क्या चाहिए ?

– मुझे उस गुंडे को गिरफ्तार करना है जिसने जलूस पर पत्थर मारे । और वह तू ही है !

– राम–राम, बड़ी खुषी हुई आपसे मिलकर !

विक्रम प्रसन्न । बैताल पांड़े परेषान । विक्रम ने जैसे आदेष दिया – चलो, ले चलो, मुझे अपने पुलिस स्टेषन । लो, हथकड़ियां पहनाओ .... ।

पुलिस अफसर आंख फाड़े देखता रह गया । फिर धीरे से बोला – खैर, हमें किसी न किसीको गिरफ्तार तो करना ही होगा ।

बहुत तेजी से पुलिस अफसर मुड़ा । उसके पीछे–पीछे विक्रम और बैताल । आसपास के मुहल्ले से झटपट तीन गुंडे पकड़कर लाए गए । पुलिस अफसर अपने कागजात भरने लगा । वहां कुछ छात्र भी घिर आए थे ।

छात्रों के एक नेता छात्र ने कहा – विरोधी पार्टी के लड़कों ने जलूस पर पत्थर फेंके हैं । यह लड़के चष्मदीद गवाह हैं ।

पुलिस अफसर ने कहा – देखिए जी, बात साफ है । आप लोग अपना काम कीजिए, हमें अपना काम करने दीजिए ।

– ये कौन लोग हैं ?

– गुंडे । गिरफ्तार तो करना ही होगा, वरना हमारी नौकरी .... ।

विक्रम ने उन तीनों में से एक के पास जाकर धीरे से पूछा – भइया जी, आप कौन हैं ?

उसने कहा – मेरा नाम खैराती पहलवान है । पहले कभी पहलवान था । पर पुलिस ने अब मुझे गुंडा बना लिया है । ऐसा जब भी कुछ होता है, हमें गिरफ्तार कर लिया जाता है .... इसकी हमें बाकायदा फीस मिलती है । ऐसा है कि .... आप यूं समझिए कि .... ।

पुलिस अफसर की तभी आवाज उमड़ी – चलो, भाग जाओ, यहां से बाकी लोग ।

विद्यार्थी इधर–उधर तितर–बितर होने लगे । विक्रम ने उन्हें पुकारा – सुनो .... सुनो .... तुम लोगों का वह जलूस कहां जा रहा था ?

– वाइस चांसलर के बंगले पर ।

– अब क्या हुआ ?

लड़के चुपचाप मुंह निहारने लगे । पुलिस की गाड़ी उन गुंडों को लेकर चली गई । पुलिस अफसर अपनी जीप की ओर बढ़ा । तभी उसे सुनाई पड़ा, विक्रम कुछ खतरनाक बातें कर रहा है ।

अफसर ने आकर तेजी से विक्रम की पीठ पर बेंत जमा दी । बैताल पांड़े ने अफसर का हाथ पकड़ लिया । दो पुलिस सिपाही दौड़े । अफसर की आज्ञा पाते दोनों लगे मारने विक्रम और बैताल पांड़े को । सारे विद्यार्थी रफूचक्कर ।

अफसर ने हुक्म दिया – ले जाओ, सालों को, छोड़ आओ .... ।

– जवान सम्हालो अपनी ।

विक्रम का तेज–गम्भीर स्वर जैसे हवा में लकीर की तरह खिंच गया । अफसर के इषारे सेएक दूसरी जीप आई और उन्हें लेकर जैसे उड़ चली ।

आगरा षहर से करीब बीस मील दूर – एक जंगल में दोनों को छोड़कर जीप लौटने को हुई, विक्रम ने जीप को पीछे से थाम लिया । जीप अपनी उसी जगह पर तड़फड़ाती रह गई ।

दो सषस्त्र सिपाही, पिस्तौल लिए एक दरोगा, एक पुलिस ड्राइवर ये चारों, थोड़ी ही देर के संघर्ष के बाद, हाथ जोड़े खड़े रह गए ।

– हम माफी चाहते हैं, हमसे भूल हुई । आगरा षहर के बाहर आप लोग जहां जाना चाहें, हम पहुंचा दें ।

– बोलो बैताल पांड़े । आदेष दो मित्र !

चोट खाए बैताल पांड़े कराह रहे थे ।

– चुप रहो ! इतनी भी चोट नहीं सह सकते ! बोलो कहां जाना है ?

– जहन्नुम में !

जीप चल पड़ी । रास्ते में एक गांव पड़ा । गांव दो हिस्सों में फैला था । एक ओर हरिजनों की गरीब बस्ती, दूसरी ओर सवर्णों की धनी बस्ती । बीच में एक पीपल का पेड़ था । उसीके आसपास जैसे सारा गांव इकट्ठा था । षोर, चिल्लाहट, रोना, गाली–गलौंज से सारा वातावरण भरा हुआ था । पुलिस जीप उस गांव से बचने के लिए बाहर ही

बाहर भागने लगी । विक्रम ने ड्राइवर का हाथ पकड़ लिया – रोको ! देखो, गांव में क्या हो रहा है ? दरोगा ने कहा – हमसे क्या मतलब ?

– क्यों ?

– हम षहर के हैं ।

विक्रम जीप से नीचे उतर पड़ा । गांव की तरफ दौड़ा । पांड़ेजी चिल्लाए – हे मित्र, दर्द के मारे मुझसे चला नहीं जाता ।

विक्रम ने वहां पहुंचकर जो ज्ञान प्राप्त किया वह काफी दिलचस्प था ।

आग लगी
कागज की
नाव में

उस गांव का नाम था हमीरपुर । आजादी से पहले इससे भी बड़ा गांव था यह । तब इसमें सात घर मुसलमानों के भी थे । यहां के ब्राह्मण–ठाकुरों से भयभीत होकर वे सातों घर भागकर पाकिस्तान चले गए । इस गांव में अपनी कुल सत्तर बीघे जमीन छोड़कर । काफी दिनों तक वह जमीन गांव में जबरदस्त सवर्णों के हाथ में पड़ी रही ।

इस गांव में कुल तेईस घर, चमारों की बस्ती । सारे के सारे भूमिहीन । ये सारे भूमिहीन मजदूर चमार गांव के सवर्णों की हलवाही, मजदूरी करते आ रहे थे ।

उस क्षेत्र के एक सोषलिस्ट नेता थे बाबा तेजपाल । यह पहले साधु थे । और उसी साधुरूप में ही समाजवादी दल में आए थे । दूसरे आम चुनाव में बाबा तेजपाल ने इसी गांव के सबसे बड़े ताकतवर, तिकड़मी, षक्तिषाली ब्राह्मण कांग्रेसी महादेव प्रसाद षर्मा को एम0 एल0 ए0 के एलक्षन में हराया था । बाबा ने तब अपने अथक प्रयत्नों, सत्याग्रह से उस सत्तर बीघे जमीन को समानरूप से उन भूमिहीन हरिजनों में बंटवाया था । जमीन सबके नाम लिखवाकर बाबा आगरा जिले की कचहरी से अपने घर लौट रहे थे । बीच रास्ते में उनका कत्ल किया गया था । तब से वे सत्तर बीघे खेत कागज पर उन चमारों के नाम हैं, पर जौते, बोते और अधिकार में रखते हैं वही सवर्ण लोग, जिनके अगुआ है वही महादेव प्रसाद ।

पिछले दिनों चमारों ने अपने ही खेतों में मजदूरी–हलवाही करने से इनकार किया । उनकी इस मांग पर कि हमारे खेत हमें वापस दो, इसीपर गांव में जैसे बलवा मचा है । मांग करने वाले चमार बुरी तरह सवर्णों के हाथ पीटे गए हैं । चमारों ने आज सवर्णों की हलवाही और मजदूरी बन्द कर दी है । पूरे गांव में इस वक्त तनाव फैला है ।

गांव के इस ज्ञान ने विक्रम को और उत्साहित कर दिया । रात को वह चमारटोला में घूम–घूमकर सबको सावधान करने लगा – तुम सारे लोग संगठित हो जाओ ! होषियार ! संघर्ष जरूरी है । मैं खुद चमारहरिजन हूं : अपने गांव से मैं इसीलिए भागा कि मैं सब हरिजनों को संगठित कर अपने दुष्मनों से लड़ सकूं ।

धीरे से बैताल पांड़े ने विक्रम से कहा – यह क्या बक रहे हो ?

विक्रम ने सबके सामने कहा – जब तक हमारे समाज में तुरूक है, चमार हैं, भंगी हैं, अस्पृष्य है कोई, तब तक हम सब चमार, भंगी, तुरूक हैं ।

गांव में सवर्णों के नेता षर्माजी ने कहला भेजा विक्रम को–चुपचाप हमारे गांव से निकल जाओ। खबरदार, अगर तुमने चमारों का समर्थन किया । होषियार, अगर तुमने उन्हें अधिकार के पाठ पठाए ....

विक्रम ने रातोंरात आसपास के गांवों में घूम–घूमकर हरिजनों को उनकी आत्मरक्षा के लिए संगठित करना चाहा, पर जैसे वे निर्जीव लोग हैं, लगता है, जब वे खुद अपनी रक्षा नहीं कर सकते, तो दूसरे गांव की रक्षा क्या करेंगे ?

अगली रात को ठीक एक बजे गांव के कुछ सवर्णों ने चमारटोला पर आक्रमण किया । चमारों ने डटकर लोहा लिया । दूसरी रात कुछ बाहर के बदमाष–गुंडों ने चमारों को आतंकित करना चाहा । विक्रम खुद लड़ा उनके साथ । चमारों में इतना उत्साह, इतनी हिम्मत बढ़ी कि दो गुंडों को पकड़कर पीपल के दरख्त में बांध लिया ।

पुलिस को इत्तला दी गई । रपट लिखवाई गई । पर हुआ कुछ भी नहीं । बस, गांव में तनाव बढ़ता चला गया । एक रात पुलिस, सवर्ण और गुंडों ने मिलकर पूरे चमरटोला पर भयानक ढंग से आक्रमण किया । छप्पर, घासफूस के घरों में आग लगा दी गई । विक्रम ने पहले से ही सबको आगाह और सावधान कर रखा था – हत्या, बलात्कार, फूंक–लूट सबके खिलाफ उसने बाकायदा तैयारी करा रखी थी ।

खूब जमके युद्ध षुरू हुआ । हरिजन स्त्रियां, मर्द, बूढ़े, जवान लड़के–लड़कियां – सबने मोर्चा बनाकर लोहा लेना षुरू किया ।

सहसा उसी क्षण ब्राह्मणों के टोले में आग लगी । ब्राह्मण भागे । फिर ठाकुरों के घरों में आग .... सारे सवर्ण मैदान छोड़कर भागे ।

आग से अभी तक जले हुए घर ठंडे नहीं हुए थे । हरिजन लोग हलबैल, कुदार–फरूहा लिए अपने–अपने खेतों पर जा डटे ।

पुलिस आई ।

जिले के हाकिम आए ।

विक्रम ने सारी स्थिति उनके सामने रख दी ।

हरिजन विजयी हुए

विक्रम जब पांड़े के साथ उस हमीरपुर गांव को छोड़कर जाने लाग – तो सारा हरिजन–समाज उसे घेरे खड़ा था । रोती हुई एक बुढ़िया ने कहा – जे हमारी खेतन फिर लै लेइहैं ।

एक ने भरे कंठ से कहा – जे हमसूं बदला लेंगे ।

कहीं से दूसरा स्वर कांपा – हम निपट अकेलो । हमार मददगार काऊ ना !

– मति जाव ! याहीं रहो, हमारो संग ।

– जे हमहिं मारि डारिहैं ।

विक्रम बोला – देखा नहीं, तुम लोगों में कितनी बहादुरी और दिलेरी है । तुमने ईंट का जवाब पत्थर से दिया, वरना ये लोग पागल जानकर थे । याद रखो : लड़ाई के बिना, युद्ध और कुर्बानी के बिना कहीं कुछ भी नहीं मिलता । मनुष्य का स्वभाव है – मांगने से नहीं, छीनने से ही मिलेगा । हरिजन, षूद्र और सवर्णों की लड़ाई बहुत लम्बी और बहुत गहरी है – इसकी जड़ है रक्त में, इसके तने फैले हैं हमारे जड़ संस्कारों में । यह युद्ध, यह संघर्ष चलेगा .... चलता रहेगा । यही तुम्हें समानता, स्वतन्त्रता और पवित्रता देगा .... सहो नहीं, विरोध करो । अधिकार मांगो नहीं, ले लो ! रोओ नहीं, सोचो । रोओ नहीं, गाओ । कभी–कभार आसमान की तरफ देख लिया करो, चारों ओर वही एक ही चीज है । तुम किसीसे कम कहां ? छोटा कहां ? इंसान वही है, जो वह सोचता है ।

10

जिस रास्ते से विक्रम गुजरता, जिस गांव को वह पार करने लगता, गरीब मुसलमान, षूद्र, चमार, भाई–बहनों के गिरोह उसे घेर लेते । दुख, गरीबी, अन्याय, उत्पीड़न की घटनाएं, किस्से–कहानियां उसके सामने उमड़ने लगतीं । वह कहने लगता – कोई किसीको कुछ नहीं दे सकता । कोई दूसरा तुम्हारी लड़ाई नहीं लड़ सकता । तुम्हें अपना खुद लेना है । तुम्हें अपनी लड़ाई खुद लड़नी है । पर यह अंसभव है, क्योंकि हमारे रक्त में एक पाप आ बैठा है .... सब कुछ चुपचाप सहते जाने का पाप । हम अधर्मी हैं .... बनमानुष हैं, क्योंकि हम सार्वजनिक जीवन की सच्चाइयों, मुसीबतों से भागते हैं .... । भागते हैं हम एक उसी ईष्वर के पास .... भागते हैं हम एक उसी कांग्रेस के पास, जिसके भगोड़े पुत्र हैं जयप्रकाष .... विनोबा ।

यह सब कहता हुआ, विक्रम कभी फफककर रोने लगता, कभी ठहाका मारकर हंस पड़ता । कभी भीड़ को चीरकर भाग खड़ा होता । अपने–आपको अपषब्द कहता हुआ किसी पेड़ पर चढ़ जाता और वहीं से बोलता – इस पेड़ को जड़ से काटकर गिरा दो, जिस पर हम बैठे हैं । यह पेड़ झूठा है – क्योंकि इसकी जड़े पृथ्वी में नहीं, हवा में हैं । आओ मुझे मारो .... मेरा कत्ल कर दो .... मैं तुम्हें यह अहसास देता हूं कि मैं तुम्हारे लिए कुछ कर सकता हूं .... पर यह झूठ है .... क्योंकि कोई किसी अन्य के लिए अपने स्वार्थ के अलावा कुछ नहीं कर सकता । तुम सब अधर्मी हो, पापी हो, क्योंकि तुम लोग खुद अपने लिए कुछ नहीं कर सकते । तुम तब तक उसी नकर में रहोगे, जब तक तुम्हारा यह विष्वास है कि कोई और आकर तुम्हें नकर से निकालेगा ।

भागता, पिटता, घायल होता हुआ, रोता–गाता हुआ एक सुनसान स्टेषन पर विक्रम बेहोष होकर गिर पड़ा । उसे घेरे हुए अपार गरीब जनता खड़ी थी, न जाने कौन रेलगाड़ी आई, बैताल पांड़े अपने मित्र को कंधे पर लादे उसी ट्रेन में बैठ गए ।

अमीनाबाद के

होटल में

लखनऊ के उस अमीनाबाद होटल में विक्रम तीन दिनों तक सोता रहा । बैताल पांड़े उसकी सेवा में खड़े थे । जिस दिन सुबह उसकी आंख खुली, बाहर घनघोर वर्षा हो रही थी । विक्रम ने घूमकर देखा – वही एम0 एल0 ए0 गोइंठा सिंह बैठे मजे से चाय पी रहे थे ।

विक्रम मुस्करा पड़ा – मैं यहां कैसे ? कब ? क्यों ? और तुम यहां कैसे बाबू गोइंठा सिंह ?

– भाई, यह लखनऊ का अमीनाबाद है । हम लोग इस होटल के कमरे में टिके हैं ।

विक्रम उठा । कमरे की सारी खिड़कियां खोल दीं । वर्षा की छींटों से कमरा गीला होने लगा । विक्रम ने हंसते हुए कहा – नहीं, भाई, यह होटल का कमरा नहीं, यही तो है मानो सुन्दरगिरि पर्वत पर स्थित मरीचाश्रम, जहां हम दो प्रेमी आ मिले हैं !

– सचमुच विक्रम, तुम मुझे अपना प्रेमी मानते हो ?

– बाहर की वर्षा देखो भाई .... वह पूरे जगत् से प्रेम कर रही है या नहीं ?

– तुम्हारी तबियत अब बिल्कुल ठीक है न ?

– क्यों, क्या मेरी तबियत खराब थी ?

– बहुत । तुम बेहोष थे, बेहोषी की हालत में तुम न जाने क्या–क्या बड़बड़ा रहे थे !

विक्रम ठहाका मारकर हंस पड़ा । दौड़े हुए पांड़ेजी आए – मित्र, यह हंसी करो बंद । मैं कितने दिनों का भूखा–प्यासा हूं । तुम कुछ खाओ–पियो तो मैं भी .... ।

कमरे के बाहर बरामदे में पांडे कमरे के बाहर बरामदे में पांड़ेजी लगे भोजन करने । होटल का बेयरा दौड़–दौड़कर प्लेटें भर–भर लाने लगा । कमरे में दूसरा बेयरा चायनाष्ता कराने लगा विक्रम और गोइंठा सिंह को ।

दोनों में ऐसी बातें छिड़ीं, जैसे दो प्रेमी आ मिले हों । बाहर मूसलाधार वर्षा, भीतर प्रेम–भरी बातें:

– बाबू गोइंठा सिंह, तुम अपने समाज, देष के ही दुष्मन नहीं, अपने भी दुष्मन हो ।

– ऐसा क्यों भाई, मैं तो जनता का सेवक हूं !

– यही तो तुम्हारे सारे पापों की जड़ है ।

– मित्र, मैं समझा नहीं ।

– सुनो और समझने की कोषिष करो । अपनी जड़ता, मूर्खता और अज्ञान की खिड़कियां खोलने की कोषिष करो ।

– इतने कठोर षब्द मत इस्तेमाल करो बंधु, मैं गांधी का भक्त और षुद्ध कांग्रेसी हूं !

विक्रम ठहाका मारकर हंस पड़ा ।

– जरा धीरे हंसो मित्र ।

– क्यों ?

– थोड़ा भय लगता है .... पराया षहर है न, होटल है, और उधर एसेम्बली की बैठक चल रही है !

– गांधीजी को तो कभी भय नहीं लगा ।

– हा, पर कांग्रेस पार्टी को तो भय है ।

– क्यों ? किससे ?

– विरोधी पार्टियों से । और मुझे अब असेम्बली से लोकसभा में जाना है । सुना है, दिल्ली बहुत अच्छी जगह है । आदमी जवान हो जाता है ! सुख और सौन्दर्य दोनों हैं दिल्ली में !

विक्रम फिर हंसने लगा । गोइंठा सिंह मुंह में पान दबाकर सिगरेट की गहरी कषें लेने लगे ।

विक्रम बड़े प्यार से बोला – सुनो मित्र, फिलहाल ठाट से मजे करो । कहां कौन है तुम्हारी विरोधी पार्टी ?

– अरे भाई, क्या कहते हो .... रामराज, जनसंघ, मुस्लिम लोग, पोपा, संसोपा, सी0 पी0 आई0 ... आर0 पी0 एफ0 वी0 ....

– बस, बस, बस, एक कहानी सुनो । एक था हाथी । जंगल का राजा ।

– भाई, जंगल का राजा तो षेर होता था !

– हां–हां, होता था । मैं अपने भारतीय जंगल की कहानी सुना रहा हूं .... जहां का राजा था एक हाथी : अच्छा था । नेक था । षरीफ था । पर था तो राजा ही न । दिन–रात एक से एक, तरह–तरह के जानवर उसके

पीछे–पीछे घूमते । कोई उसकी पीठ पर बैठने की ताक में रहता, किसीकी नजर उसके खूबसूरत दांतों पर रहती, कोई सोचता, अभी हाथी के पेट में से कोई बेषकीमती, अत्यन्त स्वादिष्ट चीज निकलेगी फिर उसे खाकर मजें होंगे । यही सिलसिला चलता रहा, चलता रहा । कुछ जानवर इस गति में, चाल और दौड़ में सचमुच हाथी की पीठ पर जा बैठते । कोई उसके पेट, सूंड, दांत, पैर, पूंछ से जा चिपकते । और षेष जानवर जो ऐसा नहीं कर पाते, वे उस हाथी के विरोध में, असफलता की प्रतिक्रिया में अपना अलग–अलग दल बनाना षुरू करते । हाथी बड़ा होषियार था । राजा जो था । उसने कभी जंगल के राजा एक गोरे सिंह को जंगल से मार भगाया था । .... गोइंठा सिंह विहंसकर बोले – रूको भाई, रूको । हाथी ने जंगल के उस राजा गोरे सिंह को कैसे भगाया ?

विक्रम बोला – हाथी और उस सिंह की लड़ाई की कहानी सुनना चाहते हो तो हे मित्र, जरा ध्यान से सुनो । ऐसा था कि जंगल का राजा वही सिंह था । सिंह तो जंगल का राजा होता ही है। सो वह था । बड़ी मौज करता था । सारा जंगल उससे थरथर कांपता था । जंगल के सारे जीव–जन्तु उसके गुलाम । उससे भयभीत, दुखी और परेषान । जंगल में तब दो हाथी रहते थे । एक हाथी बिल्कुल नौजवान था । बड़ा गुस्सैल, लड़ाकू और मर कटने में विष्वास रखनेवाला । उसने कहा : इस सिंह को मारो । खतम कर दो .... बाप रे बाप, बड़ा गरम रहता था उसका बदन । उसकी सूंड से आग के षोले निकलते थे । वह हर वक्त हिंसा पर उतारू रहता था । दुष्मन के प्रति हिंसाभाव – यही विष्वास था उसका । दूसरा हाथी बड़ा था – बुजुर्ग । वह बड़े नरम स्वभाव का था । उसका विष्वास था : अहिंसा से उस सिंह को जंगल से बाहर निकाल दिया जाए । आखिर वह सिंह भी तो उसी एक ब्रह्म का अंष है। सो भैयाजी, उस गरम और नरम हाथी में मतभेद बढ़ा । नरम हाथी बड़ा ही चतुर, अनुभवी, होषियार और षांत प्रकृति का था । उसने गरम हाथी को इतना भड़काया, उसमें इतना क्रोध भरा कि वह खुद एक दिन जंगल छोड़कर बाहर निकल गया । और बाहर ही बाहर से उस षेर से लोहा लेने गा । इधर जंगल में गरम हाथी कि जितने समर्थक मित्र–दोस्त थे, वे एक–एक कर उस षेर से लड़ते मारे गए । कुछ षहीद हुए । असंख्य काले पानी के जंगल में खदेड़ दिए गए ।

अब अकेला बचा वही नरम हाथी । महान हाथी । बुजुर्ग हाथी । षांत, अहिंसक, सत्य स्वभाववाला हाथी । उसने सोचा, जंगल के सारे जीव–जंतुओं को एक कर उस सिंह से कहा जाए – हे भाई सिंह, तुम कितने अच्छे हो, महान हो, पराक्रमी हो, काफी दिन राज किया इस जंगल पर, अब कृपा कर इस जंगल का राजपाट हमें देकर यहां से चले जाओ । हम तुम्हारे इस अहसान, इस त्याग, इस दान को कभी नहीं भूलेंगे । पर भइया, वह सिंह इतना बेवकूफ था ? अपना राजपाट छोड़कर चला जाता। कमाल है । सो भइया, मांगने और न देने, न पाने का संघर्ष चला ।

हाथी ने सम्पूर्ण जंगल के प्रतिनिधि और विविध प्रकृतियों, स्वभावों और विष्वासों के जीवों का एक सामंजस्यपूर्ण संगठन तैयार किया । जाहिर है, इसके लिए उस सिद्धांतवादी हाथी को अनेक समन्वय, समझौते करने पड़े । गैंड़ा, भालू, चीता, भेड़िया, लकड़बग्घा, तेंदुआ से लेकर बन्दर, गीदड़, लोमड़ी, चूहा, बिल्ली तक, दूसरी ओर सांप, बिच्छू, कीड़े–मकोड़ों से लेकर मोर, कौआ, गिद्ध, तोता, मैना, उल्लू, मुआंचिरई, कठफोड़वा तक असंख्य जीव–जंतुओं के परस्पर–विरोधी प्रकृति और दर्षन के बीच सामंजस्य बैठाना कोई हंसी–मजाक का खेल नहीं था ।

जाहिर है, इन विरोधी और परस्पर संघर्षकारी जीव–जंतुओं के बीच सामंजस्य के लिए हाथी को किसी कामचलाऊ सिद्धान्त की खोज करनी पड़ी । जरा ध्यान से सुनो बाबू गांइठा सिंह, बहुत चकर–मकर मति करो हां, घने जंगल की कहानी है यह .... हां तो भइया, क्या कह रहा था ? हां, कामचलाऊ सिद्धान्त ! वह सिद्धान्त था – 'जंगल के समस्त जीव–जंतुओं की सहमति है कि हे सिंह राजा, तुम अब जंगल छोड़कर चुपचाप चले जाओ । बहुत कर लिया राज प्यारे !'

सिंह बोला – यारो, क्या मजाक करते हो ! हिम्मत हो तो आकर सीधे लड़ो, वरना चुप रहो ।

जंगल–भर से नारे बुलन्द होने लगे – जंगल छोड़ो !

असहयोग !

सत्याग्रह !

ष्षेर बड़ा होषियार था । राजा जो था । वह लगा लड़ाने परस्पर एक जीव से दूसरे जीव को। तरह–तरह से जीव–जंतुओं में फूट पैदा करने लगा । पर जीव–जंतुओं में किसी तरह सामंजस्य बना रहे, इसके लिए नरम हाथी दिन–रात हाथ–पैर मारने लगा और धीरे–धीरे उसका रूप, उसका व्यक्तित्व मूर्त से अमूर्त होने लगा ।

गोइंठा सिंह ने टोका – नहीं, नहीं, यह मूर्त–अमूर्त समझ में नहीं आया ।

विक्रम ने कहा – लो थोड़ा पानी पीकर कलेजा ठंडा कर लो और आगे सुनो ! तो तुम्हें अमूर्त समझ में नहीं आया । समझने की कोषिष करो गोबर महाराज ! मतलब उस हाथी के ऊपर दो तरह की जिम्मेदारियों आ गईं ।

जीव–जंतुओं के अपार दल के भीतर सबसे अलग बढ़कर, विषेष बनकर, ताकत और अधिकार हड़पने के लिए परस्पर होड़ करने वाले जमातों के बीच संतुलन बनाए रखना, दूसरे जंगल की अंदरूनी फूट, मतभेदों का तनिक भी संकेत दिए बिना उस दुष्मन सिंह से लोहा लेते रहना ।

– फिर क्या हुआ ?

– हुआ यह कि वह हाथी सिद्धांत–निष्ठा, कर्मठता के बजाय धीरे–धीरे व्यवहार–कुषल, चतुर, समझौतावादी और होषियार होता गया । वह हाथी नहीं, नट होने लगा । जैसे सरकस में हाथी को साइकिल चलाते देखा है न, वैसा .... ।

– फिर आगे क्या हुआ ?

– वह सिंह एक दिन जंगल को कई हिस्सों में बांटकर, सबमें नफरत, फूट, अविष्वास, लूट, बेईमानी की आग लगाकर निकल गया । और हाथी जंगल का राजा हो गया ।

– फिर क्या हुआ ?

– तुम्हें बहुत जल्दी है क्या ?

– हां, भाई, कोई मिलने आ रहा है, दारूलसफा में । हम लोगों पर बहुत जिम्मेदारियों हैं । विरोधी पार्टी वालों ने नाक में दम कर रखा है ।

विक्रम फिर ठहाका मारकर हंस पड़ा ।

– अजी छोड़ो भी, कैसी विरोधी पार्टी ? कैसा विरोध ?

– क्या बात करते हो ?

मेज पर तेजी से मुक्का मारकर बाबू गोइंठा सिंहजी उठने लगे । विक्रम बोले – जंगल के उस हाथी के विरोधी तो अनेक जीव–जंतु थे, पर असली विरोध कहीं भी नहीं था ।

गोइंठा सिंहजी आंख फाड़कर बोले – मतलब, तुम इस मुल्क की जंगल–वार्ता सुना रहे थे ? कांग्रेस को हाथी बनाकर .... । मैं यह नहीं मानता !

– हां–हां, उस राजा हाथी का तब से कोई विरोधी नहीं रहा । जो सारा विरोध है .... जो लोग हैं .... वह ... .

– रूक क्यों गए ?

– आपको जाना है । देर हो गई ।

गोइंठा सिंह कार में बैठते हुए बोले – यार भाई विक्रम, तुम आदमी अच्छे हो, पर थोड़ा दिमाग ..

विक्रम हंसने लगा । कार तेजी से चली गई । तभी एक लम्बी–चौड़ी गाड़ी सामने आकर रूकी । वही दीनबंधु निकला । गोंइंठा सिंह को लेने आया था । विक्रम को देखते ही पास चला आया । आंखें नचाते हुए बोला – कैसा लगा यह होटल ?

– क्यों ?

– अपना ही है ।

विक्रम चुप देखता रहा । दीनबंधु हवा में हाथ हिलाकर चला गया ।

11

उसी दिन होटल छोड़कर दोनों मित्र लखनऊ की सड़कों पर घूमने लगे । बैताल पांड़े बिल्कुल चुपचाप थे । विक्रम ने पूछा – क्या बात है मित्र, बड़े उदास हो ?

पांड़ेजी लम्बी सांस लेकर बोले – हे मित्र, मुझे पंड़ाइन की बड़ी याद आ रही है ।

– तो ऐसा करो, तुम जाकर अपनी पंड़ाइन से मिल आओ और मेरी विरहिनी सुगनसुन्दरी को भी मेरा विरह–संदेष दे आओ ।

– क्या है संदेष मेरे यक्ष मित्र ?

विक्रम सड़क के किनारे एक पुलिया पर ध्यानमग्न षांति से बैठकर बोलने लगा, और बैताल पांड़े एक कागज पर वह विरह–संदेष झटाझट लिखने लगे :

वर्षा की रात अन्हियारी रे

सुगन तेरी पुतली जादूवारी रे ।
ओ उदार प्रियतमे, न हमसे होनहार टल पाई
न भूले जो उसे तू भूल, मेरी सुन्दरी जो न कह पाई ।
ओ संगीता, प्रियतमा, सती, तू षुद्ध और निपुणा रे
तेरे ही अनन्त प्रेम–प्रकाष में मैं हर क्षण जीता रे ।

उचित है नहीं जगत सुख–भोग, उचित है नहीं षांत संन्यास ।
आज स्व्च्छन्द चारी मैं, स्व–इच्छा कर्मचारी मैं ।

यह कहते–कहते विक्रम मौन हो गया और उसकी आंखों से अश्रुधारा बह निकली । पांड़ेजी तड़पे :

– हे मित्र, क्या अबला स्त्रियों की भांति रो रहे हो ?

– सुनो, जो मेरे भीतर श्रेष्ठ है, वह स्त्री ही है प्यारे !

– अच्छा तो अब जा रहा हूं ।

– जाओ, तुम्हारी यात्रा षुभ हो मेरे मेघ !

– यह बताओ, लौटकर मैं तुमसे कहां मिलूंगा ?

विक्रम आकाष की ओर निहारते हुए बोला – पहले मुझे लखनऊ षहर के अस्पतालों में ढूंढना, फिर जेलखाने में, नही ंतो पागलखाने में ।

– चुप रहो मित्र, ऐसी बातें मुंह से मत निकालो, ईष्वर हमारे साथ हैं । मैं तुम्हें ढूंढ लूंगा । हां, तब तक इस षहर को मत छोड़ना । मैं षीघ्रातिषीघ्र आऊंगा । हां, मैं तुम्हें सावधान करता हूं : तू मूलतः प्रेमी हैं, तो भाई मेरे, षहर की सुन्दरयिों से सावधान रहना ।

यह कहकर पांड़ेजी चारबाग रेलवे स्टेषन की तरफ चल पड़े । विक्रम वहीं पुलिया पर मूर्तिवत् बैठा रह गया । थोड़ी देर बाद, मानो जब उसकी समाधि भंग हुई तो वह सोचने लगा – अब उसे क्या करना चाहिए ? कहां जाना चाहिए ? यह तो पता चल ही गया कि मैं कितना कमजोर हूं, पर अब तक यह भी पता लग गया कि मैं अपने इस महान देष के आंगन में खड़ा, नहीं–नहीं, इसकी सेवा और रक्षा में तैनात एक आत्मनियुक्त सेवक और चौकीदार हूं । क्योंकि मैं यह महसूस करता हूं .... नहीं, नहीं, मेरा यह धर्म–विष्वास है कि लोकतन्त्र में प्रत्येक नागरिक अपने राष्ट्र का पहरेदार है । मुझे यहीं से दिखाई पड़ रहा है कि मेरे देष का लोकतन्त्र झूठा पड़ता जा रहा है । लोग भीतर ही भीतर टूट रहे हैं । जन–मानस आदर्षों से रिक्त होता चला जा रहा है । और मैं यहीं से देख रहा हूं, दूर क्षितिज पर अधिनायकवाद की आंधी उठ रही है ....

अचानक विक्रम उसी पुलिया पर तनकर खड़ा हो गया और पूरी आवाज में चिल्लाने लगा–उठो .. उठो लोगो, जागो । देष को बचाओ । इसके लोकतन्त्र की रक्षा करो । दौड़ो । आंधी आ रही है ....

पहले उसके आस–पास बच्चे आए । फिर आसपास बैठे बेकार लोगों ने उसे आ घेरा । कुछ लोग समझने लगे – यह कोई पागल है । कुछ समझने लगे – यह सिरफिरा है । पर धीरे–धीरे श्रोताओं की संख्या बढ़ने लगी । तांगा, मोटर, साइकिलों से नीचे उतरकर लोग खड़े होते गए । पैदल चलते हुए लोग खड़े होकर सुनने लगे । विक्रम तेजस्वी वाणी में कहता चला जा रहा था – बुनियादी तौर पर अपराध मेरा है, तुम्हारा है कि हमने लोकतन्त्र को जाना ही नहीं कि यह क्या है । हम इस महान स्वप्न, पवित्र सत्य से परिचित ही नहीं हुए । हमने इसका कभी सत्यमन से अलख ही नहीं लगाया । यह काम तो उसी दिनसे षुरू कर देना चाहिए था, जिस दिन यह देष आजाद हुआ और महात्मा गांधी जैसे पुरूष को गोली से उड़ा दिया गया । मुझे बेहद अफसोर है कि मैं अपनी निराषा–उदासी में पड़ा सोया रहा । मेरा इससे भी बड़ा अपराध यह है कि मैंने देष के उन राजनीतिज्ञों पर विष्वास किया जो कांग्रेस के विरोध में खड़े थे । मुझे इनसे यह आषा थी .... जिसे अब मैं अपना अंध–विष्वास कहूंगा कि वे लोकतन्त्र में एक सच्चे ठोस विकल्प की बुनियाद डालेंगे, प्रतिष्ठा करेंगे । मैं अपने और इस महान देष के चरित्र बल से यह दुहाई दे रहा हूं कि इन विफल, भोगी, ढोंगी और दृष्टिहीन राजनीतिज्ञों पर भरोसा करना बंद कीजिए । आप स्वयं उठिए और नये लोगों को लेकर देष को एक सर्वथा नया वैकल्पिक दल दीजिए जो कांग्रेस के बढ़ते हुए अखंड राज, अधिनायकवाद की आंधी का डटकर सामना कर सके । उसे अपने पंजे समेटने के लिए विवष कर दे । ऐसा विकल्प, जो इस टूटते हुए देष को बचा ले । इसे नया स्वास्थ्य, नई दिषा और दृष्टि दे, ताकि एक मानवीय–ईमानदार सरकार की प्रतिष्ठा हो । षायद अभी बहुत देही नहीं हुई है, लेकिन सावधान ! यदि अब भी न जगे तो काल, समय हमारी राह देखता नहीं बैठा रहेगा !

विक्रम ने देखा : सामने, दायें–बायें की सड़कों पर यातायात रूक गया है । पुलिस की एक जीप दिखाई पड़ी ।

घोड़ों पर तैनात पुलिस दस्ता आया । भीड़ चीरता हुआ एक पुलिस इंस्पेक्टर विक्रम के सामने आकर बोला – बंद कीजिए, आइए मेरे साथ !

– क्यों ?

– हिरासत में है । हथकड़ी पहनाऊं क्या ?

– पर क्यों ?

– आवाज नहीं ! मजिस्ट्रेट के सामने सफाई दीजिएगा ।

भीड़ में खलबली मच गई थी । लोग नारे लगाने लगे थे । पुलिस अश्रुगैस के हथगोले फेंककर भीड़ को तितर–बितर करने में लगी थी ।

जेलखाने की एक हफ्ते की सजा काटकर विक्रम सीधे उसी मजिस्ट्रेट के इजलाम में जा घुसा । अदालत से प्रष्न किया – क्या था मेरा अपराध ?

– पब्लिक न्यूसेन्स !

– क्या ?

– अधिकारियों से बिना इजाजत लिए इस तरह पब्लिक मीटिंग करना !

– क्या ?

– सार्वजनिक मार्गों पर बाधा उपस्थित करना ।

– और ?

मजिस्ट्रेट विक्रम की ही उमर का था । विक्रम से उसकी आंख मिलते ही वह खड़ा हो गया । उसे अपने संग लिए हुए बगल के कमरे में गया । बोला – आप माफी मांग लेते, मैं छोड़ देता ।

– पर क्यों ?

– आपने अपनी सफाई में कुछ कहा भी नहीं । मुझे क्या पता, आप ऐसे हैं ।

– आप, सबको बुनियादी तौर पर क्या समझते हैं, यही देखने के लिए मैं चुप था । बहुत अफसोस है, आप मरे हुए लोग हैं, जिन्हें यह भी पता नहीं कि वह हत्यारा कौन है, क्या है ।

विक्रम तीर की भांति कमरे से बाहर चला गया । मजिस्ट्रेट ने अदालत के सिपाही को हुक्म दिया कि इस आदमी के बारे में पूरी मुकम्मल कैफियत पेष की जाए ।

विक्रम के बारे में दूसरे दिन सिपाही ने पूरी कैफियत पेष करते हुए बताया कि हुजूर, यह आदमी कुछ सिरफिरा लगता है, इसके अलावा और कोई खास बात नहीं ।

मजिस्ट्रेट म नही मन मुस्कराया – यही तो बात है, अब आदमी हमें सिरफिरे लगते हैं ।

मजिस्ट्रेट स्वयं विक्रम के व्यक्तित्व से आकृष्ट होकर उसके पीछे लगा । यद्यपि इसके पहले खुफिया पुलिस की रपट से भी यह जाहिर हो गया था कि विक्रम नामक आदमी से कोई खतरा नहीं है । हां, कभी–कभी इसपर झक चढ़ जाती है और अनाप–षनाप बकने लगता है । कभी–कभार ऐसे काम भी कर बैठता है जिनकी कोई सींग–पूंछ नहीं ।

पर जितना कुछ मजिस्ट्रेट ने विक्रम को सुना, प्रत्यक्ष देखा, उससे अलग बातें कीं, उससे पता लगा कि यह आदमी तो विलक्षण जिद्दी है । भयंकर रूप से ईमानदार है । इसमें ज्ञान और कर्म इन दोनों महान विभूतियों का तेज है । यह तो ऐसा अद्‌भुत आदमी है कि अपने कर्म को ही परम लक्ष्य बनाए हुए है । इसे उसकी सफलता और असफलता से कुछ भी लेना–देना नहीं । अजीब बात है, इसे किसी भी काम में भय नहीं, षर्म और लिहाज की तो बात ही नहीं उठती । लगता है, भूख, प्यास, निद्रा, दुःख–सुख सबसे विरक्त है यह ।

– आप चाहते क्या हैं ? मतलब, आपका लक्ष्य क्या है ?

मजिस्ट्रेट के इस सवाल से उस दिन विक्रम हठात् चुप रह गया । पर प्रष्नकर्ता बराबर आग्रह करता रहा ।

विक्रम ने कहा – हे सज्जन पुरूष, ध्यान लगाकर सुनो ! अपनी पैंट की क्रीजें और सफेद कमीज पर से ध्यान हटाकर सुनो .... हमारे देष में आजादी के बाद और नया संविधान लागू होने के समय, हम सब लोगों को उम्मीद थी कि हम एक मजबूत लोकतन्त्र बनाएंगे । मतलब हम यह जानते थे कि दे समान रूप से मजबूत राजनीतिक दलों के बिना लोकतंत्र का कोई मतलब नहीं होता । पर हम लालची, स्वार्थी, अन्धविष्वासी लोग कांग्रेस के मुकाबले की कोई दूसरी पार्टी पूरे मुल्क के स्तर पर नहीं खड़ी कर सके । हम रंग–बिरंगे झंडे खड़े कर महज लूलू–लूलू करते रहे ।

– लूलू–लूलू के क्या मतलब ?

– ध्यान से सुनो, बीच में लूलू–लूलू मत करो । हमारी यह असफलता भारत के उस राजनीतिक संकट के लिए

मुख्य रूप से जिम्मेदार है, जो हमारे सिर पर मंडरा रहा है । इस लम्बे अरसे में कांग्रेस देष पर एक छत्र षासन करती रही है, जिसके कारण एक ओर तो वह स्वयं भ्रष्ट हो गई है और देष का सारा राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक जीवन हर प्रकार की गंदगी से भर गया और उसमें से सिर्फ एक दर्षन पनपा : लूटो मेरे भाई । दूसरी ओर विरोधी राजनीतिक दल, जो उसी कांग्रेस रूपी हाथी की लीद में से निकले, लगातार पिटते और खत्म होते चले गए । क्योंकि उनमें न तो कोई विषेष दर्षन था न राजनीतिक आस्था । देष में गोबर रूपी राजनीतिक दलों की तादाद इतनी ज्यादा बढ़ती चली गयी कि राष्ट्रीय, प्रादेषिक और स्थानीय राजनीति में दलों की पहचान तक करना मुष्किल हो गया,

मजिस्ट्रेट ने कहा – श्रीमान्, आपकी भाषा क्या 'अनपार्लियामेंट्री' नहीं है ?

– आपका सारा जीवन क्या 'अनपार्लियामेंट्री' नहीं है ? फिर क्या बकर–बकर करते हैं ? बात को समझिए सज्जन पुरूष, मैं दुर्जन बोल रहा हूं ! हंसिए नहीं । हां, तो आजादी के इतने वर्षों के भीतर कोई भी नेता और देषभक्त, इस मुल्क को कांग्रेस की टक्कर का ऐसा मजबूत राजनीतिक दल नहीं दे सका जो आम जनता की आवष्यकताओं को ध्यान में रखकर नीतियां बनाता, और सरकार की बागडोर कांग्रेस के हाथों से छीन ले सकता । आज हालत यह है कि देष की सारी नैतिक व्यवस्था बरबाद हो गई है और चारों ओर झूठ, अन्याय, भ्रष्टाचार का बोलबाला है । इस दुर्गति की सारी सत्ता का प्रयोग अपने निजी हितों और अपने समर्थकों के लाभ के लिए करती रही है । और उधर देष के वे तमाम लोग भंयकर रूप से कुण्ठित होते गए, जिनके मन में राजनीतिक चेतना तो थी लेकिन जो देष की स्थिति बदलने के लिए कुछ नहीं कर सके । तुम, हम, देष के सारे पढ़े–लिखे सज्जन कहलाने वाले भले लोग राजनीति से हट गए । इसका नतीजा यह हुआ कि राजनीति, जो इतनी पवित्र चीज है, दृष्टि है, वह गन्दी होती चली गई और तुम तुम लोग राजनीति षब्द से घृणा करने लगे । सुनो–सुनो, हे सज्जन पुरूष, तुम भागते कहां हो ? सुनो .... राजनीति उस निचले और छिछले स्तर पर उतर आई है, जिससे समाज का पतन और राष्ट्र का विघटन होता जा रहा है .... सुनो .... भागते कहां हो .... रूको !

मजिस्ट्रेट भागने लगा । विक्रम उसके पीछे–पीछे दौड़ते हुए कहता रहा – सुनो .... सुनो ! भारत को इस संकट में धकेलने की जिम्मेदारी तुम पर है .... जनता पर है ! रूक जा, भागता कहां है, जो लोग राजनीति से बाहर रहकर स्वतन्त्र और सज्जन होने का दावा करते हैं, वे ढोंगी हैं । भागने वाले सज्जन नहीं, कायर, अवसरवादी हैं .... ।

मजिस्ट्रेट भागता हुआ अपने बंगले में जा घुसा । पुलिस को खबर दी । पुलिस ने आकर उसे गिरफ्तार कर लिया ।

हांफते हुए मजिस्ट्रेट ने आज्ञा दी – यह आदमी पागल है । इसे फौरन पागलखाने में ले जाकर बन्द कर दो ।

विक्रम
पागलखाने में

काफी बड़े क्षेत्रफल में वह पागलखाना बना था । बीच में बहुत बड़ा मैदान था, आसपास छोटी–छोटी इमारतें बनी थीं । कहीं–कहीं एक–दो कमरे बने थे । मैदान में छोटे–छोटे खेत थे । फूल–पौधे उगे थे । तीन–चार पेड़ भी थे – आम, नीम, बरगद और पीपल के । अजीब सन्नाटा घिरा था । एकाएक उस सन्नाटे में कोई चीख कौंधती, कोई ठहाका मारकर हंस पड़ता, कहीं से कोई चिंघाड़ मारकर रोने लगता । फिर सहसा सन्नाटा घिर आता । एकाएक कहीं से गाने की आवाज सुनाई देने लगती और कहीं से कोई जोर–जोर से कुछ पीटता, तोड़ता हुआ बहुत ही ऊंची आवाज में कहने लगता – मैं राजा हूं इस मुल्क का । मैं आर्डर देता हूं, सबको गोली से उड़ा दिया जाए ।

विक्रम को सीधे मेडिकल वार्ड में रखा गया । वहां वह दो दिनों तक बेखबर सोता रहा । उसमें कहीं कोई पागलपन के लक्षण नहीं मिले । फिर उसे साइकियाट्रिस्ट के पास ले जाया गया । साइकियाट्रिस्ट ने रिपोर्ट दी – इसका मेडिकल चेक–अप किया जाए ।

'मेडिकल चेक–अप' के लिए विक्रम को डॉक्टर के पास ले जाया गया । डॉक्टर ने उसे बड़ी गम्भीरता से देख–दाख और परीक्षण करके कहा – जरा तुम मैदान में टहलकर दिखाओ तो भला ।

– क्या दिखाऊं !

– बस, चुपचाप टहलो ।

विक्रम मैदान में बड़े ही आनन्द से टहलने लगा । वह देखने लगा – लोग कमरों में बन्द हैं और वहीं से कुछ चुपचाप दयनीय भाव से देख रहे हैं । कुछ हंस रहे हैं, कुछ मुस्कान बिखेर रहे हैं । कुछ उसे गालियां देने लगे हैं ।

कुछ थूकना चाहते हैं । कुछ उसपर उसपर पत्थर उठाकर मारना चाहते हैं । और कुछ उससे डरकर चीख उठते हैं ।

डॉक्टर ने विक्रम को रोककर कहा – इधर चलो, तुम इधर–उधर देखते क्यों हो ?

– अंधा जो नहीं हूं ।

– षट–अप ! गा सकते हो ?

जी हां, क्यों नहीं ?

और विक्रम गाने लगा :

कदम–कदम बढ़ाए जा, खुषी के गीत गाए जा ।
कुछ आरजू नहीं है, है आरजू फकत यह
रख दे कोई जरा–सी खाके–वतन कफन में
यह जिन्दगी है कौम की, तू कौम पर लुटाए जा

अचानक लगा – सारा पागलखाना गाने लगा है उसके साथ । हर चीज जैसे वजने लगी है ।

डॉक्टर ने कहा – बन्द करो यह पागल गाना !

विक्रम चुप हो गया ।

डॉक्टर ने पूछा – तुम्हारा नाम ?

– भारतवर्ष !

– ठीक से जवाब दो, वरना वेंत पड़ेगे !

विक्रम बस मुस्कराकर रह गया । डॉक्टर ने विक्रम को फाइल देखते हुए पूछा – सच–सच बताओ, वह कौन आदमी है जिसने इस तरह तुम्हारा दिमाग खराब किया ?

– चुप रहो, सुनो–तुम पागल नहीं हो, बस तुम्हारा दिमाग कमजोर है !

– अच्छा !

डॉक्टर ने विक्रम की आंखों में देखते हुए पूछा – अच्छा यह बताओ तुम अपने चारों ओर भीड़ क्यों इक्ट्ठी करते हो ?

विक्रम डॉक्टर का मुंह निहारता रह गया । डॉक्टर ने कहा – दूसरी बात यह कि तुम्हें देखकर लोग डर के मारे भागने क्यों लगते हैं ?

विक्रम बोला – अब आप खुद सोचिए डॉक्टर साहब, पागल कौन है ? आप या मैं ? अभी आपने मुझपर अभियोग लगाया कि मैं भीड़ क्यों इक्ट्ठी करता हूं, फिर यह कि लोग मुझे देखकर डर के मारे भागने क्यों लगते हैं ?

डॉक्टर आग–बबूला होकर उठ पड़ा । आर्डर दिया – इस आदमी का पेट खराब है । इसे सुबह–षाम तीन दिनों तक सिर्फ एक–एक कप चाय दी जाए और दोनों वक्त एनीमा ।

डॉक्टर को यकीन था कि विक्रम दूसरे ही दिन उसके पैरों पर आ गिरेगा । पर ऐसा कुछ भी नहीं हुआ । वह मैदान में जाकर पेड़–पौधों की सेवा करता । जहां कहीं भी गन्दा होता, वहां झाड़–पोंछ करता । पागल बन्धुओं की सेवा में लगा रहता ।

तीसरे दिन विक्रम ने पीपल के पेड़ के नीचे लोगों की एक अजीब भीड़ देखी । वह पास गया । वहां का दृष्य देखकर वह हैरान रह गया । उस भीड़ में कोई अपने–आपको पंडित, कोई राजा, कोई मंत्री, कोई वकील, कोई नेता, कोई डॉक्टर आदि समझे अपने–आपमें व्यवहार कर रहा था ।

आम के पेड़ के भी नीचे वैसी ही एक भीड़ जमा थी । उसमें एक जुआरी बना अपने–आपसे जुआ खेल रहा था । एक अध्यापक बना अदृष्य विद्यार्थियों को षिक्षा दे रहा था । एक राजनीतिज्ञ की भाषा में बोल रहा था ।

और दूर बरगद के पेड़ के नीचे अकेला एक आदमी बैठा कागज पर यह हिसाब लगा रहा था कि यह दुनिया कब खत्म होगी !

विक्रम ने उसे रोका – भाई, यह क्या करते हो ! ऐसा हिसाब मत जोड़ो । यह हिसाब लगाओ, यह पागलखाना कब टूटेगा ? वह आदमी जोर से हंसा । बोला – मैं स्वतंत्र हूं, क्योंकि मुझे कोई मना करने वाला नहीं !

विक्रम उसे प्यार करते हुए बोला – यह स्वतन्त्रता नहीं, बीमारी है, पागलपन है ।

– क्या बकते हो ?

– लगता है, तुम प्यासे हो ! चलो, तुम्हें पानी पिलाऊं !

– हां, मैं बहुत प्यास हूं । कोई मुझे भरपेट पानी नहीं पीने देता । कितने दिन हो गए, मैं सोया नहीं ।

विक्रम उसे नल के पास ले गया । वह पूरी बाल्टी पानी पी गया । बरगद के नीचे आकर वह विक्रम से न जाने कहां–कहां की बेसिर–पैर की बातें करते–करते वहीं लुढ़ककर सो गया ।

पागलखाने के अधिकारियों में यह चर्चा फैल गई कि नम्बर तीन सौ बाईस के पागल को नींद आ गई । नम्बर तीन सौ बाईस पूरे बहत्तर घण्टे सोता रहा और विक्रम उसके पास बैठा–बैठा ईष्वर का नाम जपता रहा ।

वही डॉक्टर आया । विक्रम से बोला – तुम्हें भूख–प्यास नहीं लगी ? तुम इस तरह जिन्दा कैसे हो ?

विक्रम बोला – मैं पुरूष हूं, भावना और कर्म से जीता हूं, अन्न और जल से नहीं ।

विक्रम को डॉक्टर अपने बंगले पर ले गया। उसे दोपहर का भोजन कराने लगा । डाक्टर ने पूछा – भाई, तुम हो कौन ? तुम्हें देखकर मैं अब आष्चर्यचकित हूं । बचपन में एक बार महात्मा गांधी को देखा था, वह भी हरे समन्दर में कूदने वाला एक बालालखन्दर था !

महात्मा गांधी का नाम सुनते ही विक्रम ठहाका मारकर हंस पड़ा । फिर षांत होकर बोला – महात्मा गांधी का नाम सुनते ही ख्याल आता है उस आदमी का, जिसने जिन्दगी–भर अपना सलीब अपने नंगे मगर ऊंचे कन्धों पर खुद ढोया और जिस पर उसे उसके ही लोगों ने बेहद निर्ममता और निर्लज्जता से कीलों से ठोक दिया ।

डाक्टर बोला – मुझे बहद अफसोस है, आपको खामखा इस तरह पागलखाने में ढकेल दिया गया।

विक्रम ने कहा – क्या इस वक्त पूरा देष पागलखाना नहीं है ? जो मैंने इतने दिनों में यहां देखा, वही तो पूरे समाज में हो रहा है । चारों ओर लूट–मार हो रही है, जो ऐसा नहीं कर पा रहा है, उसे पागल करार दिया जा रहा है ।

पागलखाने में विक्रम के चारों ओर पागलों की भीड़ जमा हो जाती है । वह एक–एक का माथा छू–छूकर कह रहा है – किसने कहा, तुम पागल हो ! तुम तो मेरे भाई हो । तुम मेरे पिता हो । तुम मेरे दोस्त हो । तुम कितना अच्छा गीत गाते हो । तुम कितने अच्छे कारीगर हो ! तुम कितने ईमानदार प्रेमी हो ! तुम्हें मैं जानता हूं, तुम निर्दोष हो, तुमपर अत्याचार हुआ है । तुम्हारे अपमान को मैं जानता हूं । मैं चष्मदीद गवाह हूं तुम्हारी षराफत का । डरो नहीं, तुम्हारा कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता । मैं पहरा देता हूं – चलो, तुम लोग निष्चित, निर्भय होकर सो जाओ ! सो जाओ ! मैं तुम्हें एक गीत सुनाता हूं !

सारे पागल वहीं मैदान में बैठ गए । विक्रम उनके चारों ओर जैसे पहरा देता हुआ अजब सुर–संगीत में गाने लगा । सब वहीं लुढ़ककर सो गए ।

सारे पागल स्वस्थ नार्मल मनुष्य होकर विक्रम के साथ पागलखाने से बाहर जाने लगे । सारे अधिकारी आष्चर्यचकित, परेषान । सषस्त्र पुलिस के दस्ते ने आकर उन्हें घेर लिया । सारे अखबारों में इस आष्चर्यजनक घटना की कहानियां प्रकाषित हुईं । मंत्री, नेता, पत्रकार लोगों की वहां भीड़ इकट्ठी होने लगी । पागलों के घरवाले, हितू–सम्बन्धियों ने आकर उन्हें अपने गले लगा लिया ।

पर पुलिस चारों ओर घेरा डाले तैनात खड़ी थी । उस विभाग के सबसे बड़े अधिकारी ने प्रष्न किया – क्या सबूत है कि ये लोग अब पागल नहीं हैं ? विक्रम ने जवाब दिया – क्या सबूत कि आप लोग पागल नहीं हैं ?

तभी उस बड़े डॉक्टर ने यह लिखकर दे दिया कि – मैं सबूत देता हूं, मैं चष्मदीद गवाह हूं, कि अब ये लोग पागल नहीं हैं !

विक्रम उस अपार भीड़ के साथ आगे चल पड़ा ।

12

जिस–जिसके जहां घर थे, घरवाले आए थे, वे अपने–अपने निवासस्थान चले गए । षेष करीब तेईस लोग विक्रम से अलग नहीं होना चाहते थे । उन्हें डर था, लोग उन्हें फिर न कहीं उसी पागलखाने में ढकेल दें ।

दूर–दूर चलकर घूमते हुए विक्रम के साथ वे लोग भिक्षा मांगकर खाते और घर–घर, गांव–गांव, नगर–नगर जाकर लोगों से एक ही बात कहते –

तट पर खड़ा रहता है बगुला भगत
चुपचाप मछली पकड़कर पेट भरता है
मझधार में डूबने वाले की उसे परवाह कहां ?
आज देष की नाव

मझधार में डूब रही है
आप तटस्थ रहिएगा या
हे गोपीचन्दर !
समन्दर में कूदकर
उसे बनाएगा
क्यों भाई बन्दर ?

हजारों की भीड़ में विक्रम कहने लगा – राजनीति की पावन सुरसरि को सत्ता–लोलुप नेता, व्यवसायी षासकों ने भ्रष्ट कर दिया है । उसे स्वच्छ करने को दौड़िए । मत कीजिए साधनों की चिन्ता । इस गन्दगी को हम अपने इन्हीं हाथों से, मन–प्राणों से साफ करेंगे । इस संकल्प में साझी होइए । आप भारतीय हैं, और आपके हृदय में तनिक भी नैतिकता बची है तो आइए । देष को अधिनायकवाद के अपवित्र चंसुल से छुड़ाने के लिए साथ आइए !

हथेली फैला रहा हूं । सरकार का खर्च हमेषा ही जनता उठाती है । लोकतंत्र में उसे राजनीतिक संगठनों का खर्च भी उठाना चाहिए ! यदि इसे जनता न उठाए तो वह खर्च चंद पैसे वाले उठाते हैं और तब राजनीति उन थोड़े–से लोगों की दासी बन जाती है और मरघट में खड़ी होकर कफन उगाहती है । भारत में यही हो रहा है ! सावधान !

राजनीति पवित्र मन्दिर है
पांव धोकर भीतर आइए !
मरघट की उदासीनता छोड़कर
राजनीति में कूदिए
और देष को एक विकल्प दीजिए ।

उधर लालगंज गांव से लौटकर बैताल पांड़े लखनऊ षहर के कोने–कोने तक विक्रम की तलाष में मारे–मारे फिरते रहे । अन्त में गोइंठा सिंह एम0 एल0 ए0 से पता चला कि विक्रम कुछ पागलों के साथ कहीं दूर गांव–कस्बों में भटक रहा है । भिक्षा मांगकर खाता है और हमारी हुकूमत के खिलाफ आग उगलता है । अब वह दिन दूर नहीं कि उसे कोई गोली मार दे या उसे जेल में सड़ जाना पड़े ।

अखबार से यह भी पता चला कि वह मजिस्ट्रेट जिसका नाम लोकनाथ अरोरा है, तब से अस्पताल में बीमार पड़ा है । उसे बहम हो गया है कि विक्रम अब भी उसका पीछा कर रहा है । पुलिस, सी0 आई0 डी0, की नजर विक्रम पर है ।

बैताल पांड़े बहुत चिन्तित हो गए । लखनऊ षहर की चारों दिषाओं की सीमा चौकी–चुंगीघर पर जाकर चुपचाप आने वाले मुसाफिरों की बातें सुनते । और एक दिन उन्हें अचानक सूत्र मिल ही गया । दो मुसाफिर आपस में बातें करते चले आ रहे थे :

– अरे वह आदमी नहीं भूत है भूत .... क्या–क्या बातें करता है !

– मेरे गांव में आकर बोला : जमीन–खेती किसकी ? जो जोते–बोवै उसकी ! एक औरत बोली : जब डंड पड़ेगा सर पर, फिर कौन बचावै घर पर ? इसपर वह बोला : अरे हमने इधर एक गाना सुना था । क्या ? लगिगै जौबनवां कै धक्का बलम कलकत्ता निकरिगै । बाप रे बाप, सारी औरतें लजा गईं ।

पांड़े ने पूछा – हे भइया, जिसके बारे में तुम लोग ई बतियाय रह्मो है, वोकर अता–पता क्या है !

बस, पता पाकर बैताल पांड़े दौड़े उसी पष्चिम दिषा की ओर । जो भी जैसी भी जो सवारी मिली उसपर बैठकर भागते रहे । जैसे–जैसे लक्ष्य के करीब पहुंचते गए, वैसे ही वैसे विक्रम की ऊटपटांग चर्चाएं बढ़ती चली जा रही थीं ।

सहसा सुनाई पड़ा बगल के गांव में कोलाहल । बैताल पांड़े सवारी से कूदकर उसी दिषा में भागे । गांव के उस पार सिवान में काफी बड़ी भीड़ । विक्रम कट्ठा लेकर बिजली की गति समान खेतों को नाप रहा था । जमीन की पैमाइष कर रहा था । बैताल पांड़े ने देख – विक्रम के आसपास इतने सारे अंगरक्षक, सहायक !

विक्रम ने पूछा – पूरे गांव की यह आधी जमीन सिर्फ एक घर के नाम और बाकी जमीन सत्तर घरों के बीच । तेरह घर ऐसे जिनके पास एक इंच भी जमीन नहीं । बोलो, तुम लोगों को इस अन्याय पर गुस्सा नहीं आता ? क्यों नहीं आता ? गुस्सा उतारने के लिए तुम लोगों की वही बीबियां हैं ?

एक ने डरते–डरते कहा – सरकार .... ।

–मैं सरकार नहीं । मैं सिर्फ एक आदमी हूं । मैं सरकार तभी कहलाऊंगा, जब तुम एक–एक आदमी सरकार बनाओ । जब तुममें क्रोध पैदा होगा, अपने आस–पास के अन्याय, गरीबी, जहालत के खिलाफ ! बताओ यह सारी किसकी जमीन है ?

उसी आदमी ने बताया – पंडित यषोदानन्दन पाठक की । वह इस वक्त लखनऊ में कलट्टर है – जिलाधीष । भला किसकी इतनी हिम्मत कि पाठकजी की जमीन पर आंख उठाकर देखे !

विक्रम की आवाज कौंधीं –

नहीं, यह जमीन उसकी है
जो इसे जोतता–बोता है !
जमीन किसकी ?
जो जोते–बोबै उसकी !

विक्रम अपने साथी और गांव के कुछ लोगों के साथ सीधे लखनऊ की ओर चल पडऊ की ओर चल पड़ा । पैदल यात्रा । रास्ते के गावों से दो–चार आदमी उस यात्रा में और मिलते चले गए । पूरा काफिला लिए विक्रम चला जा रहा था । बैताल पांड़े बार–बार बगल में आकर कुछ कहना चाहते, विक्रम कहता – यात्रा में विध्न मत डालो मित्र, मैं बहुत कमजोर आदमी हूं । मुझे मेरी सुगनसुन्दरी की याद मत दिलाओ । ईष्वर का नाम लो ।

दूसरे दिन सुबह ही सुबह सारे आदिमयों के साथ विक्रम ने कलक्टर यषोदानन्दन पाठक के बंगले का घेराव कर लिया । पहरे पर तैनात षसस्त्र सिपाही हवा में बन्दूक दागता रह गया ।

लखनऊ षहर में खलबली मच गई । पुलिस अधिकारियों ने चारों ओर सिपाही तैनात कर दिए । असेम्बली में काम रोको प्रस्ताव रख दिया गया । एक कलक्टर के पास इतनी जमीन–जायदाद की कैफियत मांगी गई । उस क्षेत्र के एम0 एल0 ए0 अधिकारी आए । पत्रकारों की भीड़ इकट्ठी होने लगी। विक्रम अपने पूरे विष्वास से कह रहा था – नेताओं और षासकों ने मिलकर जनता की सारी जमीन हड़प् ली है । कलक्टर जनता के इस न्यायालय में हाजिर हो ।

संघर्ष बढ़ने लगा । एक ओर निहत्थी गरीब जनता, दूसरी ओर षासक और नेतावर्ग । उन्हें वहां से भगाने क लिए पहले आसूं गैस के गोले दागे गए । लोग वहीं जमीन पर औंधे लेट गए । फिर उनपर बेंतों की मार षुरू हुई । लोग–बाग प्राण बचाते हुए भागे । पर विक्रम अपने चार–छः साथियों सहित उस अमानवीय प्रहार कर सामना करता रहा । घायल, बेहोषी की हालत में फिर उसे न जाने कहां ले जाया गया ।

सरकारी अस्पताल के बरामदे में

रात को जब विक्रम की बेहोषी टूटी, तब उसने अपने–आपको उस अस्पताल के बरामदे में पाया। आसपास देखा, उसके सात–आठ साथी घायल दषा में कराह रहे थे । विक्रम की रक्त–भरी आंखें अपने परम मित्र बैताल पांड़े को तलाषती रहीं, पर पांड़े वहां कहीं नहीं दिख रहे थे ।

विक्रम को पता चला, अस्पताल में अन्दर कहीं जगह नहीं है । मरीज अन्दर जमीन पर पड़े हैं । अस्पताल में स्ट्राइक है, इसलिए घायलों की मरहम–पट्टी तक करने वाला कोई नहीं है । थोड़ा–सा इमरजेन्सी स्टाफ अस्पताल में है, पर अस्पताल में मरहम–पट्टी का सामान कई दिनों से खत्म हो गया है। कारण यह है कि जिसे माल सप्लाई करने का ठेक दिया गया था, वह एक मिनिस्टर का समधी था और वह अचानक किसी कत्ल के केस में फंसकर फरार हो गया है ।

विक्रम के सिर से अब तक खून रिस–रिसकर बह रहा है । उसका दायां हाथ उठ नहीं पा रहा है । लगत है हड्डी टूट गई है । बाईं ओर पसली में बेहद दर्द हो रहा है और उसे सांस लेने में तकलीफ हो रही है ।

अस्पताल के एक कम्पाउंडर ने आकर कहा – महाषयजी, अगर आप मुझे कम से कम पचास रूपये दे सकें तो मैं आपकी .... । मतलब यह कि पहले एक्सरे करना होगा .... फिर .... आप तो जानते ही हैं ।

विक्रम चिल्लाया – साथियो, इस जलील आदमी को गोली से उड़ा दो ।

बगल के साथी ने विक्रम के मुंह पर हाथ रखते हुए कहा – श्रीमन्, आपकी जान के लिए पचास रूपये क्या होते हैं !

– चुप रहो, यह अधर्म है, सत्य के आगे मेरी जान की कोई कीमत नहीं । आग लगा दो ऐसे जलील अस्पताल में । मरीजो, उठो, जमराज के इस ष्मषान से बाहर निकल आओ ! यह षरीर क्या है? एक वस्त्र की तरह है यह षरीर, जिसे हमारी यह अमर आत्मा ओढ़े हुए है । याद रखो, ऐसे कितने–कितने षरीर मिले हैं और आगे न जाने कितने मिलते रहेंगे ! क्या परवाह है इस पराये षरीर की। फट जाए, टूट जाए, हमें मारने वाला कौन है ? हमें कोई ताकत नहीं मार सकती । हम कायर नहीं, मनुष्य हैं । असली घाव तो हृदय में है .... ।

इस तरह पता नहीं कब तक विक्रम बोलता रहा । सुबह लोगों ने उसे अस्पताल से बाहर सड़क की पटरी पर बेखबर सोते देखा ।

सुबह लखनऊ के सारे अखबारों में घेराव की वह घटना, वह लाठीचार्ज, वह सारा वत्तान्त सचित्र छपा था । कलक्टर की उस जमीन के बारे में सरकार जांच कमेटी बैठा रही है – यह भी छपा था । विक्रम उन अखबारों में अपने मित्र बैताल पांड़े को ढूंढ रहा था । पर पांड़े का कहीं अता–पता नहीं था ।

विक्रम से मिलने कई पत्रकार आए थे । एम0 एल0 ए0 बाबू गोइंठा सिंहजी आए थे । दीनबन्धु का एक आदमी आया था । विक्रम वहीं फुटपाथ पर बैठा हुआ कह रहा था – हमारे राजनीतिक दल का जन्म हमारे अंतःकरणों में हो चुका है । यह दल संघर्ष की भट्टी में पककर तैयार होगा और देष के सामने आएगा ।

फुटपाथ के चारों ओर भीड़ इकट्ठी होती जा रही थी । लोग विक्रम को किसी डॉक्टर के पास ले जाना चाहते थे । पर वह कह रहा था – जब तक हमारे समाज के आखिरी गरीब, अन्तिम असहाय तक को डॉक्टर नहीं उपलब्ध होगा, तब तक मुझे डॉक्टर नहीं चाहिए । मेरी यह चोट, यह घाव प्रायष्चित्त है उस असहाय गरीब के प्रति जिसे जीवन–भर कभी भरपेट खाना नहीं मिलता, दवा नहीं नसीब होती ।

एकाएक विक्रम उठ पड़ा । लोग उसकी बातें सुनना चाहते थे । वह बोला – बातें जाकर सरकार से सुनो । मंत्रियों और विधायकों के मुंह नोचो जाकर । मैं अपने दोस्त बैताल पांड़े को ढूंढ़ने जा रहा हूं ।

अपने घायल, दुखी दोस्तों को पास ही की एक धर्मषाला में टिकाकर और उनके लिए चाय–पानी, नाष्ता–भोजन का आर्डर देकर विक्रम अकेला बैताल पांड़े को ढूंढ़ने निकल गया ।

लोगों से बचता, छिपता हुआ वह उसी कलक्टर की कोठी के बाहर चारदीवारी के साथ–साथ घूमने लगा । एकाएक उसने आवाज दी :

पांड़े भाई पांड़े हो । आहा हो !

सहसा कहीं आसमान से जवाब आया :

सुनो विक्रम कथा
बैताल बैठा डाल पर !

विक्रम ने देखा : बैताल पांड़े कलक्टर की कोठी के अहाते में एक ऊंचे बरगद के पेड़ की ष्षाखा पर विराजमान है । झटपट नीचे उतर, चहारदीवारी लांघकर बैताल पांड़े विक्रम के अंक में समाकर लगे रोने ।

विक्रम के बहुत समझाने पर वह कहीं षांत हुए ।

फिर दोनों मित्र गोमती नदी के तट पर आए ।

विक्रम बोला – और छोड़ो सारी बातें, मुझे मेरी यक्षिणी का विरह–सन्देष दो मित्र !

पांड़े जी ने सुगनसुन्दरी का प्रेमपत्र दिया। उस पत्र को आंखों से लगाकर अन्तःकरण से प्रणाम करके पढ़ना षुरू किया :

हे मेरे प्रान !
हृदय की एकता, प्रेम की सूक्ष्मता
और धर्माचरण की पूर्णता – इन तीन साधनों से
दम्पति पारस्परिक जीवन के लिए जिस यज्ञ का
विधान करते हैं, वहीं है हमारा प्रेमयज्ञ ।
अगर हमारे इस प्रेम ने एक–दूसरे को कहीं से भी
निर्बल बनाया तो हमें धिक्कार है मेरे प्राणनाथ !
हमें सुख नहीं, कल्याण चाहिए । तुम जिस पथ पर
निकले हो, मैं उसीका अमृत पाथेय बनी रहूं –
बस, यही कामना है मेरे प्रभु !

देषयज्ञ में
देषप्रेम ही सोमरस है । .... विदा ।
सदा सदैव तुम्हारी, सुगन .... ।

पत्र को अपनी आंखों से लगाकर विक्रम मुस्करा पड़ा । पूछा – देखो पांड़े, मेरे हाथ की हड्डी टूटी है क्या ?

– नही तो !

– और मेरी पसली !

– घाव तो सिर पर भी है !

– ऐसा करो पांड़े, मैं यहीं लेट जाता हॅ .... तुम इस प्रेमपत्र को जलाकर इसकी राख को चोटों और घावों पर लगा दो ।

उधर दोनों मित्र नदी–तट पर पड़े मन–विहार कर रहे थे और लालगंज गांव की तमाम प्रेमभरी बातों में डूबे थे, इधर एक अजीब तमाषा खड़ा हो गया था ।

बम्बई षहर से किसी बहुत बड़ी 'इन्डस्ट्री' के तीन अफसर एक लम्बी–चौड़ी एअर कंडीषन गाड़ी लिए हुए विक्रम की तलाष में लालगंज गांव से लखनऊ षहर में आकर दर–बदर घूम रहे थे ।

दिलीप सिंह
का वसीयतनामा

विक्रम के मामा कुंवर दिलीप सिंह अचानक बम्बई में बीमार हुए और अपनी वसीयत में समूची 'दिलीप इंडस्ट्री' विक्रम के नाम करके स्वर्ग सिधार गए । इंडस्ट्री के जनरल मैंनेजर अपने दो अधिकारियों को साथ लिए विक्रम को लेने आए थे ।

विक्रम से जब उनकी भेंट हुई, तो वे बम्बई वाले उसे अचरज और उल्लास के साथ एकटक देखने लगे । यह कैसा वीर पुरूष है .... यह तो बुरी तरह से पागल है, फिर भी कितना सहज प्रसन्न है । जनरल मैंनेजर ने वसीयतनामा विक्रम को देकर कहा – सर, अब सब कुछ आपके ही हाथ में है । 'दिलीप इंडस्ट्री' अब आपकी है । अब कृपा कर आपको बम्बई चलना है ।

– अवष्य, क्यों नहीं ! मैं ऐसे प्रेमी मामा की आज्ञा का उल्लंघन नहीं कर सकता ।

यह सुनते ही बेताल पांड़े खुषी से गद्‌गद हो गए । निष्चित हो गया कि अब उनका भाग्योदय षुरू हो गया । विक्रम के और साथी रोने लगे । तब विक्रम बोला – हे श्रेष्ठ नर मित्रो ! हृदय छोटा कभी मत करो ! सच बात यह है कि आज का मनुष्य अपनी श्रेष्ठता से अपने अन्तःकरण के गौरव से अनभिज्ञ हो गया है । धैर्य धारण करो । मैं तुम सबसे कहीं अलग थोड़े ही जा रहा हूं ! एक दिन आएगा जब तुम लोगों को यह मानना पड़ेगा कि देषसेवा में लगना कितने बड़े आनन्द और गौरव की बात है । तुम लोग चाहो तो मेरे संग बम्बई चल सकते हो, नहीं तो पांच–पांच सौ रूपये जनरल मैंनेजर से लो और अपने–अपने घर जाओ । वहां वीर पुरूष की जिन्दगी जियो । अन्याय, झूठ से लड़ो । लड़ाई सर्वत्र है । हमारे समाज में, जिन्दगी में ऐसी तमाम चीजें हैं, जिन्हें देखकर तुम सबका खून खौल जाना चाहिए। और उनके खिलाफ तुम्हें युद्धरत रहना चाहिए ।

यह कहकर विक्रम ने मैंनेजर को आज्ञा दी – इन्हें पांच–पांच सौ रूपये दिए जाएं, इनके पते नोट करो । बम्बई का पता इन्हें दो । ये जब भी वहां आना चाहें, इनका स्वागत है ।

बहुत मुष्किल से सारे मित्रों को इस तरह विदा किया गया । बैताल पांड़े ने मैंनेजर के कान में कहा – मेरा मित्र घायल है, इसका पहले किसी योग्य डॉक्टर से उपचार हो जाना चाहिए ।

काफी झंझटों से विक्रम की प्राथमिक चिकित्सा की गई और तब वे सब हवाई जहाज से बम्बई के लिए रवाना हो गए । उस दिन लखनऊ के षासकवर्ग, पुलिस अधिकारी बेहद प्रसन्न हुए और चैन की सांस ली ।

हरा समन्दर
गोपीचन्दर

बम्बई में दिलीप इंडस्ट्री वर्ली में बनी थी । बहुत ही षानदार इंडस्ट्री थी । दो मिलें थीं – एक सुपरफाइन कपड़ा मिल, दूसरी थी रंग और पेंट्स बनाने वाली । करीब सात सौ मजदूर थे । ढाई सौ अफसर, तीन सौ नीचे के स्टाफ । मेरिनड्रइव पर मामाजी की षानदार कोठी थी – वातानुकूलित । मतलब मामाजी कितने क्या थे, इसका यहां अंदाज लग सका ।

विक्रम ने सबसे पहले पूरी इंडस्ट्री के ढांचा, स्वरूप को समझने की कोषिष की । उसने पाया, पूरी इंडस्ट्री का स्वामी, मालिक केवल एक व्यक्ति है । हां, षेयर होल्डर्स की संख्या काफी है । फिर उसने देखा – पूरी पूंजी क्या है । बैंक में कितना जमा है, कितनी पूंजी मिल में लगी है । कितना मार्केट में है । मजदूरी की स्थिति क्या है । उनका वेतन, भत्ता, बोनस, उनके रहने की जगह, उनकी जीवन–स्थिति । और फिर नीचे से लेकर ऊपर तक के अफसरों की स्थिति क्या है । उनके वेतन, उनकी सुविधाएं । पूरी सच्चाई को वह समझ ही रहा था कि उसका ध्यान पर्सनल सक्रेटरी मिस सोनिया दंडवते की ओर अचानक खिंच गया ।

मिस सोनिया, अपने नये मालिक विक्रम कमरे में जाकर खड़ी रह गई । उन्हें देखकर विक्रम भी खड़ा हो गया । मिस सोनिया ने लाख मनाया, लाख समझाया पर विक्रम कहता रहा – ऐसा कभी हो नहीं सकता कि मैं इस तरह आप जैसी अपूर्वसुन्दरी, प्रियदर्षिनी का अपमान करूं । पहले आप बैठेंगी, तभी मेरे बैठने का षौभाग्य सफल होगा ।

मिस सोनिया जिस लाज और संकोच से उस दिन विक्रम के सामने बैठी, विक्रम उन्हें अपलक निहारता ही रह गया । वाह, क्या रंग था, षुद्ध कंचन जैसा । क्या षरीर और उसका गठन – क्या गजब की आंखें, गहरी, कटावदार – क्या ही अनुपम रूप, चमकता हुआ मुख, क्या ही दमक उस अपार सौन्दर्य में ! विक्रम के मन–मस्तिष्क में कालिदास की वे सारी पंक्तियां, वे सारी उपमाएं कौंधने लगीं, जिनसे उन्होंने नारी–सौन्दर्य को षब्दवद्ध करना चाहा है ।

विक्रम कुछ बोला नहीं । संयम कर गया । षाम को मिस सोनिया मेरिनड्रइव के निवास–स्थान पर आई । विक्रम से पूछने लगी – आपको यहां अभी और किन–किन चीजों की जरूरत है ? फर्नीचर, पर्दे, कार, यहां का स्टाफ, खाना–पानी–वगैरह सबके बारे में मुझे आपसे ओ0 के0 लेना है ।

बैताल पांड़े बोले – और तो सब ठीक है मेमसाहब, मुझे एक खटिया चाहिए, गद्देदार पंलग पर नींद नहीं आती ।

सब कुछ नोट करके मिस सोनिया जाने लगीं, तो विक्रम ने कहा – सुनिए, मामाजी आपको कैसे लगते थे ?

– वह बौत सीरियस आदमी था । हमारी तरफ कभी नजर उठाकर भी नेहीं देक्खा ।

– ओह, ताज्जुब है ।

मिस सोनिया जैसे अमृत घोलकर बोलीं– सर, आप सारा ईवनिंग इधर क्या करता ? आपको बम्बई क्या अच्छा नेहीं लगता ? चलिए न, हम आपकूं कहीं घुमा लाएं !

विक्रम को आनन्द आ गया । जाने लगे तो पीछे–पीछे बैताल पांड़े भी चले । विक्रम ने मना किया । पांड़े और ज्यादा जम गए । विक्रम ने हाथ जोड़ा तो पांड़ेजी उसे अलग ले जाकर बोले – खबरदार, कहीं इससे प्रेम न कर बैठना, हां !

रात के ढाई बजे तक सोनिया विक्रम को बम्बई की एक–से–एक खूबसूरत जगहों में घुमाती रहीं। विक्रम बार–बार यही कहता – इतनी भयानक गरीबी के बीच, इतने एषो–आराम ! इतने षोषण के बीच इतनी खूबसूरती ।

मिस सोनिया को यह समझते अब देर नहीं लगी कि यह आदमी कुछ विचित्र है । न इसे किसी चीज का मोह है, न किसीका डर । लगता है – सारी दुनिया इसके दिल में है, या सारी दुनिया के दिल में यह रहता है ।

वह आगे सर्तक हो गई । विक्रम का जो रूप इंडस्ट्री के दफ्तर में देखतीं, उससे उनकी हैरानी और बढ़ गई । एक दिन सारे मिल–मजदूरों के सामने कहा – एक ताकतवर है, दूसरे कमजोर है, ऐसा क्यों ? सोचने की बात है, दोनों को तब समान न्याय कैसे मिल सकता है ? इस सवाल का जवाब तुम्हीं लोगों को देना है । पूंजी और श्रम में संघर्ष क्यों है ? क्योंकि एक ताकतवर के हाथ में है, दूसरा कमजोरों के हाथ । पर जब तक पूंजी और श्रम दोनों में समानता, समन्वय, प्रेम नहीं होगा, तब तक आज की मनुष्यता दरिद्र बनी रहेगी ।

उस दिन मजदूरों की कैण्टीन में मजदूरों के साथ उस तरह चाय पीते हुए देखकर जनरल मैंनेजर से लेकर चपरासी तक सब घबड़ा गए । मिस सोनिया को तो 'हाइपरटेंषन' हो गया ।

दूसरे दिन मिस सोनिया दफ्तर नहीं आ सकीं । विक्रम खुद गया उनके निवास–स्थान पर । बांद्रा, समुद्रतट पर उनका फ्लैट था, पांचवीं मंजिल पर एक किनारे । उस तरह विक्रम को अपने फ्लैट में अचानक पाकर वह पसीने से तर हो गई ।

विक्रम के मुंह से सहज ही निकला :

प्रेम वह देवता है सुन्दरी, जो हमारी पीड़ा नहीं जानता
या निर्दयता उसकी प्रिय उपाधि है ।

मिस सोनिया चहक उठीं – ओ सर, हाऊ स्वीट, मगर मैं हिन्डी नेहीं जानती । क्या मतलब हैय, जो आपने कभी कहा ।

– आपके लिए मन में प्रेम पैदा हो गया है देवी !

मिस सोनिया के मुंह पर रक्त छलक आया । उनके होंठ कांपने लगे । आंखें भर आईं । अपने को सम्हालकर वह अंग्रेजी में बोलीं, जिसका आषय यह था – मैं इतनी सुन्दर हूं, इसलिए आपके मन में प्रेम पैदा हो गया है ? अक्सर लोगों ने कहा है, मेरा सौन्दर्य इतना अद्वितीय है कि लोग बरबस मुझे प्यार करने लगते हैं । बहुत कोषिष करके भी वे अपने को रोक नहीं पाते और मेरी ओर खिंच जाते हैं । चूँकि लोग मेरे सौन्दर्य के कारण मुझसे प्रेम करने लगते हैं, इसका मतलब यह तो नहीं कि मुझे भी उन्हें प्यार करना चाहिए । यह मैं मानती हूं कि जो सुन्दर है, वह प्यार के योग्य है, लेकिन मैं यह कैसे मानूं कि सुन्दर होने के कारण जिसे लोग प्यार करते हैं, उस सुन्दर वस्तु को भी क्यों विवष किया जाए कि वह भी प्यार करने वालों को महज इसलिए प्यार करे कि चूंकि उसे प्यार किया गया है ?

विक्रम ने सहज ही मिस सोनिया को अंक में लेकर कहा – प्रिये, सभी सौन्दर्य तो प्रेम नहीं उद्दीप्त करते !

– ओह डियर, जरा 'सिम्पिल' हिन्दी बोलो, हां .... ।

– मैं यही कह रहा हूं कि सभी सौन्दर्य प्रेम नहीं पैदा करते । कुछ केवल आंखों को षीतलता देते हैं, वे हृदय तक नहीं जाते ।

– आह, टुम कितने सुन्दर हो, अब तक मैंने टुमसा आदमी नेहीं देखा । 'आई लव यू' !

विक्रम ने कहा – इस संसार में सुन्दर वस्तुओं की कमी नहीं है, इसलिए यहां मनुष्य की आकांक्षाएं भी अनन्त हैं ।

– तुम्हारी 'लैंग्वेज' मैं नेहीं समझ पा रेही, 'बट' हमकू बौत अच्छा लग रहा है, और 'स्पीक' करो।

– प्रिये, तुम्हें यह सौन्दर्य, यह 'ब्यूटी' अपनी इच्छा से नहीं प्राप्त हुआ है, यह भगवान का वरदान है । और जो प्रेम तुम्हारे प्रति मुझमें पैदा हुआ है, वह भी भगवान की ही इच्छा है ।

– ओह डियर, टुम बौत 'कंट्राडिक्ट्री' (विरोधपूर्ण) बाट करता है !

– नहीं, मैं सही कहता हूं ।

– सुनो डियर, मैंने 'बुक्स' में पढ़ा हैय, सच्चा प्रेम एक ही में 'लिमिटेड' (सीमित) रहेता हैय !

– हां, मैं अपनी पत्नी को प्रेम करता हूं !

– हाय, और मुझे ?

– यह भी प्रेम है ।

– फिर कइसा प्रेम ?

– तुम पहले प्रेम करो, फिर इसका मर्म जानोगी । प्रेम बिना किए नहीं जाना जा सकता ।

– ओह हाऊ स्वीट ऑफ यू ! (ओह, तुम कितने प्यारे–मीठे हो !)

यह कहकर मिस सोनिया ने विक्रम के होठों को पूरी ताकत से चूम लिया । बड़े गर्व से बोलीं – बाई गाड डियर, यह मेरा 'फर्स्ट लव' (पहला प्रेम) है । मुझे सब प्यार करते थे, मैंने किसीकू नेहीं किया । ओनली, फर्स्टटाइम टुम से ! मुझे कभी छोड़ तो नेहीं दोगे ? टुम्हें तो एक सुन्दर 'गर्ल' मिल सकती है !

बड़ी देर तक सोनिया, विक्रम के अंक से लगी न जाने का क्या–क्या बोलती रहीं और उसके षरीर को बेहद कोमलता से स्पर्ष करती रहीं ।

कुछ ही दिनों के भीतर विक्रम ने अपनी इंडस्ट्री में कुछ अद्‌भुत काम किए । अपनी मिल से तैयार होने वाले सारे कपड़ों की असलियत क्या है, उनकी क्या–क्या खराबियां हैं, सबके इष्तिहार अखबारों में छपा दिए । मसलन :

अमुक कपड़े का रंग कच्चा है ।
अमुक सूटिंग का कपड़ा सिकुड़ जाता है ।
अमुक कपड़ा टेरलिन नहीं है । जुट के 'फाइबर' का है ।
अमुक किस्म का कपड़ा बिलकुल पहली धुलाई से चौपट हो जाता है । आदि–आदि ....

इसी तरह रंग और पेंट्स की सच्चाई के बारे में इष्तिहार :

अमुक रंग पक्का नहीं, कच्चा है ।

अमुक रंग उड़ जाने वाला है ।
अमुक रंग में बदबू है – स्वास्थ्य के लिए बिल्कुल हानिकारक ।
अमुक पेंट्स धब्बे पैदा करते हैं ।
अमुक पेंट्स आंसू की तरह बह जाने वाले हैं ।
अमुक रंग से कपड़े सत्यानाष हो जाते हैं ।
अमुक रंग से कपड़ों में हमेषा के लिए सिकुड़न पैदा हो जाती है आदि–आदि ....

इन इष्तिहारों से पूरी इंडस्ट्री में तहलका मच गया । एजेण्ट्स, प्रतिनिधि, सेल्स विभाग में घबराहट पैदा हो गई । सारे लोग डर गए । कम्पनी के षेयर भावों में गिरावट आने लगी ।

सारे षेयर होल्डर्स परेषान ।

पर बाजारों में इसका ठीक उल्टा हुआ । जिन–जिन कपड़ों और रंग–पेंट्स के खिलाफ जितनी ही बुराई इष्तिहार में निकली थी, उनकी मांग उतनी ही बढ़ गई । उनके दाम बाजारों में बढ़ गए । ब्लैक होने लगा । षेयर के भाव दुगुने । इंडस्ट्री में इतना लाभ होने लगा कि अफसर, अधिकारी, एजेण्ट्स, प्रतिनिधि और ब्रोकर सबके सब आष्चर्यचकित ।

पहले विक्रम को भी आष्चर्य हुआ, पर उसने सच्चाई का मर्म पकड़ लिया । उसने पर्चे छपाकर बताया – हम आज एक ऐसे भ्रष्ट समाज, पतित अर्थव्यवस्था में फंस गए हैं, जहां सत्य की कीमत झूठ है और झूठ की कीमत इतनी बढ़ गई है कि यह नहीं सूझता कि सच कैसे कहा जाए । अब लोगों को अच्छी, असली, पायेदार, ठोस, उम्दा, श्रेष्ठ चीजों की जैसे कोई जरूरत ही नहीं रही । मुझे पता है, मेरी इंडस्ट्री से तैयार वे सारी घटिया, झूठी, बेईमानी की चीजों की उसी व्यापारी वर्ग से अपने निजी स्वार्थों के लिए इतनी अर्थहीन मांग, तेजी पैदा की है जिनका मात्र लक्ष्य है – पैसा, धन । इसके लिए वे जनता में भ्रष्ट रूचियों को पैदा करके उन्हें ठगते हैं और उनमें अयथार्थ आवष्यकताओं को जन्म देकर उन्हें छोटा, निर्बल और कायर बनाते हैं । जितनी ही जिस समाज की रूचियां भ्रष्ट होंगी, उतना ही वह समाज गरीब, गुलाम और दुःखी रहेगा । जिस उद्योग–इंडस्ट्री का आधार इस तरह मानव–षोषण, छल, झूठ, कपट पर टिका है, उसका विरोध और 'बायकाट' होना चाहिए । देष में हर बनने वाली चीज, हर उत्पादन और सृजन मनुष्य के लिए है, इसलिए हरएक मनुष्य का फर्ज है, अधिकार है कि वह जाने, उसे पता हो कि हरएक चीज की असलियत क्या है ।

इसके बाद ही विक्रम ने आज्ञा दी कि हमारी इंडस्ट्री में वही चीज, उसी रूप और स्टैंडर्ड से बनेगी, जैसा कि हम उसके बारे में विज्ञापन करते हैं । कहने और होने में, चाहिए और है में यहां कोई अन्तर नहीं होगा ।

लंका में लगी आग

इसी बीच विक्रम ने एक बुनियादी फैसला कर दिया । उसने आज्ञा जारी कर दी :

दिलीप इंडस्ट्री में मालकियत का विसर्जन ।

इसकी पूंजी पर किसी भी एक व्यक्ति का स्वामित्व नहीं ।

सामूहिक स्वामित्व भी नहीं, मतलब यह पूंजी किसी भी प्रकार न बांटी जा सकती है, न व्यय की जा सकती है । इसका महज विनियोग ही किया जा सकता है, पूंजी के ही रूप में ।

सारी इंडस्ट्री के मजदूर, कार्यकर्ताओं के समुचित जीवन–वेतन ।

प्रबंध में सबका भाग ।

वेतन–भेद का परिसीमन ।

मुनाफे को नियमित रूप से पूंजी में बदलते रहना और उसकी मर्यादा का निर्धारण ।

बम्बई, महाराष्ट्र, पूरे देष और विदेष के समाचारपत्रों में विक्रम के विचार छपे और उद्योग–क्षेत्र में खलबली मच गई । संवाददाताओं से विक्रम घिर गया ।

अपने मेरिन ड्राइव के उस आलीषान बंगले को विक्रम ने दिलीप इंडस्ट्री के मजदूरों और कार्यकर्ताओं के लिए 'नर्सिंग होम' बना दिया और स्वयं इंडस्ट्री के ही भीतर बने गेस्ट हाउस में रहने लगा । इस पर बैताल पांड़े को बड़ा क्रोध आया । उन्होंने उस आलीषान बंगले के कमरे से बाहर निकलने के लिए मना कर दिया । पांड़े ने कहा कि वह उस नर्सिंग होम में ही रहेंगे । क्योंकि इस बीच, अत्यधिक खाने और दिन–रात वही पड़े–पड़े आराम करने से उनका स्वास्थ्य भी कुछ खराब हो गया था। विक्रम ने आज्ञा दी – पांड़े का मेडिकल चेकअप हो और उन्हें पूर्ण स्वस्थ किया

जाए ।

बैताल पांड़े को अलग–अलग विषेषज्ञ डॉक्टरों को दिखाया गया । हर विषेषज्ञ ने एक–एक बीमारी खोज निकाली पांड़े में – मतलब, पेट में 'अल्सर,' पूरे रक्त में 'ब्लडषुगर', पैरों में गठिया, हृदय में हृदय रोग, षरीर में 'हाइपरटेंषन', पूरे रक्त में 'हाईब्ल्ड प्रेषर', 'लिवर' खराब, किडनी घायल । पांड़े चिल्ला पड़े – बचाओ .... बताओ विक्रम मुझे । ये डॉक्टर नहीं, जमराज हैं । इनके चंगुल से मुझे मुक्त करो । हाय मेरी पंड़ाइन !

विक्रम ने बताया – मित्र, इन रोगों ने एकसाथ तुमपर इसलिए आक्रमण किया कि तुम कर्महीन, बेकार, अपाहिज की तरह यहां बैठकर अच्छे से अच्छा भोजन, वह भी अतिभोजन करते रहे ।

पांड़े ने स्वीकार किया – हे मित्र, यह सही है, मैं आराम से यहां अतिभोजन करता रहा, पर यह क्या कि हर डॉक्टर जो जिस रोग का विषेषज्ञ है, उसने वह रोग मुझमें ढूंढ़ लिया ।

– ऐसे ही होता है मित्र, हर विषेषज्ञ आज व्यवसायी हो गया है । उसका लक्ष्य है धन कमाना ।

– यह तो महा अन्याय है मित्र ।

– अन्याय कहां नहीं है ! मैं यही चाहता हूं, इस अन्याय के खिलाफ तुममें क्रोध पैदा हो ।

– पर क्रोध करने से और मानसिक व्याधियां नहीं पैदा होंगी ?

– क्रोध माने, उस अन्याय के खिलाफ कर्म करना ।

इस तरह बैताल पांड़े डॉक्टरों और बीमारियों से भयभीत होकर हर क्षण विक्रम के साथ रहने लगे। और उन्होंने घोषित किया कि बैताल पांड़े विक्रमादित्य के प्राइवेट सिक्रेटरी हैं, बिना उनकी इजाजत के कोई भी सीधे विक्रम से नहीं मिल सकता । न विक्रम ही सीधे किसीसे मिल सकता है । जो कुछ, जब विक्रम खाता, जब वह आराम करता, वही पांड़ेजी भी करते । इसका फल यह हुआ कि बैताल पांड़े की मोटाई कम होने लगी । अब अपने–आप स्वस्थ होने लगे ।

पर इस बीच एक अजब घटना घटी । एक दिन मिस सोनिया दंडवते विक्रम से मिलने उसके कमरे में जाने लगीं, तो पांड़े ने साफ मना कर दिया । विक्रम स्वयं जब मिस सोनिया से मिलने चला तो भी पांड़े ने उसे मना कर दिया । विक्रम ने पूछा – यह क्या करते हो पांड़े ?

पांड़े बोले – तुम मिस सोनिया से प्रेम करो, यह तुम्हारे लिए अत्यन्त लज्जा का विषय है । वह सोनिया तुमसे प्रेम करे, उसकी यह हिम्मत !

विक्रम ने समझाया – मित्र, प्रेम ही तो सार है इस जगत् का ।

पांड़े चिल्लाकर बोले – नहीं, इस जगत् का सार है ब्रह्मचर्य ।

विक्रम ने पांड़े को समझाना चाहा, पर पांड़े बिलकुल ही बिगड़ गए – विक्रम, तुम कुछ नहीं समझते । तुमने इतनी बड़ी इंडस्ट्री का सत्यानाष कर दिया । सारी पूंजी, कमाई, अधिकार दूसरों के हाथों में सौंप दिए । सोचो, बिना झूठ के षोषण के, रिष्वत के, मुनाफे के, निजी लाभ और जीवन–आनन्द के यह इंडस्ट्री किस काम की ? हमारे इस भाग्योदय का अर्थ ही क्या हुआ ?

विक्रम हंसा – मित्र, उसी आनन्द ने तो तुम्हारे भीतर रोग पैदा किए ।

पांड़े बिगड़कर बोले – तुम्हारे त्याग और आदर्षों ने क्या तुम्हारे भीतर रोग पैदा नहीं किया ? महारोग पैदा हो गया है तुममें ।

विक्रम हैरान हो गया – मुझमें कौन–सा रोग है पांड़े ?

– मिस सोनिया से प्रेम का रोग । मैं यह हर्गिज नहीं बर्दाष्त कर सकता ! तुम जैसा महापुरूष उस साधारण स्त्री के प्रेमपाष में बंध जाए .... ।

– मैं महापुरूष नहीं, सिर्फ एक साधारण मनुष्य हूं । बिल्कुल तुम्हारी तरह । जैसे तुम्हें भोजन की कमजोरी है न, समझो वैसे ही प्रेम मेरे लिए निर्बलता है । यही प्रेरणा है मेरे जीवन की ।

– तो मैं सुगनसुन्दरी को लिख दूं पत्र और साफ–साफ बता दूं यह प्रेमकथा ?

विक्रम मुस्कराकर बोला – प्रेमी को ही प्रेम–कथा लिखने का अधिकार होता है पांड़े । बेहतर होगा, तुम भी एक बार प्रेम करो !

– चुप रहो, मैं अपनी पंड़ाइन को वचन देकर आया हूं कि मैं कभी किसी पराई स्त्री से प्रेम नहीं करूंगा ।

– अगर कर लिया तो ?

– षाप है, मैं उसी क्षण अंधा और गूंगा हो जाऊंगा ।

तत्काल विक्रम ने फोन मिलाकर मिस सोनिया को बुलाया । सोनिया को देखते ही पांड़े ने अपनी आंखें बंद कर ली और जोर–जोर से ओउम् नमः षिवाय मंत्र जपने लगा ।

बैताल
और
गुलाब का फूल

इंडस्ट्री में, दफ्तर में, राह में, कमरे में जहां कहीं भी बैताल पांड़े के सामने कोई लड़की–स्त्री दिखती, वह तपाक से अपनी आंखें बंद कर लेते । कोई कुछ कहता तो मुंह फेरकर कान में उंगली डाल लेते और ओउम् षिव, ओउम् षिव के मंत्र जपने लगते ।

इस तरह सारी इंडस्ट्री में बैताल पांड़े मजाक के विषय बन गए । एक दिन ऐसा हुआ कि पांड़ेजी षाम को जैसे ही उस गेस्टरूम में आए, अपने पलंग पर एक गुलाब का फूल देखकर चौंक गए । उन्हें लगा, वह फूल वषीकरण मंत्र से फूंका हुआ है । उसे छुआ नहीं कि वह प्रेमजाल में फंस जाएंगे । उन्होंने तुरन्त दरबान को बुलाया और उस फूल को फेंक देने की आज्ञा दी । दरवान का नाम था प्रेमसागर । वह फैजाबाद जिले का था । उससे पांड़ेजी की अक्सर बातचीत हुआ करती थी । उसने बताया :

– पांड़ेजी, मैंने देखा है, एक स्त्री कुछ देर पहले इधर आई थी । उसीने यह किया होगा ।

– पर उसने ऐसी असभ्यता क्यों की ?

– वह आपसे प्रेम करती होगी !

– यह सरासर अधर्म है । उसे मालूम होना चाहिए, मैं ब्रह्मचारी हूं !

दरवान ने कहा – पंडितजी, बम्बई में प्रेम करना सभ्यता का लक्षण है ।

– अरे, इससे बदनामी नहीं होती ?

– सब करते हैं यहां, और गांव की तरह यहां किसको इतनी फुर्सत है िकवह दूसरों को देखे, फिर उसकी बात भी करे ।

– ना भाई ना, मैं इस चक्कर में कतई नहीं पड़ने का । तुम इस फूल को यहां से उठाकर कहीं दूर फेंक आओ ।

– मैं ऐसा हर्गिज नहीं कर सकता । यह अधर्म है ।

– अच्छा ऐसा करो, इस फूल को छूकर देखो तो भला !

छरवान ने फूल उठाकर फिर वहीं रख दिया ।

पांड़े ने पूछा – तुम पर कोई प्रभाव पड़ा ?

– नही तो, बिल्कुल नहीं !

दरवान चला गया । पांड़ेजी ने स्नान–ध्यान करके अपने पूरे ब्रह्मचर्य और चरित्र बल से उस फूल को छुआ, तत्काल उन्हें लगा, कहीं से किसी स्त्री की हंसी आ रही है । काफी समय हुआ, पांड़ेजी ने भूत–प्रेत से अपना विष्वास उठा लिया था । सो उन्हें लगा – जरूर कमरे में कहीं कोई स्त्री छिपी है। उन्होंने आवेष में डांटा – अगर हिम्मत हो तो सामने आ । उस अदृष्य स्त्री–कंठ से सहसा एक गीत फूट पड़ा :

रे निरमोही प्रेम न जाने ।
दिन नहिं चैन, रात नहिं निंदिया
तड़पत बीते सारी उमरिया
विधना का यह खेल
रे निरमोही प्रेम न जाने ।

पांड़ेजी की आंखों से आंसू झरने लगे । उनका सिर चकराने लगा । वह बेहोष होकर वहीं पलंग पर गिर पड़े ।

करीब रात के दस बजे विक्रम मिस सोनिया के साथ गेस्ट हाउस में आया । वह बोल–बोलकर मिस सोनिया से दो भाषण लिखवाने लगा – एक 'चैम्बर आफ कामर्ष' में पढ़ने के लिए, दूसरा 'ट्रेड एंड इंडस्ट्रीज एसोसियेषन' के लिए ।

सहसा बगल के कमरे से बैताल पांड़े की रूलाई सुनाई पड़ी । दोनों उस कमरे में दौड़े और वह दृष्य देखकर दंग रह गए । बैताल पांड़े गुलाब का वही फूल दायें हाथ में थामे उसे अपलक निहार रहे हैं और फूट–फूटकर रो रहे हैं ।

विक्रम ने स्नेह से पूछा – क्या हुआ पांड़े ?

सोनिया बोली – डॉक्टर बुलाया जाए ।

सहसा पांड़ेजी तड़पे – चुप रहो ! निकल जाओ यहां से ! हाय, किसीने मुझे प्रेम–जाल में फंसा लिया ।

पांड़े ने भीतर से अपना कमरा बंद कर लिया ।

सोनिया घबराकर बोलीं – कुछ 'मेण्टल' केस लगटा है ।

– नहीं ! मुझे पता है, मेरे मित्र को क्या हुआ है ।

– डियर मुझे बताओ, क्या हुआ हैय ?

विक्रम प्यार से बोला – देखो प्रिये । तुमको मैं इतने दिनों से हिंदी पढ़ा रहा हूं, तुम जान–बूझकर हिन्दी का उच्चारण गलत करती हो ! बोलो – लगटा नहीं, लगता !

– लगता ।

– लग्गता नहीं, ल ग ता !

– लगता ।

दोनों मुस्करा पड़े ।

– हैय नहीं, है !

– है !

– वेरी गुड ।

सेनिया ने विक्रम का हाथ पकड़कर पूछा – टुम कितने अच्छे प्रेमी हो !

– टुम नहीं, तुम ।

– ओ सारी, तुम कितने अच्छे प्रेमी हो !

– प्रेमी नहीं, प्रेमी पुरूष ।

– अच्छा, प्रेमी पुरूष !.... अच्छा सुनो डियर, तुम हमसे प्रेम की 'टाक' क्यों नेहीं करते ?

– टाक नहीं, बात । नेहीं नहीं, नहीं ।

– अच्छा, बात नहीं करते ?

विक्रम ने अत्यन्त स्नेह से कहा – प्रेम ऐसी कोई चीज नहीं है, जिसकी बात की जाए । यह फिल्मी संस्कृति का बुरा असर है कि लोग प्रेम की बातें करते हैं । प्रेम एक अनुभूति है ।

– कैसी अनुभूति ?

– जो प्रेमी–प्रेमिका दोनों मिलकर किसी बड़े काम के भीतर से गुजरते हुए प्राप्त करते हैं ।

– वह बड़ा काम क्या होता है ?

– मानव–कल्याण के लिए, उसकी मुक्ति के लिए, उसके विकास के लिए कोई किया जाने वाला काम, संघर्ष, लड़ाई, त्याग, बलिदान ।

– ओह डियर, जब तुम बोलते हो न, तो मेरे भीतर कुछ कांपने लगता है !.... देखो, इस बार मेरा हिन्दी उच्चारण ठीक है न ?

– बिलकुल । और अब तुम मेरे साथ होती हो न, तब मेरा मन बिल्कुल चुप–मौन हो जाने को कहता है.... मातृभाषा का प्रभाव है सुन्दरी ।

यह कहते हुए विक्रम ने सोनिया को अपने आलिंगन में कस लिया । दोनों मंत्रमुग्ध, चुप हो गए थे । बगल के कमरे से बैताल पांड़े का रूदन सुनाई दे रहा था ।

सोनिया ने विक्रम का माथा चूमते हुए कहा – ओह डियर, मेरे हृदय का षल्य दूर हुआ.... ।

विक्रम मुदित होकर बोला – प्रिये, तुमने इस समय षल्य का बिल्कुल सही प्रयोग किया है ।

– सब तुम्हारा ही दान है विक्रम ।

– नहीं प्रिये, सब कुछ तुम्हारे भीतर है, जिसे तुम देख रही हो !

– मुझे हरदम डर लगा रहता है, तुम एक दिन मुझे छोड़कर चले जाओगे, और तब मैं तुम्हारे बिना पागल हो जाऊंगी ।

– मैं कभी किसीको नहीं छोड़ता प्रिये, बस अपने पथ पर चलता रहता हूं , लोग खुद मेरा साथ छोड़कर चले जाते हैं ।

– मैं तुम्हें कभी नहीं छोडूंगी ।

– विक्रम ने सोनिया के दोनों हाथों को अपने दोनों हाथों में लेकर ऊपर आसमान में उठाकर कहा – ईष्वर तुम्हें इतनी षक्ति दे ।

सोनिया के चले जाने के बाद, विक्रम ने पांड़े को आवाज दी । पांड़ेजी बेहाल सामने खड़े हो गए। बड़ी देर बाद सिसकते हुए बोले – हे मित्र, बचाओ, मैं किसीके प्रेमजाल में फंस गया हूं । किसीने मुझे वषीकरण मंत्र मार दिया ।

– वह कौन है मित्र ?

– पता नहीं । न कभी देखा है, न सुना है । बस, यही फूल है उसका रूप । अगर वह मुझे नहीं मिली, तो मैं पागल हो जाऊंगा ।

– एकाध बार जीवन में पागल हो जाना जरूरी है ।

– कहीं ऐसा न हो, तुम्हारी ही तरह हो जाऊं मित्र !

– क्या मैं बिल्कुल पागल हूं पांड़े ?

– यह भी कोई कहने की बात है ! लेकिन हां, अंतर है । तुम महापुरूष हो, तुम्हारे पागलपन को कोई पागलपन नहीं कहेगा । लोग उसमें महान अर्थ ढूंढ़ेगे । पर मैं तो ठहरा साधारण मनुष्य, पंड़ाइन मुझे मार–मारकर भूसा बना देंगी, अगर मैं अंधा और गूंगा हुआ ।

– अच्छा, अगर नहीं हुए तो ?

– मजाक मत करो बंधु, षाप को कौन मेट सकता है ?

– वही फूलवाली ।

रात–भर विक्रम अपने मित्र को तरह–तरह से समझाता रहा ; धैर्य दिलाता रहा, हिम्मत बंधाता रहा ।

सुबह विक्रम पूरे दिन के लिए बाहर चला गया । पहले उसे दोपहर में 'चेम्बर आफ कामर्स' में बोलना था और ष्याम चार बजे 'ट्रेड एंड इंडस्ट्रीज एसोसियेषन' में ।

इधर बैताल पांड़े उसी प्रेमसागर दरवान को अपने साथ लिए हुए पैदल सड़कों पर घूमने लगे । दायें हाथ में वही गुलाब का फूल लिए । आसपास से गुजरती हुई, हर स्त्री की ओर अजब नयनों से निहारने लगते ।

प्रेमसागर ने समझाया – पांड़ेजी, ऐसे मत देखिए जनाना लोगों को, चप्पल–जूतियां, मार, गाली कुछ भी कर सकती हैं ये छोकरियां, मेहरारू लोग ।

– तो बात मैं क्या करूं ?

– यह बताइए, गाने और हंसी की आवाज आपके कमरे में से ही आई थी ?

– हां, भाई, बिल्कुल !

– फिर तो मैं समझ गया ।

– क्या ? मुझे बताओ । हे भाई !

– चुपचाप चले आइए मेरे साथ ।

दोनों टैक्सी पर बैठ गए । अंधेरी गए । सोफिया की मां ने बताया – सोफिया होटल आषियाना में नाचने–गाने गई है । टैक्सी भागी होटल आषियाना .... मतलब जुहू .... समुद्रतट की ओर ।

– पांड़ेजी को डर लगने लगा – हे भाई, कहां लिए जा रहे हो ? कुछ मुझे भी तो बताओ ।

– बस, चुपचाप चले चलिए, फिर सारी बात बता दूंगा ।

– होटल आषियाना की जमीन के नीचे वह रेस्ट्रां था – नाम था 'ओइ–ओइ' । लंच के लिए हाल में लोग बैठे थे । अंधेरा था । धीरे–धीरे संगीत चल रहा था । पांड़े को सारा दृष्य और वातावरण बैताल पचौसी जैसा लग रहा था । वह सोच रहे थे – यह सब कैसा हड़बोंग है । वहां का पानी पीना भी उनके लिए कचाहिन था । बस, वह टुकुर–टुकुर उस अंधेरे में लोगों के चेहरे देख रहे थे और दीवारों पर बनी मूतियों, तस्वीरों को कनअखी से लख लेते थे । प्रेमसागर मजे से खटकिल्ल कर रहा था – खाय रहा था और डटकर पी रहा था । पांड़े को उतना ही गुस्सा आ रहा था ।

एकाएक एक तरफ तेज प्रकाष चमका । कुछ साजिन्दे, अजीबोगरीब वाद्य–यंत्रों के साथ दिखे । बंदरों जैसी सूरत, जैसे किसीने उनकी हुरमत उतार रखी हो । बिल्कुल बेहूदा संगीत षुरू हुआ ।

प्रेमसागर ने प्रसन्नता से कहा – बस, अभी वह फूल वाली जाने वाली है ।

– सच ? यहां ?

– देखते रहिए !

पांड़े का मन बांसों ऊपर उछलने लगा । उनके दिल में कुछ खटकिल्ल करने लगा । तभी वह सोफिया एकाएक चमककर फर्ष के उस गोलाकार में खड़ी हो गई । प्रेमसागर ने चिंगोटी काटते हुए कहा – यही है, यही है वह फूलवाली ।

पांड़ेजी फूल को मसलते हुए बोले – चुप रह ! यह बेषर्म औरत, इसके बदन पर तो जैसे कपड़ा ही नहीं है – बेमतलब मटक रही है ।

– अरे पांड़ेजी, यह 'कैब्रे' गर्ल है । नाचने के बाद यह गाएगी – फिर पहचान में आएगी, हां ।

जब तक वह नाचती रही, पांड़ेजी दूसरी तरफ देखते रहे, पर जैसे ही उसने गाना षुरू किया, पांड़ेजी सचमुच गरम–गरम सांसें लेगे ल और उनके तन–बदन, मन–प्राणों में जैसे हड़बोंग मच गया । थोड़ी ही देर बाद पांड़े का वहां बैठा रह पाना मुष्किल हो गया ।

प्रेमसागर पांड़े को संग लिए हुए वहां ले भागा ।

रास्ते में वह बोला – अब सुनो पांड़ेजी महराज, उस फूलवाली लड़की की सारी दास्तान ।

पांड़ेजी चिहुंक पड़े – चुप रह, पहले उस फूलवाली से मेरी मुलाकात करा, फोरन से पेष्तर, वरना मैं जीवित नहीं रह सकता ।

– यह क्या पांड़ेजी, आप उससे सचमुच प्रेम करते हैं ?

– यही तो सारा कष्ट है रे ।

– पर वह तो प्रेम करने वाली लड़की नहीं । वह तो प्रोफेषनल है ।

– चुप रह मूर्ख ! मैं तो प्रेम करता हूं । तू क्या जाने प्रेम का रहस्य !

ममला सचमुच गंभीर था । प्रेमसागर ने सोचा, मालिक भी नहीं है, किससे राय–बात लूं । पांड़ेजी की हालत दरअसल खराब थी । उन्होंने प्रेमसागर को डपटकर उस फूल वाली को टेलीफोन करा दिया।

रात के आठ बजे सोफिया धड़धड़ाती हुई आ गई । पांड़ेजी नहाधोकर, उत्तम वस्त्र पहने, हाथों में गुलाब के फूल भरे कमरे में आंख मूंदे खड़े थे ।

सहसा उन्हें वही हंसी सुनाई दी । वह थर–थर कांपने लगे ।

प्रेमसागर बोला – पांड़ेजी, आंख खोलिए ।

– खोल दूं ? कहीं अंधा तो नहीं हो जाऊंगा ।

– कैसी बहकी–बहकी बातें करते हैं । हिम्मत से काम लीजिए ।

पांड़े ने आंखें खोल दीं । लगा, सारी पृथ्वी कुम्हार के चाक की तरह घूम रही है। उन्होंने अपने हाथ के सारे फूल उस लड़की की ओर बढ़ाते हुए कहा – देवी, स्वीकार करो मेरा प्रेम ।

सोफिया ने पांड़ेजी के फूल–भरे हाथों को पकड़ लिया । और पांड़ेजी बेहोष होकर वहीं फर्ष पर लेट गए ।

जब उन्हें होष हुआ, तब उनके सामने वही प्रेमसागर बैठा मिला । पांड़े ने देखा, न वह अंधे हुए हैं न गूंगे । वह बिलकुल सही–सलामत हैं ।

– तो वह षाप झूठा था ?

– कैसा षाप महाराज ?

पांड़ेजी खिलखिलाकर हंस पड़े ।

प्रेमसागर बोला – मालिक, भगवान आपका भला करे । आपने ऐसा क्यों किया ? वह फूल वाली चली गई ।

पांड़े बोले – सुनो, सच–सच बताओ, वह जादू–टोना जानती है न ?

– जादू–टोना तो उसकी नजरों में है । मैंने देखा, वह सचमुच आपको प्रेम करती है ।

पांड़ेजी आह भरकर बोले :

सचमुच प्रेम देवता है
वह प्रेम अपनी ही षक्ति से प्राप्त होता है
और उस प्रेम देवता को अन्यायी षाप देने वालों के
रूप में कल्पना करना
निष्चय ही अपराध है
हे प्रेमसागर,
अब तुम उस फूलवाली की दास्तान कहो ।

फूल वाली की दास्तान

प्रेमसागर कहने लगा – स्वर्गवासी मालिक ने ऐसी कई फूलवाली लड़कियों को अपने यहां रख छोड़ा था । स्वयं तो बालब्रह्मचारी थे । पर उनका हुक्म था कि इस गेस्ट हाउस में जो भी मेहमान आकर टिकें, उनके मनोरंजन के लिए ये फूलवालियां यहां रात को आकर नाचें–गाएं और मेहमानों को अपने प्रेम से संतुष्ट कर दें । मालिक कहते थे – 'बिजनेस' के लिए यह आवष्यक ही नहीं, यह उसी 'बिजनेस' का एक हिस्सा है ।

पांड़ेजी चिल्लाए – आह, यह अधर्म है ।

– पर यह 'बिजनेस' का एक धर्म है ।

– चुप रह, आगे और बोला तो जवान खींच लूंगा ।

डर के मारे प्रेमसागर भाग गया । पांड़ेजी मारे गुस्से के कमरे में चक्कर लगाते रहे । काफी रात गए, विक्रम लौटा । पांड़ेजी ने उसे सारी बात बताई । और अंत में गरजकर बोले – तुम सच कहते हो मित्र, यह सारी पूंजीवादी व्यवस्था अधर्म, अन्याय, झूठ, घूस, बेईमानी और षोषण पर खड़ी है यहां प्रेम, सौन्दर्य, नारीत्व सब कुछ उस व्यापार के ही लिए है । धिक्कार है ऐसी अधर्म–असुन्दर व्यवस्था पर ।

विक्रम ने मुस्कराते हुए कहा – अच्छा पांड़ेजी, इससे यह तो सिद्ध हो गया कि तुम प्रेम कर सकते हो । इसपर कोई षाप–वाप नहीं, क्यों ?

पांड़ेजी लम्बी सांस लेकर बोले – आह ! कितनी बड़ी कीमत चुकानी पड़ी इस ज्ञान के लिए ! .... लेकिन मित्र, सावधान, कहीं वह तुम्हारी प्रेमिका सोनिया दंडवते तो यही नहीं कर रही !

13

उस दिन 'चेम्बर आफ कामर्स' और 'ट्रेड एण्ड इंडस्ट्रीज एसोसियेषन' में विक्रम के दोनों भषाणों ने पूरे उद्योग–जगत् में अषान्ति पैदा कर दी ।

बम्बई के उद्योगपतियों और अधिकारियों की गुप्त बैठकें होने लगी । कुछ लोगों का मत था – विक्रम पागल है, सरकार पर दबाव डालकर इसे पागलखाने में डाल दिया जाए । कुछ लोगों का विचार था – इसकी हत्या करा दी जाए । वरना यहां उद्योग का भट्टा बैठ जाएगा ।

बात भी बड़ी गम्भीर थी ।

दिलीप इंडस्ट्रीज की उस नई व्यवस्था का असर बम्बई की सारी मिलों और उद्योगों पर पड़ना षुरू हो गया था । मिल मजदूर यूनियनों, उद्योग यूनियनों के लोग उसी नयी व्यवस्था और अधिकार की मांग करने लगे ।

इस प्रष्न को लेकर मिलों और उद्योगों में हड़तालें होनी षुरू हुईं । 'स्ट्राइक', प्रदर्षन, घेराव के अलावा मजदूर यूनियनों के लोग दिलीप इंडस्ट्रीज के उदाहरण को लेकर बड़ी–बड़ी 'रैलियां' करने लगे।

वामपंथी नेता लोग, उनके समाचार–पत्र, विक्रम को 'एडवेंचरिस्ट' कहकर उसके खिलाफ लिखते, पूंजीवादी व्यवस्था के लोग और उनके समाचारपत्र उसे 'ब्लाइंड एनार्किस्ट' मतलब अंधा विप्लववादी सिद्ध करके उसे सरकार और व्यवस्था, षांति और अमन का षत्रु बताने लगे । हुकूमत, उसके पक्षधर और उनके सारे अखबार उसे सी0 आई0 ए0 का एजेण्ट कहने लगे ।

इस बीच उसे अमेरिका, इंगलैण्ड, रूस और फ्रांस से कई निमंत्रण मिले विदेष–यात्राओं के लिए, पर उसने यह कहकर मना कर दिया कि उसे उन देषों में जाकर क्या करना है । भारत एक अत्यन्त गरीब, पिछड़ा मुल्क है जिसका सदियों से मात्र षोषण होता रहा है । सैंकड़ों वर्षों की गुलामी ने, अब स्वतंत्रता के बाद की व्यवस्था ने इसकी आत्मा को भी कुचल डाला है । उसने इसी बीच देष–विदेष के कई पत्रकारों से स्पष्ट षब्दों में कहा – अपनी इस वर्तमान व्यवस्था और योजनाओं से स्वतंत्र भारत सर्वथा एक नये ढंग से, फिर से गुलाम हुआ है । अगर भारत को सच्ची आजादी प्राप्त

करनी है तो लोगों को षहरों में नहीं, गांवों में ही रहना होगा । महलों में नहीं, झोंपड़ियों में रहना होगा । करोड़ों लोग ष्षहरों में, या महलों में कभी भी एक–दूसरे के साथ षांतिपूर्वक नहीं रह सकते । आज की वर्तमान परिस्थिति में मनुष्य के पास सिवा इसके कोई और चारा नहीं कि वह हिंसा, असत्य दोनों का सहारा ले । इसका नतीजा यह है कि वर्तमान षहरी समाज केवल भोग को 'कज्यूम' करने का समाज बनता चला जा रहा है : उसमें निर्माण की, रचना की, कर्म करने की षक्ति और क्षमता मरती चली जा रही है !

एक मोटा कपड़ा
एक मोटी रोटी

विक्रम ने फैसला किया कि अब दिलीप इंडस्ट्री में 'फाइन और सुपरफाइन' कपड़े नहीं बनेंगे । इसमें अब केवल मोटे कपड़े तैयार होंगे, जो आज एक आम भारतवासी की जरूरत है ।

अखिल बम्बई मजदूर दिवस के अवसर पर मजदूरों ने विक्रम से बोलने का आग्रह किया । इसपर सारी विरोधी पार्टियों के नेता अत्यन्त क्षुब्ध हुए । क्योंकि चौथा आम चुनाव अब आने को था, जिसमें पहली बार सभी राज्यों में विधानसभाओं और लोकसभा के महाचुनाव एकसाथ होने को थे ।

पता नहीं क्यों, सत्ताधारी और विरोधी सभी दल विक्रम से भयभीत थे । उसकी उल्टी खोपड़ी से पता नहीं क्या बात पैदा होकर मजदूरों और फिर जनता में फैल जाए ।

एक मोटा कपड़ा
एक मोटी रोटी
और एक झोंपड़ी ।

इस बात ने आम जनता को पहले ही आकृष्ट कर लिया था । विक्रम के लिखे एक पैम्फलेट को लोग बड़े गौर से पढ़ रहे थे और उसपर विचार–विनिमय कर रहे थे, जिसमें उसने भारत की जनसंख्या, प्रति व्यक्ति की औसत आमदनी और पूंजी–कमाई के आधार पर पूरा का पूरा हिसाब लगाकर दिखाया था कि भारत में आजादी और न्यायपूर्ण समानता के लिए प्रत्येक व्यक्ति और परिवार को :

एक मोटा कपड़ा
एक मोटी रोटी

और एक झोंपड़ी से ज्यादा फिलहाल और कुछ नहीं मिल सकता । जो लोग एक से अधिक कपड़े पहन रहे हैं, एक से अधिक व्यजंन–भोजन खा रहे हैं, महलों में रह रहे हैं वह पांच प्रतिषत वर्ग और समाज षेष पचानवें प्रतिषत वर्ग और समाज के षोषण, लूट, अत्याचार, डाकेजनी और व्यभिचार पर जी रहे हैं ।

विक्रम ने मजदूरों और जनता की उस विषाल सभा में कहा – उन्नीस सौ पचास से भारत के लोगों को यह सिखाने और बताने की कोषिष की जा रही है कि उन्हें वोट देने के अधिकार और दूसरे बुनियादी अधिकारों पर गर्व होना चाहिए । लेकिन अब तक सच्चाई यह है कि इन दोनों अधिकारों से देष की आम जनता को कोई लाभ नहीं मिला । वोट देने के अधिकार का असली मतलब तो तब हल होता, जब लोग उसके इस्तेमाल से अपने जीवन और समाज में परिवर्तन ला सकते : सरकार बदल सकते ; मतलब, अपने जीवन की दषा बदल सकते । गरीबी, अज्ञान, असुरक्षा, बेरोजगारी से छुटकारा पाकर आत्मनिर्भरता, ज्ञान, सामाजिक–आर्थिक सुरक्षा, न्याय और सार्थक काम–धंधा और रोजगार की राह पर चल पाते । देष की अपार सम्पत्ति के अन्यायपूर्ण बंटवारे को मिटाकर न्यायपूर्ण ढंग से उसका बंटवारा कर सकते और बेईमानी, अनुषासन–हीनता, अराजकता, जड़ता के चंगुल से निकालकर एक ऐसी सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक व्यवस्था प्राप्त कर सकते जो आधुनिक, अनुषासनपूर्ण और वैज्ञानिक आधारों पर बनती तथा विवेक, इंसानियत के असूलों से जिसका संचालन होता ....

अचानक दाईं ओर षोर होने लगा । कोई हत्यारा विक्रम पर पिस्तौल दागने चला था, बैताल पांड़े ने उसे धर दबोचा था । पुलिस आई और उसे लेकर चली गई । पर मजदूरों में इसपर बड़ी अषांति पैदा हुई । सारा मैदान पूंजीवादी गुंडाषाही, हिंसा और बर्बरता के खिलाफ नारों से गूंज उठा ।

बैताल का कमाल

जिस पुलिस इंस्पेक्टर ने उस हत्यारे के 'केस' को अपने हाथों में लिया था, उसका नाम था विजय जोषी । बिल्कुल चौबीस–पचीस वर्षों का हट्ठा–कट्ठा नौजवान, निहायत हिम्मती, दिलेर और ऊंचे दर्जे का बहादुर, ईमानदार आदमी । 'केस' लेते ही उसपर दोनों तरफ से दबाव आने षुरू हुए । गनेषपोली इंडस्ट्री के मालिक मनोहर भाई का आदमी आया पांच हजार रूपये घूस लेकर । विजय ने उसे गिरफ्तार कर लिया । तुकाराम कुलकर्नी जैसे नेता का आदमी आया सरकारी आतंक लेकर । पर विजय निर्भर होकर हत्या का षडयंत्र रचने वालों के पूरे गिरोह का पता लगा रहा था ।

बैताल पांड़े पूरे उत्साह के साथ विजय का साथ दे रहे थे । हत्यारा जेल में था और विजय बैताल पांड़े के साथ षड्यंत्रकारियों के पूरे गिरोह और उनके संरक्षकों का पता लगा रहा था ।

एक दिन वही फूलवाली सोफिया बैताल पांड़े से मिली और बोली – जिसे तुम लोग ढूंढ रहे हो, आओ वहां ले चलूं । कहीं मेरा नाम मत ले लेना ।

विजय को साथ लिए हुए बैताल पांड़े उसी आषियाना होटल के नीचे भूगर्भ में बने हुए 'ओइ ओइ' रेस्तरों में पहुंचे । सोफिया का उस दिन विषेष कैबरे नृत्य था । वह सबको अपने हाथों से षराब पिला रही थी और ग्राहकों की गोद में बैठ रही थी । नाचते–नाचते बैताल पांड़े की गोद में बैठकर बोली – इसी होटल का मालिक उन हत्यारों का एजेंट है .... ऊपर तीसरी मंजिल पर कमरा नम्बर तीन सौ पांच में दफ्तर लगाकर बैठा है ।

पांड़ेजी विजय को लेकर उस कमरे में गए । मालिक षराब पी रहा था और वहां सजी–सजाई कई अधे नग्न लड़कियां खड़ी थीं । आसपास पांच–छः गुंडे, हत्यारे उम्दा कपड़े पहने मालिक की आज्ञा में तैनात, तैयार थे ।

मालिक और गुंडों को उन्हें पहचानने में देर नहीं लगी । मालिक उनसे सौदा करने लगा । पांड़ेजी उसे बेमतलब ही समझाने लगे – हे भाई, तुम लोग ऐसा क्यों करते हो ?

अचानक मालिक से इषारा पाते ही वे हत्यारे दोनों पर झपट पड़े । अचानक मारपीट होने लगी। और वहां बैताल पांड़े ने कमाल कर दिया । एक–एक गुंडे का हाथ तोड़कर वहीं बैठा दिया । वह मालिक का गट्टा पकड़कर होटल से बाहर खींच लाए । विजय ने पुलिस कंट्रोल रूम को फोन किया, पुलिस जीप आई और मालिक को पकड़ ले गई ।

पर अगले ही दिन एक अजीब घटना घटी । सुबह ही सुबह विजय बैताल पांड़े के पास भागा हुआ आया । उसकी हालत पांड़ेजी के षब्दों में हड़बंग थी । उसने बताया – उस लड़की को जिससे अगले महीने मेरी षादी है, उन्हीं हत्यारों के गिरोह ने 'किडनैप' (उठा ले जाना) कर लिया है । पढ़ो यह कागज, उन हत्यारों ने क्या लिगा है ।

कागज पर खून से लिखा था :

'या तो हमारे साथी के केस से अपना हाथ हटा लो, और आकर यहां अपनी प्रेमिका को साबुत जिन्दा ले जाओ, वरना चौबीस घंटे के बाद हम इसकी हत्या कर देंगे ।' नीचे उस जगह का पता दिया हुआ था । और यह सावधान किया गया था कि 'अगर तुमने किसी तरह से भी अपनी पुलिस की ताकत का सहारा लिया तो इस लड़की की सिर्फ यहां तुम्हें लाष ही मिलेगी !'

विजय ने गंभीर स्वर में कहा – मुझे न अपनी जान की परवाह है, न नौकरी की, मुझे सिर्फ एक ही चिन्ता है कि ऐसे हत्यारों से बिना किसी समझौते के उस लड़की को जिन्दा पा सकूं ।

बम्बई के पास वह एक पहाड़ी जगह थी, जंगल के बीच । रास्ते में पांड़े ने विजय को सारी योजना बता दी ।

उस जगह के पास पहुंचकर विजय को धीरे से एक पेड़ पर चढ़ा दिया । स्वयं पांड़ेजी षिव का रूप बनाकर एक बैल की पीठ पर सवार बाकायदा डमरू बजाते हुए उधर से गुजरे ।

हत्यारों के गिरोह में से एक ने पूछा – अबे, कौन है ?

षिवजी मस्तमौला, नषे में चूर डमरू पर बम–बम बजाते हुए चले जा रहे थे । हत्यारों को मजाक सूझा – अबे, क्या सबूत है कि तू षिव है ? कोई सबूत दे, वरना यहीं तेरी खाल खींच लेंगे ।

षिवजी सबूत देने के लिए तैयार हो गए – कलयुग में षिव को क्या, ब्रह्मा–विष्णु को भी सबूत दिखाकर ही आगे जाना होगा ।

तो षिवजी डमरू बजाते हुए बोले – देखो, तुम लोग अलग–अलग एक–एक पेड़ के पीछे आंख मूंदकर छिप जाओ । तुम सबको मैं एक–एक सुन्दरी दे दूंगा । ध्यार रहे – एक आवाज के साथ सुन्दरी प्रकट होगी – तैयार ! चलो आंख बांधकर छिप जाओ । अगर किसीने छिपकर या आंख चुराकर देखने की कोषिष की, तो उसकी सुन्दरी असुन्दरी हो सकती है ।

कुल सात आदमी थे – सातों एक–एक पेड़ के पीछे छिप गए । एक–एक कर पेड़ों के पीछे पांच आवाजें हुईं। फिर छठा हत्यारा चीखा – खबरदार !

दोनों उस लड़की की तरफ भागे, जहां वह एक पेड़ से बांधी हुई थी ।

षिवजी ने बैल से कूदकर सातवें को धर दबाया और छठे को विजय ने धर लिया ।

– बोलो, अब मिल गया सबूत ? या अपने दोस्तों की ताजी लाषें को देखकर सबूत लोगे ?

क्या विक्रम को नींद नहीं आती

एक दिन मिस सोनिया ने बैताल पांड़े से पूछा – बता सकते हो, यह विक्रम कब सोता है ?

– क्यों, ऐसा क्यों पूछ रही हो ?

बैताल पांड़े घबड़ा गए । यह सुन्दरी मिस सोनिया विक्रम को पहले अपने प्रेमाल में फांसकर अब उसकी अपने हाथों से हत्या करना चाहती है क्या ? नहीं, नहीं, ऐसा नहीं हो सकता । मिस सोनिया तन–मन–धन से नहीं, अपनी सम्पूर्ण आत्मा से, प्राणों से मेरे मित्र विक्रम को प्यार करती है ! प्यार नहीं, प्रेम करती है । पर एकाएक आज ऐसा क्यों पूछ रही है कि विक्रम कब सोता है ! इसका मतलब क्या है ? बोल बैताल, इसका मतलब, रहस्य क्या है ? बोल !

बैताल चुप । जैसे उसका पों बोल गया हो !

तब पांड़ेजी भीतर ही भीतर बोले – हो सकता है किसी बहुत बड़ी ताकत ने इस सुन्दरी को बहुत बड़ी कीमत देकर, आसमान के तारे दिखाकर, कहा हो – ओय ! अपने प्रेमी की हत्या कर ! ओ लड़की ! तुझे इस इंडस्ट्री की मालकिन बनना है !

इतना सब एक पल में सोच–विचारकर पांड़ेजी पहले तो बिल्कुल उसी तरह ठहाका मारकर हंसे, जैसे बम्बइया फिल्मों में इधर उन्होंने कुछ देख रखा था, फिर फिल्मी नायकों के अंदाज में बोले – बोलो, क्या बात है, सही–सही बताओ । मुझपर एतबार रखो !

मिस सोनिया बोली – इसके मानी, आपको यह कतई पता नहीं कि आपके दोस्त कब सोते हैं...

पांड़ेजी अचानक बीच ही में तड़प उठे – तुम्हारा मतलब क्या है ?

सोनिया हैरान । यह आष्चर्यचकित पांड़ेजी का तमतमाया हुआ चेहरा देखने लगीं ।

– क्या बात है, आपकी तबियत तो ठीक है ?

– आपकी तबियत ठीक है मिस सोनिया ?

सोनिया चुप । बिल्कुल हतप्रभ !

तब थोड़ा षांत होकर, अपने–आपपर काबू पाकर पांड़ेजी बोले – क्या मेहरबानी करके आप बता सकती हैं कि मेरा दोस्त कब सोता है ?

अब पांड़ेजी की हालत खराब – जैसे मनुष्य सब खटकिल्ल हो गया ! पांड़ेजी हाथ जोड़े खड़े थे मानो लंका नगरी लुट रही थी । पांड़ेजी भरे कंठ से बोले – क्षमा हो देवी, मुझसे मनसा पाप हुआ है । मेरी मति भ्रष्ट हो गई ।

सोनिया ने आंसू पोंछते हुए कहा – तुम्हारा दोष नहीं, यह बम्बई षहर के नमक–पानी का कुप्रभाव है कि मनुष्य यहां दूसरे के बारे में बुरा, अमंगल ही सोचने लगता है ।

– मुझे मेरे मनसा पाप के लिए दंड दो सुन्दरी !

सोनिया उस षिषुवत् बैताल पांड़े के व्यवहार पर मुस्कराकर बोलीं – पंडित जी, विष्वास करो, मैं तुम्हारे मित्र का अमंगल कभी स्वप्न में भी नहीं सोच सकती । उन्होंने मुझे इतना दिया है कि मैं जन्म–जन्मान्तर तक उनसे उऋण नहीं हो सकती । उन्होंने मुझे सूर्य, चन्द्रमा और सितारों की ज्योति दी है । उनके प्रेम ने मुझे वह नवजन्म दिया है कि जो कभी असुन्दर नहीं हो सकता, मर नहीं सकता । वह अथाह समुद्र है, मैं उसमें गिरनेवाली गंगा नदी हूं ।

बैताल पांड़े एकाएक झुके सोनिया के चरण छूने के लिए, सोनिया ने उन्हें बांहों से थाम लिया – तुम मेरे लिए

निर्दोष बालक के समान हो पांड़ेजी ! प्रसन्न रहो । तुम्हारी मित्रता अमर हो !

पांड़ेजी सन्न रह गए । विक्रम से रात को भेंट हुई तो पांड़ेजी ने पहले उन हत्यारों और विजय की प्रेमिका वाली वह घटना बताई, फिर सोनिया का प्रसंग छिड़ते ही फफककर रो पड़े । काफी देर बाद षांत होकर बोले – 'विक्रम, सोनिया तो सचमुच देवी है । तुमने उसे छूकर मिट्टी से मणि बना दिया ।

विक्रम ने कहा – सुनो मित्र, भारत की नारी जाति अभी भ्रष्ट नहीं हुई है । भ्रष्ट हुई है पुरूष जाति, क्योंकि पष्चिम की षिक्षा और उसकी नकल से वह केवल बुद्धि के स्तर पर जी रही है । गांव का किसान–मजदूर भी अभी भ्रष्ट नहीं हुआ है । इसलिए हम–तुम जो बम्बई षहर में देख–भोग रहे हैं, यह केवल बीमान मन और बुद्धि की लीलामात्र है । सोचो भला, षीषकों, हत्यारों और व्यापारियों–भरा यह षहर कैसी लड़ाई लड़ रहा है ? किसकी हत्या कर रहा है ? क्या यह कभी सोचा जा सकता है कि लड़ाई वह है जो गरीबी के खिलाफ लड़ी जाय ? वीरता वह है जो अंधकार के खिलाफ जंग में दिखाई जाए ? पराक्रम वह है जो स्वार्थ के लिए नहीं, परहित के लिए हो ।

पांड़ेजी आज अपनी ही चिन्ता में फंसे थे । वह पता लगाना चाहते थे, सचमुच विक्रम कब–कितना सोता है । आज तक पांड़े ने इस बात पर कभी ध्यान ही नहीं दिया था । वह खा–पीकर खाट पर पड़ते नहीं थे कि मानो घोड़ा बेचकर सो जाते थे ।

सो पांड़ेजी बन्द किवाड़ के पीछे खड़े पतले–से सूराख के जरिये कमरे के भीतर एकटक देख रहे हैं । विक्रम ने स्नान करके सिर्फ एक मोटा नया वस्त्र पहना । फर्ष पर आसन मारकर ध्यानमग्न हो गया। काफी देर बाद उसकी आंखें खुलीं । फिर माला लेकर न जाने क्या जपने लगा ।

ध्यान–पूजा समाप्त करके विक्रम लिखने–पढ़ने की मेज पर पहुंच गया । लैम्प जलाकर और षेष कमरे की रोषनी बुझाकर वह न जाने क्या लिखने लगा – लिखने लगा ।

सुबह के चार बज गए । पांड़ेजी के पैर थककर कांपने लगे । आंखें नींद के मारे पथराने लगीं । जम्हाई ऐसी आई मानो खाली घड़े में कोई पानी डाल रहा हो । पांड़ेजी ने व्रत ले रखा था सत्य जानने का । सो वह डंड–बैठक करके नींद भगाने लगे – जा ससुरी, भागती है कि मारूं चार डंडे !

पर नींद और भोजन, यही तो दो परम संगिनी थी पांड़े की । सो आज एक से उनकी लड़ाई छिड़ ही गई । वह दौड़कर नल के नीचे बैठ गए – लगे नहाने । फिर खैनी–सुरती फांक ली । फिर नींद पर विजय पाकर वहीं अपने–आपको तैनात कर लिया ।

सुबह हो गई । विक्रम अब तक उसी तरह एकाग्रचित लिखता चला जा रहा था ।

कुर्सी से उठकर विक्रम ने पूरब दिषा की खिड़की खोली और उगते हुए सूर्य को नमस्कार करते हुए मंत्रजाप करने लगा :

ऊं
ह्रांग
क्रींग
ह्रौंग सूर्यायः नमः

फिर षोचादि से निवृत्त होकर योगासन करने लगा । और फिर वही ध्यान और पूजा ।

ठीक आठ बजे वही मोटे कपड़े की पैंट और उसीका कुर्ता पहनकर विक्रम कमरे से बाहर चला गया । पांड़ेजी अपने कमरे से बाहर बरामदे में आकर एकटक देखने लगे । वह सीधे इंडस्ट्री के कार्यालय की ओर बढ़ रहा था ।

साढ़े आठ बजे कारखाने का हल्का–सा सायरन बजा । मजदूर, कर्मचारी आने लगे । अफसरों की गाड़ियां आने लगीं । तभी पांड़े को मिस सोनिया दंडवते दिखीं । पांड़ेजी एकदम से दौड़े । उसे गेस्ट हाउस में लाकर बोले :

– देवी, अब पूछो, मेरा मित्र कब सोता है ?

– वह नहीं सोते । – सोनिया दंडवते ने कहा ।

– तुम्हें पहले से ही मालूम था ?

– हां, तभी तो मैं आपसे जानना चाह रही थी, वह कब सोते हैं ।

देखो न, वह रात–भर यहां बैठा लिखता रहा है ।

सोनिया और पांड़ेजी ने देखा – रात–भर विक्रम ने इतनी सारी चिट्ठियां लिखीं हैं । अपनी यह डायरी लिखी है ।

पांड़ेजी बन्द लिफाफों के ऊपर लिखे नाम और पते पढ़ने लगे । ये नाम और पते वहीं हैं, जहां–जहां से, जिन–जिनसे विक्रम गुजरा है, मिला है, मरा है, जिया है ।

वे गांव
वे कस्बे
वे लोग
वे विद्यार्थी···· वे····

हर रात यही होता है । विक्रम की दिनचर्या जैसे सनातन धर्म है । बैताल पांड़े और दंडवते ने कई रातें उसी तरह जागकर विक्रम को देखा है ।

महानिर्वाचन के दिन करीब आ गए थे । देष के सारे साधन, सारी षक्ति, सारे आचार–विचार, स्वप्न–दुःस्वप्न, सारी चेतना उस एक ही ओर इस तरह खींची–घसीटी जाने लगी थी जैसे दुर्योधन की सभा में जुए में पराजित पांडवों के सामने द्रोपदी खींची जा रही थी ।

अपार काला धन मालिकों, व्यापारियों, उद्योगपतियों, अधिकारियों के हाथ से एलेक्षन फंड में बहने लगा था । क्रांति की भाषा बोलने वाली वामपंथी पार्टियां दूतावासों के इर्द–गिर्द घूमने लगी थीं । बम्बई के मजदूरों के प्रतिनिधियों ने एक दिन विक्रम को घेरकर निवेदन किया – एलेक्षन में खड़े होने के लिए । उसने समझाया – जिस तरह से तुम्हारे हड़ताल, बन्द, घेराव, प्रदर्षन और गुस्से का कोई मतलब नहीं, ठीक उसी तरह इस निर्वाचन का कोई अर्थ नहीं । यह सब मात्र लीला है, खेल है, रूपक है – बुनियादी सचाई और लड़ाई से मनुष्य को दूर केवल हटाए रखने का । जिस तरह पूंजी और श्रम की लड़ाई केवल हड़ताल से नहीं हो सकती उसी तरह एकाधिकारी सत्ता और मनुष्य की लड़ाई सिर्फ 'वोट' से नहीं हो सकती । जिस तरह हड़ताल का संचालन मजदूर नहीं, वही पूंजी करती है, ठीक उसी तरह 'वोट' का संचालन सत्ता करती है ।

कुरूक्षेत्र कहीं और है ।

जब नीति नहीं तो राजनीति कैसी ? और एक दिन विक्रम दिलीप इंडस्ट्री का सारा प्रबन्ध उसमें काम करने वाले मजदूरों को सौंपकर बम्बई से चल देता है ।

14

बम्बई से चलने के पूर्व विक्रम ने दो कार्य किए । ऐसे सैंकड़ों पढ़े–लिखे युवक और स्वस्थ मजदूर जो महाराष्ट्र, मध्यप्रदेष, मैसूर, तमिलनाडू, केरल, आंध्रप्रदेष और पंजाब से बम्बई में नौकरी के लिए आए थे और चालों और झुग्गी–झौंपड़ियों तथा फुटपाथों पर बेकार, अनाथ, असहाय बैठे थे, उन्हें प्रति व्यक्ति एक–एक हजार रूपये देकर उसने उनके जन्मस्थानों पर वापस भेज दिया । यह संदेष और विचार देकर कि अपने–अपने गांवों–कस्बों में जाकर वहीं एक मोटी रोटी पैदा कर, एक मोटा कपड़ा पहनकर 'पंच चबूतरा' की स्थापना करो और लोगों को उनके व्यक्ति स्तर पर जाकर यह सामूहिक चेतना फैलाओ कि यह देष, यह स्थान तुम्हारा है : इसका नाष, उदय–अस्त, निर्माण–पतन तुम्हारा ही दायित्व है । प्रकाष द्वारा अंधकार से लड़ने की प्रेरणा–षक्ति पैदा करो ताकि उनमें आलोचना, निराषा के स्थान पर एक राजनीतिक विकल्प की चेतना जनम ले । 'चींटी' षीर्षक से अपनी–अपनी भाषाओं में पैम्फलेट्स लिखने, छपाने और बांटने की पूरी योजना बनाकर विक्रम ने उन्हें सौंप दिया । उन सब स्थानों के पते–ठिकाने लेकर उसने कहा – मैं विचार तथा पूरी योजनाएं भेजता रहूंगा, तुम सब अपने–अपने केन्द्र बनाकर उसी विचार की धुरी से काम करो । मैं आकर देखूंगा, मिलूंगा फिर ।

दूसरा काम – मराठी, हिन्दी और गुजराती तीनों भाषाओं में 'चींटी' नामक साप्ताहिक पत्र के प्रकाषन की व्यवस्था । इसका पूरा संचालन, आर्थिक व्यवस्था का आधार दिलीप इंडस्ट्री को बनाकर उसने यह दायित्व मिस सोनिया दंडवते को दिया ।

बम्बई से बाहर विक्रम के पीछे–पीछे तमाम लोग चले – मिस सोनिया दंडवते, इंस्पेक्टर विजय, विजय इंडस्ट्री के कितने ही मजदूर, कार्यकर्ता और बम्बई षहर के कितने लोग ।

सबके सब विक्रम को जाने से रोक रहे थे, नही ंतो वे लोग उसके साथ उस यात्रा में जाना चाहते थे । इन सबका कहना था, विक्रम ने जो नया साहस, आषा और प्रकाष फूंका है, वह उनके जीवन में, समाज में, देषकाल में कर्म

बन जाए । विक्रम ने समझाया – अभी जो जहां है, जिस घर में, वर्ग–समाज में, वहीं वह इस प्रकाष का कर्म करे, उसे स्वयं जिए, उसे अपने चारों ओर फैलाए । और यह देखे और दिखाए :

किसान धन–धान्य पैदा करता है और भूखा मरता है
मजदूर चीजें बनाता है और नंगा रहता है
धन–साधन कुछ ही हाथों में खिंचा चला आता है
षेष–नब्बे प्रतिषत लोग उनके दास और नौकर होते हैं
डॉक्टर हैं, पर लोग इतने बीमार हैं
वकील, जज हैं, पर लोग मुकदमे हार जाते हैं
स्थान अपार है, पर झौंपड़ियां नहीं मिलतीं
दूसरी ओर इंजीनियर हैं, जो घर, पुल, इमारत नहीं बना पाते
केवल पैदा बनाते हैं
अध्यापकों के लड़के पढ़ते हैं, पर इम्तिहान में फेल हो जाते हैं
जनता के सेवक केवल कुर्सियों की सेवा करते हैं
बैंकों में धन भरा है, पर उनके द्वार बंद हैं
महलों में काला धन भरता जा रहा है, और उनके द्वार खुले हैं
आयकर अफसरों के लड़के इंषोरेंष एजेण्ट बन जाते हैं
एक मां अपने बच्चों को जहर दे देती है
हत्यारे षहरों में रक्षा का काम करते हैं
एक बाप अपने लड़के को पीटता है
'नालायक विद्रोह की बात करता है ।'
इतने उपजाऊ खेत हैं ; उर्वरा भूमि है इतनी
इतने असंख्य कर्मकार सर्जक हाथ हैं
पर एक झाड़ी सारे खेत को बंजर बना देती है ।

विक्रम उन्हें समझा रहा था कि वहां चारों ओर से धीरे–धीरे अखबार वालों, पत्रकारों की गाड़ियां आ लगीं । पत्रकारों ने प्रष्न करने षुरू किए :

– अब आप कहां जा रहे हैं ?
– कुरूक्षेत्र ।
– साफ भाषा में बताइए । आप कहां जा रहे हैं ?
– अपने पास और लोगों के बीच ।
– आप एक राजनीतिक विकल्प देने की योजना बना रहे थे ।
– पहले नीति होगी और फिर राजनीति होगी ।
– नीति कैसी होगी ?
– जब मनुष्य होगा ।
– मनुष्य कहां है ?
– गांवों में, कल–कारखानों में दफ्तरों में, षहरों की भीड़ में, स्कूल–कॉलेजों में –गरीब, षोषित, उदास, पर जो अभी जीवित है । षहरों में, नगरों में चार सौ रूपये महीने से ऊपर कमाने वाला आदमी मनुष्य नहीं रह सका ।
– आपकी पार्टी या दल का नाम क्या होगा ?
– विक्रम दल, परन्तु पहले निर्माण होगा मानव–कल्याण–केन्द्र, लोक–फौज का ।
– योजना क्या है ?
– एक–एक मनुष्य, नर–नारी, युवक–युवती को जगाना ।
– इनका संगठन ?
– मनुष्य का क्या संगठन ? कुछ नहीं । संगठन तो फासिस्टों, तानाषाहों के होते हैं या तस्कर–अपराधियों के । चींटी तो अदृष्य रूप से धरती पर बिखरे हुए नन्हे–नन्हे कणों को एक जगह इकट्ठा करती है ।
आपका उद्देष्य क्या है ?

बैताल पांड़े से न रहा गया । बमककर बोले – क्या बक–बक, बक–बक लगा रखी है । जाइए यहां से, खटकिल होइए, बेमतलब का बमचक ।

पत्रकार, अखबार वाले चले गए । जाते–जाते बैताल पांड़े ने भी अपनी फोटू खिंचवा ली । सोचा, गांव में पंड़ाइन को दिखाया जाएगा ।

सब कुछ षांत हो जाने पर तब विक्रम ने कहा – असली लड़ाई तो सांस्कृतिक क्रांति है – जो जीवित है इसे ऐसा चेतन बना देना कि वह स्वयं झूठ–सच के बीच अपना निजी चुनाव कर सके और खुद फैसला ले कि उसे क्या करना चाहिए । आजाद भारत में, ठीक उसके खिलाफ सब–कुछ बाहर से लादा गया है । भोजन से लेकर विचार, आचार और राजनीति–दर्षन तक । चाहे गेंहू हो, चाहे समाजवाद, जब यह बाहर से उधार लेकर किसी आजाद मुल्क पर लादा जाता है, तो यह कितना ही चमत्कारिक क्यों न लगे, भंयकर सिद्ध होता है और अधिनायकवाद की यहीं से यात्रा षुरू होती है ।

कुरूक्षेत्र
की देव–यात्रा

विक्रम और बैताल पांड़े दोनों चले जा रहे थे ।

बैताल पांड़े ने कहा – हे मित्र, तुम पहले राजनीतिक लड़ाई की बात कर रहे थे, अब संस्कृति पर उतर आए, तभी तो कुछ लोग तुम्हें बन्दर कहते हैं ।

विक्रम ने मुस्कराते हुए कहा – एक तो बंदर समन्दर में कूदता ही नहीं, क्योंकि जानवरों में बंदर सबसे ज्यादा समझदार, चतुर और होषियार होता है .... वह पहले अपना नफा–नुकसान देखता है, फिर काम ! लेकिन कभी कोई बंदर जब समुन्दर में कूदता है, तब उसे समन्दर के अन्दर जाना ही पड़ता है, क्योंकि चीज तो उसकी अतल गहराई में छिपी होती है । तो ध्यान से सुनो पांड़े, यानी जो समाज है, देष है, जल है, मनुष्य और उसकी अतल गहराई में जो चीज है वह है उसका मन, विचार और संस्कार, जिसे चाहे तुम संस्कृति कहो, चाहे तुम अपना डंडा मारो हमारे कपार मा ।

पांड़े उदास होकर बोले – मित्र, बम्बई छोड़कर फायदा क्या हुआ ?

– फायदा–नुकसान क्या होता है पांड़े ?

– अच्छा, सफलता ही सही !

– कुरूक्षेत्र की ओर बढ़ रहे हो, और ऐसी भाषा बोलते हो ?

– यह सारा लवलंग मेरी समझ में नहीं आ रहा है मित्र !

अचानक विक्रम बोला – देखो पांड़े, देखो । वह दिख रहा है कुरूक्षेत्र । सुनो, वह धीरे–गंभीर स्वर । यह आवाज नहीं पहचान रहे ? अरे यह स्वयं भगवान परषुराम हैं । जब से श्रीरामचन्द्र ने अपने तेज को प्रकट किया, तब से पुरूष के रूप में वह प्रकाष पृथ्वी से ऊपर उठकर षान्त ज्योति–पोषक मेघ की भांति, भारत के षीष मस्तक पर घूमा करता है । यह प्रत्येक रात्रि को इस प्रदेष में आकर निवास करता है और इस देष की देखभाल करता है ।

पांड़े बोले – विक्रम, यह कुरूक्षेत्र ही इसे इतना प्रिय क्यों ?

– ध्यान से सुनो । आजकल हम लोग जिसे पानीपत कहते हैं, यही है प्राचीनकाल का कुरूक्षेत्र। यहां पांडवों और कौरवों का महाभारत हुआ था । यहीं आगे बाबर ने इब्राहीम लोदी से युद्ध किया । फिर यहीं बादषाह अकबर के बहरामखां ने हेमू बक्काल को हराया और फिर पेषवाओं की मूंछ का बाल सदाषिवराव भाऊ भी इसी जगह युद्ध में काम आया । क्षत्रियों के संहार के इस क्षेत्र में और कृष्णावतार के प्रिय सखा अर्जुन सिंह बाण–वर्षा के इस विजयस्थल में भगवान परषुराम अब प्रेम से निवास करते हैं। वह देखो स्वप्न जैसा उनका आश्रम – क्षितिज–रेखा पर ।

– हां, आश्रम के आसपास वह क्या है ?

– पूरब दिषा में पितामहपुरी के नीचे गंगा प्रदेष है । उसमें जो तेजराषि दिखाई दे रही है, वह भीष्मपितामह के घायल षरीर से उठ रही है – गंगाजल में डूबा हुआ षरीर । और वह बीच में जो धूमकेतु जैसा कुछ दिख रहा है वह है अमर पागल अष्वत्थामा, जो हमारे पूरे देष में हर क्षण घूम रहा है। वह कभी उदास हो जाता है, कभी क्रोध से बौखला उठता है, कभी आग उगलता है, कभी तूफान, कभी हंस पड़ता है और कभी रोने लगता है । यही पागल अष्वत्थामा यहां

लोगों में घुसकर साम्प्रदायिक दंगे कराता है, षूद्रों और हरिजनों पर अत्याचार और दमन कराता है । यही राजनेताओं के रूप धारण कर राजनीतिक पार्टियां बनाता है और राजनीति का पैषाचिक खेल करवाता है । यही है भ्रष्टाचार, पतन, अंधकार और झूठ का पुतला जिसे लोग अपने भीतर छिपाए चल रहे हैं और उसीकी नरक–आग में स्वयं जल रहे हैं और पूरे देष को उसी नरक में डाल रहे हैं । देखो, चारों ओर वैतरणी बह रही है ।

– इसका नाष कब होगा ?

– इसका नाष षिव की षक्ति से ही संभव है । जब यह असत् अष्वत्थामा मरेगा, तभी अर्जुन के हाथों से गांडीव फिर उठेगा । गांडीव टंकार से पितामह के षरीर में धंसे हुए सारे बाण निकलेंगे और उन्हें नवयौवन प्राप्त होगा । फिर उस देष में नवयौवन फूटेगा । यहां के निराषउदास नवयुवक–नवयुवतियां, किसान–मजदूर जीवन की सारी भ्रष्ट व्यवस्थाओं को जलाकर उसमें से एक नयी मानवीय व्यवस्था पैदा करेंगे । तब नहीं रहेगा कर्मरहित थोथा ज्ञान, ज्ञानरहित कर्म, विवेकहीन आचरण, नीतिरहित, राजनीति .... ।

पांड़े ने अश्रुपूरित नेत्रों से कहा – मित्र, मुझे भगवान कृष्ण के दर्षन कराओ !

– देखो न अपने चारों ओर ! भीतर झांकों । अब अपने को त्यागकर बाहर निकलो । डरो नहीं ! सुनो, क्या सुनाई पड़ रहा है ? और सचमुच सुनाई देने लगा : भय मुक्त हो । इस देष में धर्म फिर लौटेगा । पर इसके लिए तुममें बुनियादी परिवर्तन करना होगा । यह तुम्हीं करोगे, सिर्फ एक जाति होगी मनुष्यों की : मनुष्य–जाति, धर्म वह जो जीवन के व्यवहारों में जिया जा सके – मन्दिरों, मस्जिदों, गुरूद्धारों, चर्चों, धर्मपुस्तकों में जड़बंदी नहीं, मनुष्य के जीवन में जिया जाता हुआ – क्रियात्मक, गत्यात्मक है । मैं उसी नये धर्म की आषा हूं, ऋत का सूत्रधार हूं । सत्य का स्वरूप धर्म है । वही मैं हूं, जिसने कुरूक्षेत्र में अर्जुन का सारथित्व किया । कौरवों की सभा में चीर बढ़ाने वाला । अष्वत्थामा के मस्तक से अर्जुन ने जो मणि ली थी वही अर्जुन फिर उसे वहीं वापस रखेगा । महाभारत में मैं बिना किसी अस्त्र के पांडवों का सारथी बना – राजनीति और राजनीति के भेद बताए । मैं गीता में केवल योगी न था । कोरे योग के कारण जब ब्राह्मण और क्षत्रिय दुष्ट हो जाएं तब संसार में क्या परिवर्तन लाया जाए, यह मैंने बुद्धावतार में दिखाया .... ।

बैताल पांड़े चिल्ला पड़े – यह सब क्या पोप लीला है ।

विक्रम ने कहा –कृष्ण का दर्षन क्या यही नहीं था ?

– नहीं, इससे तो मन और अषांत हो गया ।

– जैसा मन होगा, वैसे ही कृष्ण होंगे । जैसा मन होगा वैसा ही संसार होगा ।

– तो क्या तुम संसार का मन बदल सकते हो ?

– बिल्कुल बदल दूंगा । जैसे कृष्ण ने अर्जुन का मन बदला था, जैसे बुद्ध और गांधी ने बदला था ।

– चुप रहो, अब मुझे भूख लगी है ।

– यहां कहां भोजन है ?

– मैं चोरी करूंगा, डाका मारूंगा, भूख मिटाना ही मेरा धर्म है । मैं मनुष्य हूं ।

विक्रम हंस पड़ा ।

– हंसो मत, मुझे इतनी भूख लगी है कि मैं इसके लिए कोई भी पाप धर्म समझता हूं ।

– अगर मैं हनुमानजी से कहकर तुम्हारी भूख समाप्त कर दूं तो ?

– नहीं, मैं हर्गिज नहीं चाहता कि मेरी भूख समाप्त हो जाए, फिर जीना किसलिए ?

– तुम खाने के लिए जीते हो ?

– नहीं, मैं जीने और खाने दोनों के लिए जीता हूं ।

– तुम खाते–खाते समाप्त हो जाओगे, पर जीवन नहीं समाप्त होगा !

दोनों मित्रों में बातचीत बढ़ती गई, बढ़ती गई । दोनों ने अपने–अपने अस्त्र खींच लिए । युद्ध ष्षुरू हो गया ।

रात–भर युद्ध, दोपहर हो आई । आसपास के गांव के लोग घिर आए । मेला लग गया । पुलिस आकर खड़ी हो गई । दोनों एक–दूसरे पर वार कर रहे थे । परस्पर के आक्रमण भयानक थे । पर घायल होकर कोई भी धराषायी होने को तैयार नहीं था ।

सारे लोग तमाषा देखने में मग्न थे । सब यही जानना चाहते थे – ये वीर पुरूष कहां से आए ? ये कौरव–पांडवों के अवतार तो नहीं, जे कुरूक्षेत्र में ऐसा महाभारत लड़ने आए हैं ।

एक बुढ़िया औरत घर से पानी लेकर आई – हे भइया, हे बेटवा लोग, लो पहले पांड़ी तो पी लो!

बैताल पांड़े रूककर मुस्करा पड़े । घड़ा–भर पानी पीकर लोगों के सामने बोले – यह कृष्ण है, मैं अर्जुन हूं । दोनों में कृष्णार्जुन–युद्ध हो रहा था ।

पुलिस के सिपाहियों ने बिगड़कर कहा – चलो, तुम लोग थाने, यहां बेमतलब बमचक मचा रखा था ।

पांड़े बोले – भाई, हम लीला कर रहे थे !

– चलो, वहीं थाने में लीला देक्खी जाएगी । यह हरयाना है ।

सब पुलिस थाने आए । गांव वाले पीछे–पीछे । कुछ स्त्रियां फल–फूल, दूध–दही लिए आई थीं – कृष्ण और अर्जुन को खिलाने के लिए ।

गांव से गांवों में कृष्ण–अर्जुन की खबर फैलती जा रही थी । थाने पर गांव वालों की भीड़ बढ़ती जा रही थी । दरोगा ने मारे डर के दोनों के पांव छूकर छोड़ दिया ।

थाने के सामने विषाल मैदान में गांव की उस अपार भीड़ को बिठाकर विक्रम कहने लगा – देखो, तुम सबमें किस कदर बुद्धि और विवेक की कमी है। तुम लोग न कुछ देख सकते हो, न आजाद मन से सोच सकते हो ! जैसा कोई तुमसे कह दे, समझा दे, हांक दे, तुम लोग भेड़–बकरी की तरह चल पड़ते हो । आंखें मूंदकर । कानों में उंगली डालकर । किसीने कह दिया – कृष्ण और अर्जुन, तुम लोगों ने विष्वास कर लिया । याद रखो, तभी तुम्हें मनुष्य से 'वोटर' बना दिया गया । तुम्हारे चुनाव का चिह्न क्या है ?

गाय–बढड़ा
घोड़ा
हाथी

क्या तुम जानवर हो ?

आवाज आई – नहीं ।

फिर जानवरों के चिह्न क्यों ? तुम लोगब जानवरों को वोट क्यों देते हो ? बताओ, सोचो । अगर तुम सब मनुष्य हो तो जानवर को नहीं, मनुष्य को वोट दो । तुम्हारा प्रतिनिधि मनुष्य होगा या जानवर : गाय, बैल, ऊंट, घोड़ा, हाथी ? जानते हो ये निषान क्यों रखे गए ? क्योंकि आम जनता से इन जानवरों की काफी समानता है । जानवर चार पैर के हैं, आम आदमी दो पैर का । पर जैसे जानवर–जीव में सोचने–विचारने और फैसला लेने की ताकत–क्षमता नहीं है, वैसे यहां के आम लोगों में ।

सहसा एक आवाज आई – जनता अब वह नहीं है, काफी होषियार हो गई है ।

विक्रम ने उत्तर दिया – होषियार और चतुर तो बन गई इन चुनावों से, पर उसकी बुद्धि नहीं, ज्ञान कहां है ? वह हर पांचवें वर्ष बाद मुल्क और सरकार को कोसना षुरू करती है और अपनी लाचारियों की बातों से जमीन–आसमान एक कर देती है । पर वह क्यों नहीं सोचती, जिसको उसने वोट दिए हैं, वहीं तो सरकार है ।

एक–दूसरी आवाज कौंधी – फिर हम किसको वोट दें ? इससे बेहतर और कौन है ?

– तुम हो ।

– मैं अकेला क्या कर सकता हूं ?

– सब अकेले – करोड़ों ऐसे एक होकर ऐसा मनुष्य दल बनाओ जैसे गांधी ने वह संग्रामी, बलिदानी कांग्रेस बनाया था, जैसे सुभाषचन्द्र बोस ने आई0 एन0 ए0 बनाया था, जैसे कन्हाईलाल दत्त, सूर्यसेन, अरविन्द और सरदार भगत सिंह और चन्द्रषेखर आजाद ने मुक्तिवाहिनी दल तैयार किया था ।

एक आवाज फिर आई – वह समय ही और था ।

विक्रम ने कहा – तो क्या यह समय सिर्फ भोगने और रोने–कोसने का है ? यकीन रखो, इस तरह तुम लोग खुलकर रो भी नहीं सकते ।

षोर होने लगा । उसके बीच विक्रम की आवाज कांपती रही – हम भिखमंगे हैं, हम अपाहिज हैं, अबल हैं, जानवर हैं । हमें अब गुस्सा नहीं आता । अब हमें भाग्य पर विष्वास है । हम बेषर्म हैं, आत्मसम्मानहीन, हमें सब कुछ बर्दाष्त है । हम अपनी कायरता को उस अंधेरे अतीत से जोड़ते हैं, जहां इससे भी बुरा वक्त था ! यह बुरे अतीत की कहानियां तुम्हें कौन याद दिलाता है ? वह कौन है जो हर वर्ष, हर दिन कहता है कि 'हम संकट से गुजर रहे हैं ....

वह कौन है ? उसका संकट क्या है ? उसका संकट है मात्र उसकी कुर्सी, और तुम्हारा संकट क्या है, तुम्हें यही पता नहीं । उठो ! जागो .... होषियार !

सावधान !

हे सखि !
विक्रम अलबेला

हरयाना प्रदेष की उस भूमि से लेकर – मतलब, कुरूक्षेत्र की उस धुरी से – विक्रम पूरा हरयाना, पूरा पंजाब और दिल्ली की सीमा तक घूम–घूमकर लोगों से मिलता रहा ।

गांव की जनता के साथ ही साथ अब इन क्षेत्रों के बुद्धिजीवी, लेखक, पत्रकार, कॉलेज और विष्वविद्यालयों के अध्यापक लोग भी उसके नजदीक आए ।

वह जगह–जगह बुद्धिजीवियों को इस सच्चाई की अनुभूति देने की कोषिष करता रहा कि – भारत को इस वर्तमान संकट में धकेलने की जिम्मेदारी मुख्य रूप से यहां की पढ़ी–लिखी जनता पर है । नौकरी के अलावा और कोई भी मूल्य–आदर्ष नहीं । लोगों के मन में सार्वजनिक जीवन के प्रति ऐसी पूरी लापरवाही उस मूल्यहीनता का ही फल है । देष का आम आदमी गैर–जिम्मेदारी के साथ राजनीति से दूर भाग रहा है । लोकतन्त्र के लिए यह आत्महत्या की स्थिति है । जो लोग राजनीति से बाहर रहकर स्वतंत्र और षरीफ, सभ्य सज्जन होने का दावा करते हैं, वे ठोंगी हैं, कायर हैं, गुलाम हैं । आजादी की लड़ाई में जितने राजनीतिज्ञों, कर्मपुरूषों, कार्यकर्ताओं, सत्याग्रहियों और आतंकवादियों की जरूरत थी, उनसे कहीं ज्यादा आज स्वराज्य को बनाए रखने और इस मुल्क को एक सार्थक, मजबूत, क्रांतिकारी विकल्प देने के लिए उनकी जरूरत है । जहां राजनीतिज्ञों, चिन्तकों और कर्मपुरूषों का लोप हो जाए वहां उसी षून्य को भरने के लिए तानाषाह आता है और वह समूची जनता और उसके साधनों का उपयोग अपनी सत्ता बनाए रखने और निजी षान–षौकत तथा चमत्कारों के लिए करता है । यह ध्रुवसत्य है । जिस लोकतंत्र में कोई विकल्प नहीं रह जाता वह निष्चित रूप से तानाषाही के चंगुल में फंस जाता है ....

चारों तरफ विक्रम की बातें लोगों के दिल–दिमागों पर टकराने लगीं । मन के बन्द किवाड़ों पर मानो दस्तक देकर कहने लगीं :

यह समाजवाद नहीं, सुरक्षित पूंजीवाद है
कांग्रेस का यह समाजवाद उन गुमराह साम्यवादियों के
तंग दिमाग की उपज है जिन्होंने चन्द पूंजीपतियों और
छूतावासों से सांठ–गांठ कर ली है
मनुष्यता विस्फोटक बने
आज का संघर्ष राज्य के चरित्र और आम इंसान की
जिन्दगी के बीच में है – प्रकृति और आत्मा में है –
धन और कर्म में है – अंधेरे और उजाले में है ।

राजनीतिक पार्टियों के लोग विक्रम के खिलाफ प्रचार करने में लग गए थे । उसकी सभा में हिंसक घटनाएं करने लगे थे ।

कुछ लोग मिलकर विक्रम के चरित्र की परीक्षा लेने आए ।

दिल्ली से एक परमसुन्दरी लड़की अपनी बेषकीमती गाड़ी में बैठकर विक्रम से मिलने आई । वर्षा के दिन थे .... यहीं पन्द्रह अगस्त के आसपास विक्रम एक झोंपड़ी में जमीन पर आसन लगाए ध्यानमग्न था ।

लड़की का नाम था नयनतारा । उसने विक्रम से कहा – मैं आपके यष और कर्म से आकर्षित होकर आपकी सेवा में आई हूं । हृदय में यही अभिलाषा है कि मैं किसी भी तरह आपके काम आऊं !

– तुम्हारे पास ऐसा क्या है ?

– मेरे पास क्या नहीं है ? मन–मन–धन तीनों से मैं सम्पन्न हूं । और मैं पूरी तरह से आपके प्रति समर्पित हूं ।

यह कहकर नयनतारा अपनी गाड़ी में से सौ–सौ के नोटों से भरा हुआ बड़ा–सा झोला ले आई और उसे खोलते हुए कहा – ये पचास हजार रूपये आपके कदमों पर चढ़ाने के लिए ले आई हूं ।

बैताल पांड़े बगल में आकर खड़े हो गए और वह एकटक उस सुन्दरी और उस माया को निहारने लगे ।

नयनतारा जिन नयनों से विक्रम को देख रही थी, बैताल पांड़े को वह कतई अच्छा नहीं लगा । उन्होंने कहा –

हे देवि, तुम हो कौन ? और यह धन कहां से लाई हो ?

– यह धन मेरा है, मैं दिल्ली की रहने वाली हूं । मैं समाज की सेवा करना चाहती हूं ।

विक्रम ने पूछा – हे सुन्दरी ! इस रूप और धन के अलावा तुम्हारे पास और क्या है ?

– इसके अलावा और क्या चाहिए आपको ?

– मुझे चाहिए तुम्हारा दर्द, तुम्हारा दुःख ।

– मैं समझी नहीं ।

– अच्छा, यह बताओ, तुम अपना रूप–सौन्दर्य, धन, इसको देना चाहती हो या इसे त्याग देना चाहती हो ?

– मेरी समझ में कुछ नहीं आता ।

– अच्छा, इस तरह समझो : तुम अपने समस्त षारीरिक सुखों और अहंकारों के बीच किसी दुःख को, किसी अतृप्ति को महसूस करती हो ? किसी ऐसे लोक में पहुंचना चाहती हो, जो इसके परे है ?

नयनतारा मुस्कराती हुई बोली – सच बात यह है कि मुझे कोई किसी तरह का दुःख, दर्द या अभाव नहीं है । मैं इसी षरीर से, धन से आपकी सेवा करना चाहती हूं । आप मुझे जहां जिस तरह ले जाना चाहें, मेरा जैसा भी इस्तेमाल करना चाहें, मैं तैयार हूं ।

विक्रम ने पूछा – कभी तुमने अपनी सेवा की है ?

– मैं समझी नहीं !

विक्रम हंस पड़ा – सुन्दरी, तुम अभी सेवा के अयोग्य हो । जाओ, मौज–बिहार करो । जब कभी तुममें दर्द पैदा होगा, अपने से बाहर निकल आने के लिए, फिर मैं मिलूंगा और तभी इस सेवा का आनन्द षुरू होगा !

नयनतारा को लगा, यह आदमी कुछ अजीबोगरीब है । उसमें ऐसा प्रभाव है, ऐसा निर्मल चरित्र है कि यहां इसके संग दो–एक दिन भी रहना खतरनाक है ।

बैताल पांड़े को नयनतारा का इस तरह चले जाना बिल्कुल अच्छा नहीं लगा । उसका दिल्ली का पता लेकर उसे विदा देते हुए पांड़े ने कहा – यह आदमी, मेरा मित्र थोड़ा खब्ती है, मैं मिलूंगा आपसे दिल्ली में । मेरे मित्र को क्षमा करना देवि !

जाते–जाते नयनतारा ने कहा – जिंदगी में यह मेरी पहली हार है, पर अजीब बात है, मुझे यह कतई नहीं महसूस हो रहा है कि मेरा अपमान हुआ है । इस हार का मुझे दुःख भी नहीं है ।

गांव वालों में यह खबर फैलते देर नहीं लगी कि दिल्ली की वह नयनतारा विक्रम की परीक्षा में बुरी तरह परास्त होकर चली गई । और जब पूरी बात का पता बैताल पांड़े को लगा त बवह गरजे – भ्रष्ट राजनीति ने मनुष्य को इतना भ्रष्ट कर दिया है । ऐसे समाज में मनुष्य बने रहना ही कितना बड़ा संघर्ष है ।

सारे गांवों में विक्रम घूमता हुआ, लोगों के बीच जीता–जागता हुआ मानव–कल्याण केन्द्रों की स्थापना करता चला जा रहा था । हर गांव में 'पंचे चबूतरा', हर चबूतरे पर सजग प्रहरी तैनात करता था। हर गांव में स्त्रियों के लिए 'सावित्री आंगन' की प्रतिष्ठा कर स्त्रियों में यह विष्वास जगाता कि घर–समाज को स्वच्छ, साफ–सुथरा और दिव्य बनाने में स्त्रियों का हाथ अधिक होगा, क्योंकि स्त्री–समाज नकली आजादी और भ्रष्ट राजनीति के प्रभाव से अछूता है ।

हरयाना, पंजाब के गांवों में, कस्बों और षहरों में बेपढ़े–लिखे स्त्री–पुरूष, पढ़े–लिखे अधिकारी लोग, सोचने–समझने वाले लोग जीवन की एक नई अनुभूति से कहते :

यह विक्रम कैसा अद्‌भुत है
इसका प्रत्येक कार्य अपने पीछे एक पदचिह्न छोड़ता है
हमारी दीनता, निराषा को अपने प्रकाष से धुलकर
यह हमारे भीतर सुन्दरता, आषा और साहस जगाता है
हर इन्सान इतना महत्तवपूर्ण है, इससे पहले
हमें यह पता नहीं था
धन, ताकत, रूप, आकर्षण की छलना के
भीतर से विक्रम सीधे हमारी आत्मा को देख लेता है
अपने विचार वह दूसरों के भीतर सुनता है
विक्रम का व्यक्तित्व दूसरों के

साथ एकाकार हो जाता है
जब एक–एक जगकर, सबको जगा लेंगे तब
सबकी सजग चेतना एकाकार होकर
पूरे देष को नया जन्म देगी ।
गांव की स्त्रिंया उसे निहारकर कहतीं :
हे सखि !
विक्रम अलबेला !

15

विक्रम दिल्ली में चुपचाप पैदल घुमा । पर एक ही दिन में, पुलिस को, अखबार वालों को और षहर वालों को पता लग गया कि कोई आया है ।

षहर में आते–आते कई घटनाएं एक के बाद एक होती गई ।

गर्भवती स्टैनो,
जरा सुनो

एक भीड़ सड़क को पार कर रही थी । मोटरगाड़ियां पूरी सड़क–भर पर दौड़ रही थीं । लोग दफ्तरों में पहुंचने के लिए पागल थे ।

विक्रम ने देखा, एक गर्भवती युवती सड़क के किनारे चुपचाप असहायसी खड़ी सड़क के उस पार देख रही थी । जाहिर है, वह तेजी से चलकर, दूसरों की तरह दौड़कर सड़क पार करने से मजबूर थी । वह बार–बार अपनी घड़ी की तरफ देखती और मुंह पर छलकते हुए पसीने को रूमाल से पौंछ लेती ।

विक्रम ने पास आकर पूछा – मां, मैं आपकी कोई मदद कर सकता हूँ ?

– जी नहीं, षुक्रिया ।

विक्रम से रहा नहीं गया – मैं आपको सड़क पार करने में .... । उस स्त्री ने घूरकर विक्रम को चुप कर दिया ।

– आप कहां काम करती हैं मां ?

– आपसे मतलब !

– क्यों नहीं ? मैं यहां अपने–आपको हर चीज से जुड़ा पाता हूं !

वह स्त्री विक्रम की ओर देखकर चुप रह गई ।

सहसा विक्रम ने बैताल पांड़े को संकेत दिया । पांड़े ने झोले में से पुलिस वाली सीटी निकाली । उसे जोर से बजाते हुए सड़क के बोचौंबीच जाकर खड़े हो गए – हाथ ऊपर उठाए । आने वाली गाड़ियां रूक गई । उस स्त्री ने सड़क पार कर ली ।

विक्रम ने पूछा – आप कहां काम करती हैं ? इस हालत में आपसे काम लेने वाला वह कौन असभ्य, बत्तमीज मालिक या अफसर है आपका, मां ?

युवती ने बताया कि वह मैक्सजान कम्पनी के मालिक की स्टैनो है ।

विक्रम ने कहा – मैं उससे मिलना चाहता हूँ ।

– आप मेरी नौकरी तबाह करना चाहने हैं ?

युवती की आंखों में आंसू उमड़ आए ।

विक्रम ने कहा – अगर वह तुम्हारी नौकरी ले लेगा, तो मैं उसकी कम्पनी से लूंगा .... खरीदकर तुम्हें मालिक बना दूंगा मां !

विक्रम सीढ़ियों से दौड़ता हुआ ऊपर कम्पनी के मालिक के कमरे में धड़धड़ाता हुआ पहुंच गया । दरबान, चपरासी, सेक्रेटरी लोग दंग । उसे कोई न रोक सका ।

विक्रम ने कहा – आपको षर्म आनी चाहिए, आप इतनी बेरहमी, गैर–इन्साफी से अपने स्टैनो से काम लेते हैं । क्या आप अंधे हैं ? वह मां बनने वाली है, उसे आज से चार महीने की छुट्टी दीजिए । चलिए !

– हुजूर, आप हैं कौन ? – मालिक हक्का–बक्का रह गया ।

– स्टैनो को बुलाइए । जल्दी कीजिए । मेरे पास वक्त नहीं है ।

स्टैनो आई । जैसे मालिक ने उसे आज पहली बार उस हालत में देखा हो । मालिक ने क्षमा मांगी । स्टैनो को चार महीने की छुट्टी देते हुए कहा – बात यह है कि कोई हमको बताता नहीं, हें–हें–हें।

भीड़ ने

भीड़ को

भीड़ पर

कनाट प्लेस के एक चौराहे पर ट्रैफिक जाम – बुरी तरह से । चौराहे की चारों सड़के ठसाठस । पों–पों ।

पांड़े ने कहा – यहां तो अजब लबलंग है ।

– तो खटकिल्ल करो न पांड़े !

यह कहकर विक्रम उस भीड़ में उतर गया । चौराहे की बत्ती नदारद – बिजली वालों ने हड़ताल कर रखी है । ट्रैफिक पुलिस को एक किनारे घेरकर एक पूरी भीड़ उससे बहस करने में लगी थी । कई कारें आपस में लड़ चुकी थीं ।

भीड़ ने भीड़ को बढ़ाया था ।

भीड़ को भीड़ पर बेतरह गुस्सा आ रहा था ।

विक्रम ने सीटी बजाते हुए ट्रैफिक का संचालन षुरू किया । पांड़े ने दौड़कर ट्रैफिक पुलिस को बचाया ।

भीड़ ने रैंगने लगी ।

घायल कारों को धक्के देकर पांड़े और विक्रम एक किनारे करने लगे ।

बच्चों का स्कूल

आगे बढ़े तो सड़क के दाईं ओर चहारदीवारी के भीतर से रोने, गाने, मार–पीट करने और तोड़ने–ताड़ने का एक अजब षोर उठ रहा था ।

विक्रम ने अन्दर जाकर देखा – दो–ढाई हजार बच्चे, लड़के–लड़कियों का वह षानदार स्कूल, पर एक भी अध्यापक नहीं । चारों तरफ, बाहर–भीतर षोर, मार–पीट, तोड़–फोड़, भयानक उपद्रव और गरीब–कमजोर बच्चों, लड़कों पर अत्याचार ।

विक्रम ने आज्ञा दी – पांड़े, घंटा बजाओ । पांड़ेजी स्कूल का घंटा बजाने लगे । विक्रम ने सीटी बजाकर सारे स्कूल को मैदान में अपने सामने इकट्ठा कर लिया ।

पूछा – तुम्हारे टीचर कहां गए ?

– स्ट्राइक पर ।

– क्यों ?

– उन्हें और तनखाह चाहिए ।

– तुम लोगों से आज्ञा लेकर गए ?

– हमसे क्यों ?

विक्रम ने कहना षुरू किया – तुम्हीं लोग तो सब कुछ हो । अगर कल से तुम लोग स्कूल न आओ, तो यह स्कूल बन्द हो जाएगा और तुम्हारे टीचर्स यहां से निकाल दिए जाएंगे । इसलिए अगर तुम्हारे टीचर्स बिना तुम्हारी आज्ञा के स्ट्राइक पर गए हैं, तो उन्हें दंड मिलना चाहिए ।

– कौन देगा उन्हें दंड ?

– तुम लोग ।

– कैसे ?

– सुनो, मैं बताता हूं । कल तुम्हारे टीचर्स 'स्ट्राइक' से लौटकर जब स्कूल में तुम्हें पढ़ाने आएं, तब तुम लोग यहीं मैदान में इसी तरह बैठना और टीचरों से कहना – हमें ऐसे टीचर्स नहीं चाहिए जिन्हें हमसे प्यार नहीं, जो बिना हमारी आज्ञा के हड़ताल पर जाते हैं, जिन्हें विद्या से, षिक्षा से कोई लगाव नहीं, हम ऐसे संस्कारहीन, चरित्रहीन

अध्यापकों से नहीं पढ़ेंगे । इसपर सारे टीचर्स डर जाएंगे और तुम्हारे सामने घुटने टेक देंगे । तब तुम लोग सारे टीचरों को यहीं अपने न्यायालय में खड़े कर न्याय देना ।

अगले दिन वही हुआ । सारे छात्र वहीं मैदान में बैठे रहे । अध्यापकों के माथे ठनक गए । छात्रों ने अपने न्यायालय में उन्हें अभियोगी की तरह खड़ा कर न्याय सुनाना षुरू किया । अध्यापकों के पैरों के नीचे से जमीन खिसकने लगी । तभी उनके सामने विक्रम आ खड़ा हुआ । बोला – आ सब लोग लिखकर दीजिए, भविष्य में बिना अपने छात्रों से अनुमति लिए आप लोग 'स्ट्राइक' नहीं करेंगे । इनसे प्यार करेंगे और अपने पूरे तन, मन और ज्ञान से पढ़ायेंगे । पूरे अनुषासन में रहकर अपने छात्रों को विद्या और उच्च संस्कार देंगे । जो ऐसा करने में जरा भी असफल होगा, अयोग्य साबित होगा, उसकी तुरन्त स्कूल छोड़ देने की जिम्मेदारी होगी ।

सारे अध्यापकों ने ये नियम, ये मर्यादाएं लिखकर छात्रों को दे दीं और उनसे अपने अपराधों के लिए क्षमाप्रार्थी हुए ।

दिल्ली षहर की ये सारी घटनाएं अखबारों में छपने लगीं । दिल्ली की पुलिस, सी0 आई0 डी0, पत्रकार लोग विक्रम के पीछे लग गए । एक दिन न जाने कैसे विक्रम बैताल पांड़े को संग लिए पार्लियामेन्ट के 'लंचहाल' में घुस गया । एम0 पी0 लोग ठाट से षानदार लंच ले रहे थे । विक्रम वहां खड़ा होकर चिल्लाया – गरीब, भूखी जनता के प्रतिनिधियो, षर्म करो । जिन–जिन क्षेत्रों से तुम चुनकर आए हो, वहां की जनता भूखों मर रही है । उसे दोनों वक्त सूखी रोटी नहीं मिलती और तुम राजानवाबों की तरह यहां मौज, बेषर्मी के ये लंच उड़ा रहे हो ! जो भी एक मोटी रोटी के अलावा यहां और कुछ खाता है, वह इस देष के गरीब का खून पीता है .... ।

पुलिस विक्रम को पकड़कर नीचे ले गई । बैताल पांड़े ने पुलिस अधिकारी को डांट दिया – दूर से बात करो, मुझे छुआ तो खटकिल्ल कर दूंगा । हम लोग कोई अपराधी नहीं । हम आजाद मुल्क के गुलाम नागरिक हैं, मेरा मुंह क्या देख रहे हो ? जो करना हो कर लो, हमें भय मत दिखाओ । मैं जलियांवाला बाग का निवासी हूं । हम दांडीयात्रा से लौटे हैं । सेवाग्राम से बापू ने हमें यहां भेजा है । बाहर सरदार भगतसिंह के साथ सुभाषचन्द्र बोस खड़े बातें कर रहे हैं ....

नीचे लोगों की भीड़ बढ़ती जा रही थी । लोकसभा के तमाम सदस्य विक्रम को देखने दौड़े थे । सेंट्रल हाल की भीड़ वहीं चली आई थी । विक्रम पुलिस के सामने बयान दे रहा था – मैं उस मुल्क को आजाद नहीं मानता, जहां का कोई भी व्यक्ति किसी भी व्यक्ति का किसी भी तरह षोषण करे । जाकर देखो सेवाग्राम में, सदाकत आश्रम में, गांधी और राजेन्द्र बाबू भूखों मर रहे हैं अनन्न उपवास में । वे चिल्ला रहे हैं कि मैं मर जाऊंगा पर अपने देष में अनर्थ नहीं होने दूंगा ।'

रामलीला
मैदान में
भई संतन की भीड़

उत्तर प्रदेष, हरयाना, पंजाब और दिल्ली के आसपास से काफी बड़ी संख्या में लोगों की भीड़ दिल्ली में विक्रम से मिलने, उसके दर्षन करने आई थी ।

बैताल पांड़े ने सबको रामलीला मैदान में इकट्ठे होने के लिए कहा था । मैदान में लोगों की भीड़ बढ़ती जा रही थी । विभिन्न पार्टियों के संसद् सदस्य, दिल्ली प्रषासन के कांउसिंलर्स, अधिकारी–वर्ग, युवक–बुद्धिजीवी, गरीब–अमीर सब तरह के लोग विक्रम को सुनने आए थे ।

विक्रम ने कहना षुरू किया – अमृतपुत्रो ! देखो अपने आसपास, गर्दन उठाकर चारों ओर देखो, कौन–कौन लोग आए हैं .... विवेकानन्द, राजा राम मोहन राय, अरविन्द, तिलक, षौकत अली, मुहम्मद अली, महात्मा गांधी, सुभाषचन्द्र, राममनोहर लोहिया .... और बहुत सारे लोग आए हैं । वे सब चुपचाप हमें निहार रहे हैं । अजीब बात है, एकटक देखते हुए भी वे हमें जैसे देख नहीं पा रहे हैं .... कितना धुंधलापन है ! श्रवण करते हुए भी हम उन्हें श्रवण नहीं कर पाते । टटोलते हुए भी हम उन्हें छू नहीं पाते।

वजह क्या है, ध्यान से सुनो :

पांच रंग मनुष्य की आंखों को अंधा कर देते हैं
पांच स्वर मनुष्य के कानों को बहरा बना देते हैं

पांच रस मनुष्य को जिह्वा को स्वाद–षक्ति से विहीन कर देते हैं
सरपट दौड़ना और षिकार करना हृदय को पागल बना देते हैं

वस्तुएं जो दुष्प्राप्य हैं, मनुष्य के चरित्र को झुलसा देती है । आजादी के बाद हमारे देष–भर में यही हुआ है । और हो रहा है । इतनी रंग–बिरंगी राजनीतिक पार्टियां, इतने सारे नारे, इतने वक्तव्य, इतने फैसले, इतने अपार षब्दों और स्वरों ने, रंगों और रसों ने हमें क्या से क्या बना दिया !

आप जानते हैं, कोई भी वस्तु या जीव दस वर्षों तक कहीं एक स्थान पर टिक जाए, तो वह या तो सड़ने लगता है, नहीं तो वह अपने पांव जमाए रखने के लिए कोषिष में लग जाता है । मनुष्य–इतिहास में इसी बिन्दु से तानाषाही का जन्म होता है । यह सबसे पहली चोट मनुष्य की कोमलता पर, उसके मूल्यों पर करती है । फिर उसकी चोट लोकतंत्रात्मक संस्थानों पर होती है । और हर तानाषाह विरोधी दलों का मजाक उड़ाने और उनकी घोर निन्दा करने की नीति अपनाता है । इसका नतीजा यह होता है कि लोकतंत्र पर से, मनुष्य पर से लोगों का विष्वास इस हद तक उठ जाता है कि देष और समाज अपने–आपको भीतर ही भीतर खोखला, मृतप्राय, उदास, भाग्यवादी मानने को मजबूर होने लगता है ।

लोकतंत्र मतलब मनुष्य को इस विनाष से बचाने का सिर्फ एक उपाय है – रोना, आलोचना और वस्तुस्थितियों का मात्र विष्लेषण करना बिल्कुल बंद करके अपने बचे हुए मनुष्य के पास लौट चलें और लोगों से मिलकर, लोगों से, लोगों के सामने एक ठोस राजनीतिक विकल्प, बदल की प्रतिष्ठा करें ।

ऐसी कोई वस्तु नहीं जो जल से अधिक कोमल और निर्बल है । ऐसा कोई समाज नहीं जो एक ष्षासन में लगातार बीस–पच्चीस वर्षों तक पड़े रहने के कारण निर्बल और पतित न हुआ हो, लेकिन कठोर और दृढ़ वस्तु और षक्ति पर आक्रमण करने में इनसे बढ़कर और कोई दूसरा नहीं ।

इतिहास गवाह है कि चन्द लोगों के हाथ में जैसे–जैसे देष की षक्तियां केन्द्रित होती जाती हैं, देष की समस्याएं उलझती जाती हैं । सत्ता हड़पने और उसे बनाए रखने के लिए गुणों की आवष्यकता होती है, उनसे एक पिछड़ी हुई अर्थव्यवस्था की जटिल समस्याएं हल होने के बजाय उलझा दी जाती हैं।

आजादी के बाद कांग्रेस ने जान–बूझकर इस मुल्क में बहुदलीय, विविध विष्वासीय राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक संगठनों को बढ़ावे दिए, ताकि उसके मुकाबिले में आने वाले विरोध पक्ष को निस्तेज, प्रभावहीन ही न कर सके, अवसर आने पर वह विरोध का संचालन भी स्वयं कर सके और अपने मनोरंजन के लिए वह किसी विरोधी को खरीद भी सके ।

वह अच्छा नागरिक नहीं जो एक खराब सरकार को बर्दाष्त करता है ।

वह विरोधी नहीं जिसकी नजर सत्ता पर है ।

वह विकल्प नहीं दे सकता, जिसमें त्याग नहीं, सहिष्णुता नहीं, संस्कृति नहीं । विकल्प की आग नीचे, बहुत ही नीचे और गहरे जलाई जाती है – तभी पदार्थ पककर चेतन होता है । ऊपर आग जलाने से बर्तन की खिचड़ी तक नहीं पकती ।

पहले मनुष्य, फिर नीति, फिर राजनीति ।

इस राजनीति का मैं ठीक से नाम नहीं जानता, किन्तु मैं इसे 'मार्ग' नाम से पुकारना चाहूंगा । और अपनी उत्तमोत्तम योग्यता और संस्कारों द्वारा इसके लिए षब्द खोजकर उसे 'महान' कहना चाहूंगा । महान का अर्थ है विरोध करना, विरोध का मतलब है आगे बढ़ना, आगे बढ़ने का अर्थ है दूर तक जाना और दूर तक जाने का मतलब है विपरीत दिषा में कदम बढ़ाना ।

इस प्रकार वह मार्ग महान है ।
आकाष महान है
पृथ्वी महान है
और मनुष्य महान है ।

संसार में कुल चार महान हैं और उनमें एक मनुष्य महान है ।

मनुष्य अपने–आपको पृथ्वी के अनुरूप ढालता है, पृथ्वी अपने–आपको आकाष के अनुरूप ढालती है, आकाष अपने–आपको मार्ग के अनुरूप ढालता है और मार्ग अपने–आपको प्राकृतिक क्रम के अनुरूप ढालता है । उस प्राकृतिक क्रम के अनुरूप हम स्वयं को, मनुष्य–मात्र को बदल दें, यही है सच्चा विरोध, यही है विकल्प का श्रीगणेष !

मीटिंग के बाद कुछ नययुवकों ने विक्रम को आ घेरा । उन्होंने पूछा – प्राकृतिक क्रम के अनुसार बदलाव का क्या मतलब है ? विक्रम ने बताया – प्रकृति हर क्षण बदलती है, स्थिरता, ठहराव के खिलाफ हर वक्त लड़ती हुई आगे

बढ़ती है । इस प्रकृति का मतलब केवल वनस्पति–षासन नहीं, बल्कि अपने देष की प्रकृति, अपने समाज और संस्कृति की प्रकृति – इस विराट् प्रकृति से स्वयं को हर क्षण जोड़े हुए, इसीके अनुरूप परिवर्तन । इसीके भीतर से विरोध और संघर्ष ।

एक युवक ने मार्क्स का नाम लिया ।
दूसरे ने माओ का
तीसरे ने गुरिल्ला युद्ध का
चौथे ने लेनि का ।

विक्रम ने कहा – ये सब वैज्ञानिक सत्य हैं । और इन सबके आविष्कार एक विषेष देष–काल अर्थात् प्राकृतिक सत्यों के भीतर, उनके अनुरूप प्रयोगों से हुए हैं । संघर्ष परम सत्य है विरोध और बदल के लिए । पर यह कौन–सा–संघर्ष–विज्ञान हमारी प्रकृति के अनुरूप होगा यह बुद्धि के स्तर पर नहीं, कर्म और व्यवहार – मतलब संघर्ष के बीच से ही, उसीकी प्रक्रिया से पैदा होगा । इसे हम कोई पुस्तक पढ़कर नहीं खोज पाएंगे, इसका आविष्कार होगा हमारे संघर्षकर्म के भीतर से ही । हमारे देष की प्रकृति और इसकी मनीषा के अनुरूप हमारी भूमि पर अपना नया मार्क्स, नया माओ, नया चौग्वारा आएगा ।

प्रकृति पुराने पुष्पों से श्रृंगार नहीं करती
हर नये कर्म के लिए संघर्ष के नियमों में भी परिवर्तन लाना पड़ता है
प्रकृति हर क्षण बदलती रहती है ।

विक्रम अपार जनता से घिरा हुआ था । बहुत दूर–दूर से वे तमाम लोग आए थे – जहां–जहां विक्रम अब तक गया था, जहां लोगों से उसका सम्पर्क हुआ था ।

विक्रम ने बैताल पांड़े के कान में कहा – मित्र, मैं किसी सौन्दर्य के साथ थोड़ी देर रहना चाहता हूं । बोलने से ऊब गया हूं ।

बैताल पांड़े ने मंच पर जाकर घोषणा की – भाइयो और बहनो, कल प्रातःकाल आठ बजे हम फिर यहीं मिलेंगे, तब तक के लिए विदा !

पर कौन देता है विदा ! विक्रम के पीछे–पीछे बाहर से आई हुई सारी अपार जनता चलने लगी। कितनी गाड़ियां, कारें आईं विक्रम की सेवा में, पर उसने सबको मना कर दिया ।

अजब दृष्य । आगे–आगे विक्रम । विक्रम की बगल में बैताल पांड़े – बेहद नाराज उस जनता पर – वह इस तरह पीछा क्यों नहीं छोड़ रही ? चारों ओर पुलिस के लोग, षहर में अमन–षांति के खतरे से सावधान ।

जिधर से वह भीड़ गुजरने लगती, उधर की दुकानें बंद होने लगतीं । ट्रैफिक के लिए रास्ता रूक जाता ।

धीरे–धीरे अंधेरा होने लगा । चलते–चलते एकाएक मौका पाकर बैताल पांड़े ने कहा – चलो, यहां से भाग चलें ।

बैताल पांड़े एक गली में भाग निकले । पर विक्रम ने रूककर लोगों से कहा – भाइयो, मैं किसी सुन्दरी से मिलने जा रहा हूं । कल सुबह भेंट होगी ।

नगर–सुन्दरी का चुनाव

बैताल पांड़े विक्रम को अपने संग लिए उसी नयनतारा की खोज में चल पड़े । नयनतारा का पता पांड़े के हाथ में था । वह आनन्द पर्वत की एक कोठी का पता था ।

आनन्द पर्वत का नाम सुनते ही विक्रम के मन में सिद्धलोक के सपने उगने लगे । उसे पैदल चलते हुए ऐसा लगने लगा, मानो वह सिद्धलोक की यात्रा पर चल रहा है । षहर में चलते हुए उसे लगता है, जैसे लोग षोक में आनन्दमग्न हैं । मानो वे कोई महायज्ञ कर रहे हैं अपनी उदासी का । और विक्रम को लग रहा है वह एक षिषु की भांति है, जिसकी मुस्कान अभी फूली नहीं है ।

आनन्द पर्वत काफी ऊंचाई पर बसा हुआ दिल्ली का नगर–भाग है । दोनों मित्र ऊपर चढ़ रहे हैं।

बैताल पांड़े ने हांफते हुए कहा – मित्र, लोग कहते हैं हम मूर्ख हैं । विक्रम बोला – साधारण लोगों को तेज और बुद्धिमान होने दो, अच्छा है, हमें वे मूर्ख कहें । सब मनुष्यों का एक उद्देष्य होने दो, एक हम ही गंवार और निरूद्देष्य

रहें । ऊपर देखो बैताल, देखो वह क्षीण होता हुआ चन्द्रमा .... लगता है वह षून्य में भटक गया है और उसे कहीं विश्रान्ति नहीं, मेरी तुलना उसी चन्द्रमा से की जा सकती है। नहीं, नहीं, तुलना नहीं, वह चन्द्रमा तो मेरा भाई है । क्योंकि मैं पृथ्वी मां का पुत्र हूं – भारत मां !

नयनतारा सहसा अपनी कोठी में उस तरह विक्रम को देखकर घबड़ा गई । वह कहीं जाने के लिए श्रृंगार कर रही थी ।

बैताल पांड़े ने कहा – सुन्दरी, मुझे भूख लगी है, कुछ खाने को दो ।

नयनतारा ने कहा – माफ कीजिए, इस वक्त घर में काफी लोग बैठे हैं ।

– कौन लोग हैं, सच बताना ।

– रास्ते में बताऊंगी । क्या आप लोग मेरे साथ चल सकते हैं ?

नयनतारा उन दोनों को गाड़ी में बिठाकर ओबेराय होटल की तरफ रवाना हुई । उसने रास्ते में जैसे ही कुछ बताना षुरू किया, विक्रम ने उसे रोक दिया – सुन्दरी, कुछ बोलो नहीं, आज मैं कुछ क्षण तुम्हारे सौन्दर्य को निहारकर षांत होना चाहता हूं ।

– यह मेरा परम सौभाग्य होगा ।

पांड़े को लेकर वह गाड़ी होटल की ओर चली गई । वे दोनों इंडिया गेट पर उतर गए । हरी घास पर, चांदनी में नयनतारा को बिठाकर विक्रम उसके सौन्दर्य को निहारने लगा ।

नयनतारा ने पूछा – क्या आज मैं इतनी सुन्दर हूं ?

– हां, क्योंकि आज मैं सुन्दर हूं ।

– और उस दिन, तब ?

– उस दिन, वहां मैं उस पृथ्वी पर संघर्ष के बीज बोने में लगा था ।

– कैसा संघर्ष ?

– मनुष्य–जागरण के संघर्ष–बीज, ताकि वह पूरी व्यवस्था को बदल सके ।

नयनतारा आगे कुछ और बोलने जा रही थी, विक्रम ने उसके मुंह पर हाथ रख दिया – सौन्दर्य को कुछ भी कहने की जरूरत नहीं ! बस, तुम मेरी आंखों में देखो, मैं तुम्हारे नयनों में ।

दोनों अपलक निहारने लगे । नयनतारा की आंखों में आंसू उमड़ आए । वह कुछ कहने चली ।

– नहीं, नहीं । मैं सब जानता हूं जो तुम कहना चाह रही हो । तुम वहां क्यों गई थीं, मैं सब जानता हूं । तुम आनन्द पर्वत पर क्या करती हो, तुम्हारे घर में वे कौन लोग थे, सब पता है, मुझे ।

नयनतारा आष्चर्य–चकित होकर बोली – सब पता है ? कौन हो तुम ?

विक्रम ने नयनतारा के मुख को अपने हाथों में लेकर कहा – मेरे पास तीन विधियां हैं, जिन्हें मैं संभाले हूं और जिनकी मेरी मां रक्षा करती है :

पहली सहिष्णुता है
दूसरी आत्मसंयम है
तीसरी है, संसार में, विषेषकर इस भारत देष में प्रथम होने का साहस न करना
सहिष्णुता मुझमें साहस, उत्साह, आनन्द भरती है
आत्मसंयम मुझे कर्म सिखाता है और जय–पराजय के भाव से मुक्त रखता है
और प्रथम न होने का साहस मुझे दृष्टि देता है ।

इसके उपरान्त वहां मौन छा गया । नयनतारा का मुख अपने हाथों में लिए विक्रम उसे एकटक निहारता रहा । लगा, वहां चारों ओर कमल के पुष्प खिल गए हैं, अषोक के असंख्य पौधे उग अए हैं ; देवदारू और षिरीख झूमने लगे हैं, केतकी, कदम्ब, चन्दन, बेला, चम्बेली के कुंओं में षिव–पार्वती, मेनका–विष्वामित्र, कृष्ण–राधा, दुष्यन्त–षकुन्तला, उर्वषी–पुरूरवा, षाहजहां और मुमताजमहल घूम रहे हैं –

चारों ओर सूफी–संत गा रहे हैं :

अब अंखिया अलसानी हो
पिया सेज चलो

पिय को खोजन मैं चली आपुहि गई हेराय

आपुहि गई हेराय कवन अब कहै संदेसा !

झरि लागै महलिया गगन घहराय
खन गरजै खन बिजुरी चमकै
लहर उठै सोभा बरनि न जाय ।
सुन्न महल मां अमरित बरसै
मगन मन साधू नहाय ।

मन पवना सेजावन हो तिरबेनी तीर
हम धन तहैं विराजल हो लिहलैं रघुवीर
सुरति गिरति लै जाइब हो पाइब गुरू–प्रीत
कोई जाने संत सुजान उलटे भेद कूँ ।

अचानक बैताल पांड़े की आवाज कौंधी – हे भाई विक्रम, कहां हो ?

– आओ बैताल, समाधि भंग कर दी न !

विक्रम के पास आकर पांड़े बोले – मित्र, आज खूब छककर भोजन किया । अरे वह होटल है कि साक्षात् इन्द्रपुरी है ।

तीनों ओबेराय होटल पहुंचे । पूरा हाल सजा हुआ था । चारों ओर इतनी चमक–दमक कि आंखें चौंधिय जाएं । नयनतारा ने बताया – आज यहां नगर–सुन्दरी का चुनाव है । मेरा भी इसमें एक नाम था, पर अब नहीं भाग लूंगी ।

– क्यों ?

– अब मैं स्वयं सुन्दरी हूं । अब मुझे किसी चुनाव की जरूरत नहीं ।

यह कहकर नयनतारा विक्रम को निहारती रह गई । पर बैताल पांड़े चकचक–चकचक इधर–उधर देख रहे थे । न वह कहीं एक जगह बैठ पा रहे थे, न जैसे कुछ देख पा रहे थे । बार–बार उनके मुंह से निकलता – चारों ओर लबलंग है ।

वाह ! क्या खिटकिल्ल है ।

पष्चिमी धुनों पर संगीत गूंज रहा था । षराब की जैसे नदी बह रही थी । दिल्ली षहरी की स्त्रियां ऐसी लग रही थीं मानो उन्हें कोई नहीं देख रहा है और वे अपने–आपको दिखाने के लिए पागल हो रही हैं ।

विक्रम को याद आया – लोहिया ने कहा था – 'दिल्ली एषिया की सबसे बड़ी वेष्या है ।'

रात के दो बजे तेरह सुन्दरियों में से एक नगर–सुन्दरी का चुनाव हुआ । नाम था मिस चांदनी करनानी । उसे मुकुट पहनाकर मंच पर पेष किया गया ।

नयनतारा का
स्वगत कथन

हम यहां कुल चौदह लड़कियां हैं । हम दो–दो की तादाद में अलग–अलग बंगलों और कोठियों में रहती हैं । हमें कभी–कभी होटलों के कमरों में भी जाकर रहना होता है । हमारे मालिक और संचालक हैं –

'यंग इंडिया इंडस्ट्रियलिस्ट ब्यूरो' के सात सदस्य । हमसे कई तरह के काम लिए जाते हैं । मसलन, स्मगलिंग, डालर और पौंड के एक्सचेंज, खरीद–फरोख्त, बड़े–बड़े अफसरों, अधिकारियों, नेताओं को प्रसन्न कर उनसे उद्योग की सहायता, नये–नये धंधों, कठिन से कठिन कामों को सरकार से हल करना, सरकार की गुप्त खबरों से 'ब्यूरो' को परिचित रखना, ब्लैकमनी को नीचे से ऊपर तक फैलाते रहना, एलेक्षन के दिनों में जगह–जगह चंदे पहुंचाना, घूस देना .... । हमारे साधन और क्रियाकलाप हैं – बड़े–बड़े होटलों में फैषन–परेड, सौन्दर्य–प्रतियोगिता, नये–नये फैषनों और कपड़ों के विज्ञापनों से बड़े–बड़े घरों, महत्त्वपूर्ण परिवारों से सम्बन्ध बनाना । फिल्मस्टार नाइट, जैमषेषन, डांसनाइट, काकटेल डिनर्स, डांस के आयोजनों से ....

विक्रम अचानक हंस पड़ा । और हंसी के गुब्बारे फोड़ता हुआ बोला :

जानने को जानना
न समझना ही सर्वोगत्तम है

न जानने को जाना हुआ समझना, रोग है
वास्तव में उस रोग का रोगी होकर ही
मनुष्य रोगी नहीं होता
इसलिए देवि नयनतारा, तुम संत हो
मैं मूर्ख हूं और तुम मेरी निर्देषिका हो !

बैताल पांड़े को बहुत क्रोध आया – यह क्या बकते हो विक्रम ? विक्रम अपनी हंसी को खत्म करके बोला – भारतवर्ष, जिसका अतीत महान था और वर्तमान निकृष्ट, जिसका इतना बड़ा राज्य है, यह एक ऐसी नदी की तरह है जो नीचे की तरफ बह रही है । सबको मिलकर इसे रोकना होगा ।

अगले दिन ठीक सुबह आठ बजे उसी रामलीला मैदान में उपस्थित लोगों को 'मानव–मंगल केन्द्र', 'पंच चबूतरा', 'सावित्री आंगन' के कार्यक्रमों, वस्तुस्थितियों के लेखा–जोखा के बाद उसने आगे के कार्यक्रम बताए । फिर 'विकल्प लोक' की प्रतिष्ठा की योजना बताई – उसके नैतिक और राजनीतिक धर्म और दर्षन की आधारभूत बातें स्पष्ट कीं :

जै लोक भारत
जै गरीब देष
एक मोटी रोटी
एक मोटा कपड़ा
एक झौंपड़ी

16

विक्रम से एक अंगरेज मिला । उसे इंगलैंड और अमेरिका की यात्रा के लिए निमन्त्रण देने आया था । विक्रम ने उसे अस्वीकार करते हुए कहा – मुझे इंगलैंड और अमेरिका के प्रति कोई दिलचस्पी नहीं। मेरे लिए स्वर्ग–नरक, देष–विदेष मेरा यही अपना देष है । मुझे पष्चिम से कुछ भी लेना–देना नहीं । इंगलैंड–अमेरिका इस देष के लिए अर्थहीन, अप्रासंगिक हैं । इन देषों ने भारत का जितना नुकसान किया है, वह षब्दों में बयान नहीं किया जा सकता । इन देषों में जाने वाले वही भारतीय हैं जो भ्रष्टाचार, झूठ, प्रपंच की देन है । वहां या तो व्यापारी जाते हैं या तस्कर लोग – कोई योगी बनकर, कोई भगवान बनकर या नाचने, बजाने वाले – जिन्हें भारत देष से कोई लगाव नहीं ।

अंगरेज ने कहा – गांधी को भारत की आजादी की लड़ाई की प्रेरणा विदेष से ही मिली ।

विक्रम बोला – तभी यहां क्रांति की जगह उल्टी क्रांति हुई – 'काउंटर रेवलूषन' .... आजादी के स्थान पर यहां आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक गुलामी आई । अंग्रेजी भाषा के जरिये यहां का सारा पढ़ा–लिखा समाज नकलची, कल्पनाविहीन, कायर और भ्रष्ट रहा । अपनी मिट्टी और समाज से वह कटकर त्रिषंकु लोक में चमगादड़ की तरह लटक गया ।

अंगरेज ने पूछा – आप चाहते क्या हैं ?

विक्रम बोला – यह मेरे कार्यों द्वारा ही बताया जाएगा । केवल बोलना, केवल विष्लेषण करना, मैं अघन्य अपराध समझता हूं । मैं चाहूंगा – यहां अंगरेजी भाषा और षिक्षा खत्म हो । जो भी कहीं अंगरेजी बोलता हुआ पाया जाए, उसे समाज से बहिष्कृत किया जाए । अगले दस वर्षों तक यहां का कोई भी व्यक्ति विदेष–यात्रा न करने पाए । भारतवर्ष विदेषों से भिक्षा लेना बन्द करे । यहां की भिखारी संस्कृति आग लगाकर भस्म की जाए । जो कुछ भी अपनी मिट्टी का है, वही अपना है .... वही हमारा सपना है।

अगले दिन विक्रम को नयनतारा ने बताया – सरकार आपको लेकर चिंतित है । तीन उपाय सोचे जा रहे हैं आपके बारे में –

या आपको गिरफ्तार करके जेल में डाल दिया जाए
या आपकी हत्या कर दी जाए
या कहीं वाइसचांसलर बना दिया जाए

विक्रम ने कहा – मुझे तीनों मंजूर हैं, क्योंकि तीनों का अर्थ वर्तमान व्यवस्था में एक ही है ।

और ऐसा ही हुआ ।

जिस दिन विक्रम दिल्ली से बाहर उत्तर प्रदेष की ओर बढ़ रहा था, षिक्षा मंत्रालय से दो अधिकारी आए उससे

मिलने । साथ में वाराणसी के एक एम0 पी0 भी थे ।

विक्रम
वाइसचांसलर

विक्रम ने बनारस हिन्दू विष्वविद्यालय का उपकुलपति होना स्वीकार कर लिया । दिल्ली छोड़ने से पहले दिल्ली विष्वविद्यालय के कुछ छात्रों ने उसे आ घेरा – विष्वविद्यालय में ले जाकर उसके विचार सुनने के लिए ।

नयनतारा के मना करने के बावजूद विक्रम वहां भाषण देने गया । पर जैसे ही वह बोलने लगा, छात्रों के एक विषेष वर्ग ने उसपर जूते, अंडे, छिलके बरसाने षुरू किए । एक वर्ग हंसकर मजे लेने लगा । दूसरा वर्ग उदास रहा, तीसरा वर्ग चुपचाप जाने लगा और एक वर्ग ने उनसे संघर्ष किया ।

विक्रम ने कहा – मेरे षब्द समझने में बहुत आसान है, और उन्हें अमल में लाना भी बहुत आसान है, लेकिन तुम सबमें से ऐसे कितने हैं जो उन्हें समझ सकते हैं और अमल में ला सकते हैं ? जितने भी लोग ऐसे हैं, वे मरे साथ आएं ।

यह कहकर विक्रम बाहर निकलने लगा । उसपर फिर आक्रमण षुरू हुए – गालियों से, षब्दों से, अंडों और जूतों–पत्थरों से । छात्र उसकी रक्षा में उसके चारों ओर घिर गए । बैताल पांड़े और नयनतारा अंगरक्षक बने तत्पर थे ।

विक्रम ने सारी भीड़ को चीरकर, सामने की एक चहारदीवारी पर अकेले निर्भय खड़ा होकर कहा – तुम लोग मेरे प्यारे, लार्ड मेकाले की सन्तान हो । तुम्हारे संस्कार, तुम्हारी सारी षिक्षा तुम्हें तुम्हारी जमीन से तोड़कर षून्य में लटकाती है । तुम्हारे सारे विरोध महज अपने निजी स्वार्थों के लिए हैं । तुम अपने सीमित क्षेत्र से बाहर निकलकर बुनियादी प्रष्न, समस्या से जुड़कर नहीं सोचते । तुम लोग केवल अपने–अपने नगरों, षहरों तक की समस्याओं से उलझे हो । तुम्हारे प्रष्नों में दिल्ली से बाहर गांव–कस्बों के असंख्य गरीब, षोषित, मजदूर, कर्मचारी, माली, भंगी, जमादार, झुग्गी–झोंपड़ी वालों के बीच में ले जाओ । उनके संघर्षों से ये जुड़कर, तपकर षुद्ध हों पहले, फिर उनसे अपना 'मानव–मंगल दल' तैयार करें । कर्म के भीतर से अपना दर्षन ढूंढ़े । उन्हें जगाते हुए स्वयं जगें । उनके साथ जीकर स्वयं जियें। दो वर्षों के भीतर हर षहर, हर नगर, हरगांव और कस्बे में – जहां–जहां तक मनुष्य मरता–जीता हो, वहां–वहां तक 'लोक–फौज' तैयार हो । अदालतों में, दफ्तरों में, कार्यालयों और उद्योगसमूहों में, दूकानों पर, षिक्षा–संस्थानों में लोक–फौज के सिपाही तैनात हों और हर झूठ, बेईमानी, भ्रष्टाचार के खिलाफ संघर्ष में जुट जाएं । षहर के हर मुहल्ले में, हर कस्बे और गांव में जनता की षिकायतें सुनने और उनसे लोहा लेने के लिए केन्द्र खोले जाएं तथा पतन और भ्रष्टाचार के खिलाफ युद्ध छेड़ा जाए ।

नयनतारा को सारा संचालन–भार सौंपकर विक्रम दिल्ली से विदा हो गया ।

पहला पड़ाव
हर हर गंगा

विक्रम की बनारस–यात्रा का पहला पड़ाव मेरठ में हुआ । आसपास की तमाम जनता, विषेषकर विद्यार्थी–समाज विक्रम को सुनना चाहता था ।

वह षाम के आठ बजे मेरठ पहुंचा था । और वहां पड़ाव डालकर पूरे देष के 'मानव–मंगल दल' केन्द्रों और सम्बन्धित व्यक्तियों को 'लोक–फौज' की प्रतिष्ठा और उसके कार्यक्षेत्र और नीति के बारे में रात–भर पत्र लिखता रहा । बैताल पांड़े रात–भर खर्राटे भरकर सोते रहे ।

प्रातःकाल योगासन और सूर्यपूजा के बाद विक्रम ने मेरठ कालेज के मैदान में जनता और छात्रों के बीच बोलना षुरू किया – इतने वर्ष बीत गए, हम अभी तक अपने देष के संसदात्मक लोकतंत्र को दूसरा बाजू नहीं दे सके कि हम उसे सव्यसाची कह सकते – उसे दूसरा पंख नहीं दे सके कि वह उड़ान भर सकता । पर क्या इस देष को इस दूसरे बाजू और पंख की जरूरत थी या अब भी है ? यह एक सवाल है जो आम तौर पर वे लोग पूछत हैं जो षायद

ईमानदारी से ऐसा मानते हैं कि प्रत्येक देष की एक मनीषा होती है । मनीषा माने संस्कार, प्रकृति, समझ, चेतना । वह देष अपनी मनीषा के अनुसार अपनी सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक संस्थाओं का रूप ढाल लेता है । ऐसे लोग यह मानते हैं कि भारतवर्ष की मनीषा मूलतः एकलवादी है । मतलब, भारत की आम जनता आध्यात्मिक, सामाजिक और राजनीतिक क्षेत्रों में एक सत्ता की उपासना में विष्वास रखती है और इसके अनुसार उसने आजादी के बाद से केवल एक कांग्रेस को राजनीतिक सत्ता सौंप दी है और उसका काम समाप्त हो गया है – यह सत्य नहीं, महज ऐसा अंधविष्वास है जो हमारी इतनी लम्बी दासता और गुलामी की उपज है । सच्चाई यह है कि कांग्रेस ने आज तक कुल चालीस प्रतिषत मतदान प्राप्त किया है, षेष साठ प्रतिषत मतदाताओं ने हमेषा कांग्रेस के खिलाफ मत दिया है । मग रवह साठ प्रतिषत जिन राजनीतिक दलों में बंटता है व हैं कौन ? क्या वे वास्तव में विरोधी दल हैं ? क्या उनमें विकल्प देने का कर्म और दर्षन है? क्या इनमें से अधिकांष दल कांग्रेस में से षुद्धीकरण की प्रक्रिया के फलस्वरूप निकले अथवा निकाले गए लोगों, तत्त्वों से नहीं बने ?

सहसा बैताल पांड़े ने आकर विक्रम से कहा – हे मित्र, सुनो, बहुत बमचक मत करो ! उधर से लोग काला झंडा लिए आय रहे हैं । जूतों की माला उनके हाथ में है !

'विक्रम मुर्दाबाद' के नारे लगाते हुए, हाथों में काले झंडे लिए प्रदर्षनकारियों की एक छोटी–सी टुकड़ी करीब आ गई ।

विक्रम ने कहा – देख लो, यही है स्वतन्त्र भारत की तस्वीर ।

छात्रों ने दौड़कर प्रदर्षनकारियों को पकड़ लिया । पता चला – मेरठ के एक सेठ ने, जो कांग्रेस दल का जिला अध्यक्ष है, पांच–पांच रूपये में प्रदर्षनकारियों को खरीदा है !

दूसरा पड़ाव आगरे में
तीसरा कानपुर
चौथा लखऊ
पांचवा इलाहाबाद – सर्वत्र उसी 'मानव–मंगल दल', 'लोक–फौज' की प्रतिष्ठा करता हुआ चला गया ।

समुझि बूझि
वन चरना
हे हरिना

प्रातःकाल गंगा में स्नान करके, विष्वनाथ की पूजा कर विक्रम ने ठीक ग्यारह बजे हिन्दू विष्वविद्यालय के समस्त छात्रों और अध्यापकों की सार्वजनिक सभा में उपकुलपति के रूप में घोषणा की – अब इस विष्वविद्यालय में षिक्षा का माध्यम केवल हिन्दी भाषा होगी । सारे अध्यापक विष्वविद्यालय के ही क्षेत्र में रहेंगे । अध्यापक और छात्र समानरूप से प्रातःकाल ठीक पांच बजे नहा–धोकर तैयार होंगे । हर छात्रावास में सामूहिक रूप से यज्ञ होंगे और सबको यज्ञ में भाग लेना होगा । यज्ञ के बाद सबके लिए योग–व्यायाम अनिवार्य होगा । नाष्ते में, दोपहर और रात के भोजन में प्रत्येक व्यक्ति समान रूप से एक मोटी रोटी और एक सब्जी खाएगा । पहनावा होगा सबका एक मोटी धोती और एक मोटा कुर्ता ।

पूरे विष्वविद्यालय और बनारस षहर–भर में विक्रम की चर्चा छिड़ गई । उसकी घोषणा को लेकर चारों तरफ वाद–विवाद होने लगे ।

अगले दिन प्रातःकाल बहुत ही थोड़े–से छात्र और अध्यापक पांच बजे सुबह तैयार मिले । छात्रावासों में यज्ञ की अग्नि जली । गायत्री मंत्र के पाठ से दूषित वातावरण की टकराहट हुई । अनेक अध्यापकों ने छात्रों को भड़काया था ।

फिर क्या था, दो ही तीन दिनों में विक्रम की घोषणा के खिलाफ छात्रों ने प्रदर्षन षुरू किए । हड़ताल की धमकी दी ।

विक्रम ने नई घोषणा की – पूरे विष्वविद्यालय के छात्रों की एक पंचायत बने, बाहर प्रतिनिधि छात्रों की । वह पंचायत इस विषय में फैसला ले ।

पूरा छात्र–समाज बाहर प्रतिनिधियों के चुनाव में लगा । आपस में मारपीट, उपद्रव षुरू हुए । चारों ओर अषान्ति, हिंसा । विक्रम छात्रों के बीच घूमता हुआ पूछता – देखो, तुम लोग पढ़े–लिखे होकर भी अपने प्रतिनिधियों के चुनाव क्यों नहीं कर पा रहे ? इसके कारण तुम्हें ही ढूंढ़ने होंगे ।

विक्रम ने कहा – अच्छा बारह का चुनाव कठिन है तो पहले सौ प्रतिनिधियों को चुनो ।

सौ प्रतिनिधियों के चुनाव में आसानी पड़ी ।

सौ से कहा गया पचास चुनने के लिए ।

पचास ने फिर पचीस चुने ।

और पचीस से अन्त में बारह चुने गए ।

वही बारह सदस्यों की पंचायत निर्णय लेने बैठी । हर सदस्य दूसरे का विरोधी । तमाम पिछली, व्यक्तिगत बातें उभर–उभरकर पंचायत के सामने आतीं और मूल विषय और समस्या पर कोई नहीं आ पाता ।

एक सप्ताह की बैठक के बाद पंचायत के लोग विक्रम के पास आए, बोले – श्रीमान्, हममें परस्पर इतनी फूट, इतनी असहमति है कि हम मजबूर हैं किसी निर्णय पर आने के लिए । कृपया आप हमारी मदद करें ।

विक्रम ने कहा – देखो, तुम लोग अपने एक छोटे–से अधिकार को भी कर्म और व्यवहार का रूप नहीं दे सकते । इसका कारण क्या है ? क्योंकि तुम स्वयं कुछ नहीं सोचते । बाहर के राजनीतिक दल तुम्हें अपने हाथों के कठपुतले बनाए हुए हैं । तुम छात्र नहीं कठपुतले हो । इसीलिए न तुम्हारा षरीर स्वस्थ है न मन । मन से आगे भी कुछ है, कभी तुम्हें याद भी नहीं आता । तुम्हें इसी अवस्था में भ्रष्ट, बीमार, विचारषून्य, चरित्रहीन बनाकर यह राजनीति अपनी लीला रचे रहना चाहती है । तुम्हें पढ़ाया जाता है – नौकर, षोषक, कायर होने के लिए, तुम्हें संस्कार मिलता है अपने समाज, अपनी धरती, यहां के क्रूर यथार्थ से कट जाने को, तुम्हें जो फिल्में दिखाई जाती हैं, जो भोजन और वस्त्र मिलता है तुम्हें, उनसे तुम एक अयथार्थ, नकली, झूठी, दुनिया में रहने लगते हो । जाओ, निर्णय तुम्हें ही लेने हैं – जैसे भी हो!

अंततोगत्वा पंचायत इस निर्णय पर पहुंची – एक मोटी रोटी और एक सब्जी के साथ एक दाल भी आवष्यक है । जो रोटी न खा सके उसे मोटा चावल का भात जरूरी है । यज्ञ में वही भाग ले जिसके लिए वह संभव हो, पर योग–व्यायाम सबके लिए अनिवार्य होगा ।

विक्रम ने विज्ञप्ति जारी की – छात्रों के प्रतिनिधियों के विचार और निर्णय हमें स्वीकार हैं । और अब यही छात्र–प्रतिनिधि–दल विष्वविद्यालय के संचालन में भी अपने निर्णय देगा ।

इस नई विज्ञप्ति ने अध्यापक–समाज, विष्वविद्यालय के संचालक और अधिकारी वर्ग में जैसे आग लगा दी ।

विक्रम अपने मित्र बैताल पांड़े के साथ एक छात्रावास के कमरे में रहता था । छात्रों के साथ वही सामान्य भोजन करता । उनके संग यज्ञ, पूजा, योग–व्यायाम में भाग लेता । उन्हींके साथ जीता, पढ़ता, बातें करता और दिन–रात अपने कार्यों में डूबा रहता ।

अध्यापकों का एक बहुत बड़ा वर्ग विक्रम के विरोध में उठ खड़ा हुआ । समाचार–पत्रों में विक्रम के खिलाफ लेख, टिप्पणियां और सम्पादकीय प्रकाषित होने लगे ।

विष्वविद्यालय में न कभी कोई छात्रों की हड़ताल होती न प्रदर्षन, न कोई हिंसा और अषान्ति के समाचार मिलते ।

छात्र–प्रतिनिधि विष्वविद्यालय की कार्यकारिणी, षिक्षण–समितियों आदि की बैठकों में भाग लेते और सारे निर्णयों में हिस्सेदारी लेते ।

पर धीरे–धीरे व्यवस्था विक्रम के विरोध में सिर उठाने लगी और सरकार अनुभव करने लगी कि जिस विक्रम को व्यवस्था के चक्र–व्यूह में डालकर वह निष्क्रिय और अपंग करना चाहती थी, उस नाटक का फल उल्टा हुआ ।

अब व्यवस्था और सरकार उन उपायों की खोज में लग गई जिससे विक्रम को वहां से हटा दिया जाए ।

उपाय सामने थे और संघर्ष प्रत्यक्ष । एक दिन विक्रम ने छात्रों की सभा में बताया – यह पूरा देष दो वर्गों में बंटा है । एक ओर है व्यवस्था और दूसरी ओर है मानव–समाज । व्यवस्था परस्पर तीन भुजाओं से मिलकर सषक्त है –

पहली भुजा है राजनेता ।

दूसरी भुजा है पूंजीपति ।

और तीसरी भुजा है अफसर, अमला तंत्र ।

इस संगठित षक्ति के सामने असंगठित जातियों, वर्गों, निजी स्वाथों में बंटा हुआ कमजोर मनुष्य समाज है । यह समाज भी दो भागों में विभक्त है । पहला भाग पढ़े–लिखे, नौकरीमुखी, समझौताधर्मी षहरी लोगों का, जो कर्म नहीं केवल विचार और विष्लेषण करता है, जो ज्यादा से ज्यादा भोग की सुविधाएं न पाकर केवल व्यवस्था की आलोचना करता है, हड़तालें करता है, पर व्यवस्था को बदलता नहीं, उसका अंग बन जाना चाहता है । इसकी भाषा विदेषी, इसके विचार दूसरों से उधार लिए, इसका गुस्सा निस्तेज, इसका दर्षन यथार्थ, इसका सारा चरित्र फिल्मी । और दूसरा भाग है

किसान–मजदूरों का, षोषितों, अछूतों और दरिद्र गरीबों का । इनमें विचार नहीं, अंधविष्वास ; कर्म नहीं, भाग्य ; अधिकार नहीं, भाग्यफल ; परिवर्तन नहीं, मृत्युषांति ।

ये दोनों वर्ग एक–दूसरे से कटे, टूटे हुए, परस्पर अपरिचित – अलग–अलग दो दुनिया में बंटे हुए । मावन के इसी विराट जंगल में षिकार खेल रही है व्यवस्था – अमलातंत्र, नेता और पूंजीपति, जिसकी रखैल है बुद्धिजीवी ।

जलाओ
प्रकाष
होगा

नई दिल्ली से षिक्षामंत्री का एक पत्र मिला विक्रम को । वह दिल्ली बुलाया गया, अपने ऊपर लगे अभियोगों की सफाई देने के लिए । विक्रम ने दिल्ली जाना स्वीकार किया ! उसने पत्र के जवाब में लिखा – उत्तरदायी मैं केवल अपने छात्रों के प्रति हूं । राजतंत्र, अफसरषाही विष्वविद्यालय से दूर रहे ।

इसपर फिर एक जांच–मंडल आया दिल्ली से ।

इसपर छात्रों ने असन्तोष प्रकट करने के लिए आंदोलन किए । छात्रों ने पूरे पाठ्क्रमों और षिक्षा–दृष्टि में आमूल परिवर्तन के लिए मांग षुरू की ।

विक्रम ने छात्रों से कहा – तुम लोग मांग करते हो ? भिखमंगे हो ? स्वराज्य के इतने वर्षों बाद भी राजनीतिक भिखमंगापन, बेबसी नहीं गई !

उसने उद्बोधन दिए :

मांगो मत, प्राप्त करो
प्राप्त करने के लिए सत्ता हाथ में लो
सत्ता लेने के लिए देष को विकल्प दो
विकल्प देने के लिए भारत की आत्मा को
पहचानो । और इसके प्रति लोगों में
अभिज्ञान और निष्ठा पैदा करो
सोचो, अनुसंधान करो, इतनी विकास–योजनाओं,
निर्माण–कार्यों, षिक्षा, बुद्धि–चमत्कार, भाषणों, नारों
के बावजूद भारत की आत्मा की कहीं
अभिव्यक्ति क्यों नहीं हो पाती ?
जाओ, तलाष करो, इस क्षत–विक्षत, भग्न समाज
और व्यक्ति में भारत की मानवता की
आत्मिक, नैतिक और मनोवैज्ञानिक अस्मिता
और अस्तित्व कहां है ?
कहां है स्वतन्त्र भारत की आत्मा ,
उसका षील सौन्दर्य
और आत्मिक व्यक्तित्व ?

विष्वविद्यालय छोड़कर हजारों छात्र अपने–अपने गांवों और नगरों में चले गए । मेडिकल, इंजीनियरिंग, कामर्ष और साइंस के षेष छात्र विक्रम के विरोध में आ खड़े हुए । उनके पीछे उनके अध्यापक मौजूद थे और सबके परोक्ष में वही व्यवस्था कार्यरत थी ।

और एक दिन ।

विक्रम मेडिकल कालेज के छात्रों के बीच जा घुसा ।

उसने अत्यन्त प्रतिभाषाली पांच छात्रों को बुलाकर सबके सामने पूछा – तुम लोग सच–सच बताना, वरना षाप पड़ेगा, तुम लोग डाक्टर क्यों बनना चाहते हो ?

– क्योंकि डाक्टर बनाना हमें पसन्द है ।

– डाक्टर बनकर तुम लोग बीमारियों और रोगों से लड़ोगे, मनुष्य को स्वस्थ बनाने में लगोगे ?

– नहीं, हम लोग डाक्टर इसीलिए बनने जा रहे हैं कि हम ज्यादा से ज्यादा धन कमा सकें । रोगों और बीमारियों से लड़ना, उन्हें खत्म करना हमारा काम नहीं, हमारा काम होगा दवा और उपचार, और उसके लिए पैसे, फीस ...

– जै बस भोलेनाथ !

यह कहकर विक्रम मेडिकल कालेज से इंजीनियरिंग कालेज में आया । वहां भी उसने वहीं लीला की । पांच छात्रों को सामने खड़ा कर उसने पूछा :

इंजीनियर होकर, क्या तुम लोग मकान बनाना चाहोगे, जो भारतवर्ष के प्रत्येक परिवार, हर मनुष्य के लिए समान रूप से उपलब्ध हो सके ?

– नहीं, हम हर मनुष्य के लिए इंजीनियर नहीं होगें । हम ऐसे कुछ मकान बनाना चाहेंगे जिन्हें और लोग बनवा पाने की हिम्मत न कर सकें !

– अच्छा, तुम कोई ऐसा पुल, ऐसी सार्वजनिक इमारत, ऐसी सड़क बनाना चाहोगे, जिसे लोग वर्षों तक इस्तेमाल कर उसकी सुन्दरता, मजबूती की चर्चा कर सकें ?

– जी नहीं, हम ऐसे पुल, ऐसी सड़कें, ऐसी इमारतें बनाएंगे जो बनते ही ढहने, टूटने और गिरने लगें ।

– षाबाष बेटे, डटे रहो !

विक्रम वहां से चलकर, दूर एक वटवृक्ष के नीचे जाकर बैठ गया और रोने लगा । उधर से दक्षिण भारत और बंगाल–आसाम की कुछ लड़कियां एकसाथ अपने होस्टल से लाइब्रेरी जा रही थीं । सारी छात्राएं उस तरह विक्रम को रोते देखकर मूर्तिवत् खड़ी रह गईं । उनकी दो प्रतिनिधि सखियां – राधा बोस और उर्वषी मेनन विक्रम के पास आईं । वह आंख बन्द किए निःषब्द रो रहा था ।

आंसुओं की जैसे धारा बह रही थी । दोनों लड़कियां चुपचाप चली गईं ।

सहसा वटवृक्ष से हनुमानजी उतरे, प्यार से बोले :

– बोलो, तुम क्या चाहते हो ?

– कुछ नहीं प्रभु ! केवल आपका आषीर्वाद !

हनुमानजी हंसे – मुझे मालूम है, किस दुख–दर्द से तुम रो रहे हो, कहो तो मैं उसे मिटा दूं ?

– नहीं महाराज, हमें बल और विवेक दीजिए, ताकि हम स्वयं उसे मिटा सकें !

हनुमानजी चले गए । क्या करते वहां बैठे–बैठे ? सो वह चले गए ।

विक्रम की आंखों से फिर वही अश्रुधारा । बड़ी मुष्किल की बात । बैताल पांड़े भी नहीं । दोपहर को षहर में लड्डू खाने गए, सो अब तक न लौटे ।

सो भइया, विक्रम चुपचाप रोता रहा ।

एकाएक बिजली तड़पी – बिना किसी बादल या हवा के । एक जबरदस्त हुंकारा हुआ ।

और सामने उपस्थित थे अष्वत्थामा ।

गरजते हुए बोले – बोलो, किसका संहार करूं ? कौन हैं वह, इस तरह तुम्हें रूलानेवाला ?

विक्रम ने कहा – प्यारे भाई, याद नहीं है, रूलाने और हंसाने वाला तो वही है, महाभारत में जिसे तुमने अपषब्द कहे थे । क्योंकि उसने उत्तरा के भ्रूण को जिलाया .... ।

– नहीं, नहीं । उसने मुझे कोढ़ी हो जाने का अभिषाप दिया ।

विक्रम को जैसे उस क्षण भी लगा, अष्वत्थामा ने अपने षस्त्र फेंक दिए, और मुंह छिपाकर रोता–सुबकता हुआ जंगल में भाग गया ।

रात हो आई थी । विक्रम उठा । आंसू सूख चुके थे । उसे चारों ओर से असंख्य कंठों का षोर सुनाई देने लगा था । वटवृक्ष पर जैसे कोई सभा जुट आई थी । कहीं से संगीत की लहरियां आ रही थीं, कहीं से वेणु–वादन, कहीं रथ दौड़ने लगे थे, कहीं से षंख–ध्वनि । जैसे धर्मग्रंथ, पुराण, महाकाव्यों के पृष्ठों में से उठ–उठकर लोग आ रहे थे । विक्रम ने चिल्लाकर कहा – नहीं, नहीं, रूक जाओ वहीं । सामने मत आना । बस, काल के अवगुंठन में छिपे रहना, और हमें देखते जाना । इसीसे तुम्हारी चिरन्तनता, षाष्वतता बनी रहेगी । और इसीसे हमारी यात्रा आगगे बढ़ेगी । सुनो, यंत्रयुग आ गया है । समय सावधान हो गया है । अधिक बुद्धिमान हो गया है । वह अब इतना सीधा नहीं रह गया है कि किसी की एकाकी पदचाप सुनकर उसका अनुगमन करे, उसका मुखापेक्षी होकर अपना चक्र चलाए ।

विक्रम उस वटवृक्ष के नीचे से टहलता हुआ आगे बढ़ा । छोटे–से मैदान को पार कर जैसे ही गायकवाड़ लाइब्रेरी के पिछवाड़े आया, अचानक दीवार के पास के अंधेरे से कुछ छात्र निकलकर उसपर टूट पड़े ।

लगे विक्रम पर प्रहार करने । वह अपनी रक्षा में हाथ उठाने ही जा रहा था कि उसने देखा, वही दक्षिणभारत, बंगाल–आसाम की लड़कियों का गिरोह हिंसक छात्रों से लड़ने लगा था ।

सारे छात्र भागने लगे । विक्रम ने कहा – रूको । रूक जाओ !

सारे छात्र चुपचाप खड़े रह गए । विक्रम ने एक–एक का माथा छूकर कहा – तुम सब निर्दोष हो।

सुनो, सुनो बैताल

छात्रों और कुछ अध्यापकों के एक दल को विक्रम समाज के विभिन्न क्षेत्रों और वहां के जीवन–यथार्थ के अध्ययन और सर्वेक्षण के लिए भेजता है, जिससे कि षिक्षा में पाठ्यक्रमों का समाज के वास्तविक जीवन के साथ सीधे जीवंत सम्बन्ध कायम किया जा सके और अध्ययन–अध्यापन जीवनधर्मी बन सके ।

दूसरी ओर विक्रम विष्वविद्यालय के अधिकारियों, प्रोफेसरों और छात्र–परिषद् के अध्यक्षो व अन्य पदाधिकारियों के कार्यों की जांच षुरू कराता है । लोग विक्रम के खिलाफ तरह–तरह के षड्यंत्र' छात्रों को भड़काकर, मिलाकर, खरीदकर उसके विरूद्ध आंदोलन करते हैं । पर विक्रम अपने जांच–कार्यों में लगा रहता है । उसके साथ छात्रों के वे बारह प्रतिनिधि भी हैं ।

विक्रम ऊपर से नीचे कुलपति से लेकर क्लर्क तक, समूचे भ्रष्टाचार और अधःपतन को सबके सामने ले आता है । और विष्वविद्यालय के छात्रों, अध्यापकों से कहता है – समाज पतन और भ्रष्टाचार में तभी इस तरह गिरता–फंसता है, जब उसे कुछ बड़ा, मूल्यवान कर्म करने का विकल्प नहीं मिलता ।

उठो, अपने समय और समाज को विकल्प दो
परिवर्तन के माध्यम बनो
पुरूषार्थ पहचानो
न दैन्यम्, न पलायनम्
देखो, विचार करो –
एक की विवषता दूसरे की कमाई का साधन
क्यों बनता है ?
इस सच्चाई पर प्रहार करो
षिक्षा का ध्येय कमाई नहीं
समाज के दुखःदर्द का निवारण है
मूल्यों का पुनर्मूल्यांकन और अन्याय तथा
वैषम्य के प्रति रोष है ।

तभी विक्रम को पता चला बैताल पांड़े पिछले दो दिनों से कुछ खा–पी नहीं रहे हैं ।

विक्रम न पूछा – क्यों भाई, क्या बात है ?

पांड़ेजी चुप ।

हजार चुप ।

विक्रम परेषान । काफी मनाने, फुसलाने के बाद पांड़ेजी लम्बी सांस खींचकर बोले – हे मित्र, अब मैं तुम्हारे साथ नहीं रह पाऊंगा ।

– पर क्यों ?

– कुछ कहना–सुनना अब बेकार है विक्रम ।

– पर कुछ कहो तो बैताल !

बैताल पांड़े बोले – तो सुनो कान खोलकर विक्रम ! मैं अब इस नतीजे पर आ गया कि तुम्हारे साथ रहकर मुझे कुछ भी नहीं प्राप्त हो सकता । इतने वर्षों तुम्हारे साथ रहकर मैंने देख लिया और इस सत्य को अनुभव कर लिया कि तुम स्वयं भी कुछ प्राप्त करने के पक्ष में नहीं हो । तुम महान हो, पर मैं तो एक साधारण आदमी हूं । मुझे क्या मिला

तुम्हारे साथ रहकर ? भूख, तबाही, अपमान, चोट, निन्दा, दुख और कभी न समाप्त होने वाला अर्थहीन संघर्ष ....

– सुनो, सुनो, बैताल पांड़े !

– क्या सुनूं , तुम्हारा सिर ? मैं अब उसी अनादि वृक्ष पर जाकर लटक जाऊंगा ।

विक्रम हंस पड़ा ।

पांड़ेजी भरे कंठ से बोले – मुझपर भ्रमदोष का कोई पाप था, जो मुझे अपने गांव–घर से भगाकर तुम्हारे साथ ले आया । अब कहीं जाकर उस पाप का क्षय हुआ । पर इसका प्रायष्चित तो मुझे करना ही होगा, वरना मैं अपने गांव–जवार और पंड़ाइन को मुंह कैसे दिखाऊंगा ?

यह कहते–कहते बैताल पांड़े वहां से चल पड़े । विक्रम उनके पीछे भागा ।

बैताल उसी
वैतरणी के तट पर

बनारस के पास ही एक वैतरणी नदी बह रही थी । उसके तट पर एक पीपल का वृक्ष था । बैताल पांड़े वैतरणी नदी में स्नान कर उसी पीपल के नीचे बैठते हुए बोले – याद करो विक्रम, यही वह पुरातन वृक्ष है, वह देखो, उसी डाल से बैताल लटका था । आज वह जमाना नहीं रहा । अब मैं उस तरह डाल से लटककर प्रायष्चित भी नहीं कर सकता । और तुम मुझे अपने कंधो पर लादकर ले भी नहीं जा सकते । पर हे विक्रम, मैं तुमसे कुछ प्रष्न करूंगा । अगर तुमने मेरे प्रष्नों के उत्तर दे दिए तो मेरा प्रायष्चित पूरा हो जाएगा और मैं सप्रसन्न अपने धाम, मतलब लालगंज गांव लौट जाऊंगा, वरना यहां बैठे–बैठे अपनी जीवन–लीला समाप्त कर दूंगा । और कान खोलकर सुन लो विक्रम, मेरी मृत्यु के बाद, तुम अपने ही हाथों से मेरे षव को काटकर पांच टुकड़े करना । घबड़ाओ नहीं, ध्यान लगाकर सुनो, मैं तुमसे कम नहीं हूं । कभी कुछ बोला नहीं, इसका मतलब यह नहीं कि मैं कोई ऐरा–गैरा हूं । मैं तुमसे कोई खटकिल्ल नहीं कर रहा । ध्यान से सुनो विक्रम, हां ! तो मेरे षव के एक भाग को इसी वैतरणी नदी में प्रवाह कर देना । दूसरे भाग को गंगाजी में फेंक देना । तीसरे भाग को हिमालय पर्वत पर कहीं ऐसी जगह रखना जहां हमेषा बर्फ हो । चौथे भाग को जलाकर राख कर देना और उस राख को हवाई जहाज से भारत की उस भूमि पर बरसाना जहां की जमीन बंजर हो । और अंतिम पांचवें भाग को, लालगंज गांव के उत्तरी सिवान पर गाड़ देना । और सावधान विक्रम, इसका पता न मेरी पंड़ाइन को चले, न पूरे गांव–जवार को ।

विक्रम कुछ बोलने चला तो पांड़ेजी नाराज हो गए – बीच में बेमतलब का लबलंग मत करो । जब मैं आज्ञा दूं तभी बोलो, वरना षाप देकर भस्म कर दूंगा ।

विक्रम चुपचाप हाथ जोड़े बैठा रहा ।

बैताल पांड़े ने दोनों हाथ उठाकर पहला प्रष्न किया –

वह कौन–सी वस्तु है विक्रम, जो हमसे हर क्षण यह कहती रहती है कि संसार की गुत्थी को तुम किसी भी तरह सुलझा नहीं सकते ? जो जैसा है, उसे वैसा ही स्वीकार करो ? आनन्द–रस का पान तलछट तक करो ?

विक्रम ने जवाब दिया – वह वस्तु है जीवन ।

बैताल पांड़े ने दूसरा प्रष्न किया – फिर भी इस जीवन में अतृप्ति क्यों रह जाती है ?

विक्रम ने उत्तर दिया – सुनो बैताल, हमारे भीतर कोई ऐसी अनाम षक्ति है, जो स्वर्ग के सपने देखा करती है, जो दुःखों से मुक्ति की कल्पना को सत्य मानती है ; जो समस्त भोगों के बीच भी अतृप्त रहकर हमारे अस्तित्व के दरवाजे पर दस्तक देती है कि जागो, अमृत तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा है ।

बैताल पांड़े ने फिर पूछा – हे विक्रम, वह अमृत क्या है ?

विक्रम उत्तर देने लगा – सुनो बैताल । संसार में जो भी रहस्यकुंज थे, उन्हें बुद्धि ने उजाड़ डाला । जीवन का जो भी क्षितिज अनन्त की ओर संकेत करता था, उसे बुद्धि ने अपनी चकाचौंध से तोप दिया । आत्मा को दबाकर षरीर की पूजा करने का अभियान मनुष्य ने घनघोर रूप से चलाया, फिर भी वह दबाई नहीं जा सकी । जीवन और मनुष्य ने जिन तत्त्वों को कुचल डाला, उसके भीतर से भी ईष्वरता, भागवत की धीमी आवाज आ रही है । कोई सांस अनन्त महाकाष से आती है, जिसे हम महसूस करते हैं – वही है अमृत, वही है ईष्वरता, भागवत ।

बैताल पांड़े ने कहा – विक्रम, अब मैं तुमसे अन्तिम प्रष्न पूछता हूं, ध्यान से सुनो और अपनी पूरी ईमानदारी से स्पष्ट उत्तर दो, वरना मैं अपने ब्रह्मतेज से षाप देकर तुम्हें भस्म कर दूंगा । न रहेगा बांस, न बजेगी बांसुरी । सुनो – जो कुछ तुम कर रहे हो, इतने आन्दोलन, संघर्ष, विकल्प देने की क्रांति, इसका महत्त्व क्या है ?

विक्रम बहुत देर तक चुप रहने के बाद बोला – मैं हाथ उठाकर सत्य कहता हूं बैताल, राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक आन्दोलन, युद्ध और क्रांति के लिए किए जाने वाले सारे प्रयास, सरकारें तोड़ना, विकल्प देना, वैचारिक आंदोलन और अगणित मतवाद, ये सबके सब पैबन्दबाजी के काम हैं, जो प्रत्यक्ष समस्या को महज टालने के लिए किए जाते हैं । ये सारे बुद्धि के काम हैं, जिन्हें फिर बुद्धि ही विफल कर देती है ।

बैताल ने प्रसन्न होकर विक्रम को अपने अंक में भर लिया । भरे कंठ से कहा – धन्य हो मित्र, तुमने मुझे मृत्यु से बचा लिया । और अब मैं प्रायष्चित्तमुक्त होकर सप्रसन्न अपने गांव लौट जाऊंगा ।

– पंड़ाइन को क्या जवाब दोगे ?

– अब तो सब खटक्लिल है मित्र !

– बैताल ! अब तुम निर्भय हो गए, तुम्हारे हाथ से पुण्य होगा ।

बैताल ने विक्रम के पांव छू लिए – हे आर्यश्रेष्ठ विक्रम, आज मैंने जाना, मैं क्या हूं । अब मैं प्रकट होता हूं, आषीर्वाद दो !

17

बैताल पांड़े चले गए ।

विक्रम ने उन्हें सुगनसुन्दरी के नाम एक बहुत बड़ा पत्र दिया था ।

संध्या समय था । क्वार के दिन । नीला आकाष इतना स्वच्छ था कि उसमें विक्रम पूरे भारतवर्ष का मुख देख रहा था । चारों ओर पृथ्वी पर सफेद पुष्प खिले थे और एक अपार सुगंध में जैसे वह नहा रहा था ।

तभी उन लड़कियों का वही झुंड विक्रम के सामने आ खड़ा हुआ । विक्रम एक–एक का मुख निहारता रहा । हर मुख का सौन्दर्य उसे सुन्दर बनाता जा रहा था । हर एक की जीवन–षक्ति, उसके अध्यक्त भविष्य को जैसे वह छूने लगा था ।

तभी राधा बोस ने पूछा – श्रीमान्, आप उस दिन रो क्यों रहे थे ?

– किस दिन ?

फिर उर्वषी मेनन ने बताया ।

विक्रम मुस्कराते हुए बोला – मैं कहां रो रहा था ? मुझे कोई रूला रहा था, बल्कि कोई मेरे माध्यम से रो रहा था ।

– वह कौन था ?

– था नहीं, है । ईष्वर, भगवान रूला रहा था, वही रो रहा था और मैं चुपचाप उसे देख रहा था, जी रहा था । वही अब हंसना चाहता है, तो मैं हंसता हूं, वही जब रोना चाहता है, तब मैं रोता हूं । और वही जब कुछ करना चाहता है, तो मैं करता हूं ।

सारी लड़कियों का विस्मय बढ़ता चला जा रहा था । वे प्रष्न पर प्रष्न पूछती चली जा रही थीं।

विक्रम उन्हें बताता चला जा रहा था – मैं तो कितने वर्षों तक अपने घर–गांव में चुपचाप पड़ा था । उसीने एक दिन मेरा दरवाजा खोलकर कहा – 'हे पुरूष, जा यह काम कर ।' और मैं उसके पीछे–पीछे चल पड़ा । वह हर क्षण मेरे आगे–आगे चल रहा है ।

विक्रम ने स्वयं प्रष्न उठाया – जानती हो, पुरूष किसे कहते हैं ? जो अपने पुरू में, नगर में सानन्द षयन कर रहा हो । बाहर, भौतिक जगत् की अषान्ति, बुद्धि और मन की दुनिया के विष और संघर्ष से पूर्णतः निःसंग अपने भीतर अपने संग रहने वाला – वही पुरूष है ।

उर्वषी ने कहा – पुरूष की यह जो प्रकृति है, वह जिस षक्ति से अपने पुरू में वास करती है, वही स्त्री है ।

राधा बोस ने पूछा – पुरूष जब अपने पुरू से बाहर आता है, तब स्त्री कहां है ?

– स्त्री ही तो वह षक्ति है जो उस भगवान से पुरूष को जोड़कर उसके पीछे–पीछे चला रही है। बाहर स्त्री सृजन–षक्ति है, पुरूष है उसी षक्ति का कर्मरूप, व्यवहार–सत्य ।

षेष लड़कियों ने पूछा – श्रीमन्, तो धर्म क्या है ?

विक्रम ने कहा – धर्म जीवन और जगत् की प्रारम्भिक अवस्था का नाम है .... यह मात्र एक आधार है, जहां से आगे, ऊपर और सीढ़ियां षुरू होती हैं । धर्म मानव–अनुभूति का सबसे निचला धरातल है । इसी आधार से ऊपर सीढ़ियों पर चढ़ा जा सकता है ।

– ये सीढ़ियां कहां ले जाती हैं ?

– मौन की ओर ।

राधा बोस ने पूछा – श्रीमन्, आप जो कुछ कर रहे हैं और हम सबसे जो कराना चाहते हैं, वह क्या है ?

विक्रम ने कहा – वही मानव धर्म की प्रतिष्ठा । उसी आधार का निर्माण । चूंकि आज जीवन–जगत् का आधार असत् राजनीति है, इसलिए हमें इसीको सत् रूप देना है – एक नया विकल्प, राजनीति का नया धर्म ।

सारी छात्राएं मंत्रमुग्ध होकर विक्रम के संदेष सुनती रहीं । विक्रम उन्हें

मानव–मंगल केन्द्र
लोक–फौज
विकल्प दल
पंच चबूतरा
सावित्री आंगन

के पूरे कार्यक्रम, दर्षन और व्यवहार को बताता रहा ।

संध्या से रात होती चली गई । क्वार के आकाष पर चम्बेली, बेला, जूही और षुभ्र कमलों के रूप में तारागण बिखरते चले गए । मलयानिल बह रहा था । विष्वविद्यालय की तमाम छात्राएं और छात्र जहां मैदान में घिरते चले आए । वही कार्यक्रम, वही विकल्प दर्षन और वही व्यवहार का कर्मज्ञान विक्रम उन्हें बताता रहा ।

और अंत में विक्रम ने सरकार से प्राप्त वह आदेष–पत्र निकालकर पढ़ा – विक्रमादित्य बनारस हिन्दू विष्वविद्यालय के उपकुलपति पद से हटा दिए गए ।

इस सूचना से छात्रों की उस सभा में जैसे आग लग गई । ऐसी अषांति फैली कि लोग कल्पना भी नहीं कर सकते थे । पुलिस–षक्ति चारों ओर जैसे पहले से ही तैनात थी । अधिकारी–वर्ग छात्रों की गहन प्रतिक्रिया और क्रोध के सामने घबरा गया ।

सत्ताधारी लोग विक्रम के सामने हाथ जोड़कर खड़े हो गए । विक्रम ने बहुत ऊंची आवाज दी –

सुनो–सुनो, भारत के युवा वर्ग,
भारत के नव स्वप्न, सुनो
क्या है हिन्दू ?
वह पष्चिम का स्वायत्त, स्वतन्त्र, अंहकारी
व्यक्ति नहीं
वह पूरब का अनादि पुरूष है
जो व्यक्तिगत अंहकार, स्वतन्त्रता
और स्वायत्त सत्ता को सीमा और बंधन मानता है
वह ऐसा पुरूष है
जिसकी यात्रा इस पड़ाव से आगे बढ़ती है
आत्म से परमात्म की ओर
वह बंधा है स्वयं से विराट तक
वह उतना ही स्वतन्त्र है, जितना वह दूसरों को मुक्ति देता है
वह उतना ही स्वायत्त है जितना वह दूसरों के कल्याण के
लिए संघर्ष करता है
वह है केवल होने में

वह है केवल देने में ।

धीरे–धीरे सारे छात्र, सारे विद्यार्थी उसके पास घिर आए । पूर विष्वविद्यालय में षांति छा गई ।

फिर उसी मैदान में विक्रम के साथ सभी छात्र–छात्राओं के सारी रात संवाद होते हैं ।

प्रातःकाल आता है । क्वार का प्रातःकाल । विक्रम विष्वविद्यालय से विदा लेता है । उसके पीछे–पीछे एक हजार विद्यार्थी विष्वविद्यालय छोड़कर निकल आते हैं ।

बैताल पांडे
अपने गांव में

अपने लालगंज गांव में बैताल पांड़े चार चौबन्द कसे हुए पूरे ठाठ से गांव–जवार–भर में घूम–घूमकर कहते हैं – बड़े–बड़े पद मिले मुझे, मैंने ठोकर मार दी । एक से एक सुन्दरियां, मैंने कहा सिद्ध पुरूष को सुन्दरियों से क्या काम ! धन को मैंने हाथ नहीं लगाया – कहा धन–दौलत तो हाथ की मैल है । सबको खटकिल्ल करता चला गया । महाराष्ट्र, गुजरात, हरयाना, पंजाब, दिल्ली और उत्तरप्रदेष में घूम–घूमकर मैंने सोई हुई जनता को जगाया –

उठ जाग मुसाफिर भोर भई
अब रैन कहां जो सोबत है ।
जो सोबत है, वह खोबत है
जो जागत है वह पाबत है ।

इस बीच उस लालगंज गांव में बहुत कुछ घट चुका था । तिल्लोकी बब्बर (नाई) की हत्या ग्राम पंचायत के प्रधान रामचन्द तिवारी ने करा दी थी । उसकी विधवा स्त्री फूलगेंदा लालगंज मानव–मंगल केन्द्र की सहायिका है ।

सुगनसुन्दरी अब तक पांच हजार गांवों में हरिजन, मुसलमान, पासी, धरिकार, धुनियां, नाऊ, धोबी, डोम आदि के साथ गांवों के कुछ कुरमी, अहीर, ब्राह्मण, ठाकुरों को मिलाकर मतलब भूमिवान से भूमिहीनों को मिलाकर सहकारी खेती की प्रतिष्ठा कर चुकी है ।

एक मानव–मंगल केन्द्र से पांच गांव बंधे हैं । हर केन्द्र का अपना स्कूल है । हर गांव में अपने ग्रामकोष की पूंजी से वैज्ञानिक उपकरणों द्वारा सामूहिक खेती होती है । भूमि के स्वामित्व के विसर्जन का चमत्कार चारों ओर फैल रहा है ।

हर गांव में पंच चबूतरा बना है ।

हर गांव में एक सावित्री आंगन है ।

बूढ़े–बूढ़ियों को छोड़कर अब कहीं एक भी स्त्री–पुरूष निरक्षर नहीं है ।

नव जागरण चारों ओर फैलता चला जा रहा है ।

सुगनसुन्दरी को लोग धरती माता के नाम से पुकारते हैं और वह पूरे बस्ती, फैजाबाद, गोरखपुर, गोंडा, आजमगढ़, जौनपुर आदि जिलों में इसी नाम से जानी जाती है ।

संवाद
सुगनसुन्दरी का

बैताल पांड़े ने सुगनसुन्दरी से कहा – सुनो धरती माता, मेरे प्रष्न को ध्यान से सुनो और मुझे उत्तर दो । यह सब तो ठीक है, जो कुछ इतना हुआ और आगे अभी और होगा, पर सवाल यह है कि वह नया मनुष्य क्या है, कौन है, जिसे हम इस नये समाज को देने जा रहे हैं ?

सुगन बोली – वह नया मनुष्य तुम हो ।

बैताल भड़के – बिल्कुल नहीं, मैं वह नया मनुष्य नहीं हूं । मैं तो वही पुराना मनुष्य हूं, जो झूठ बोलता है, जिसकी भूख अपार है । मैं अपने–आपको चरित्रवान मानता हूं पर मुझे लगता है, मैं चरित्रहीन हूं । मैं अपने भय को दूर हटाने के लिए दूसरों को भयभीत करता हूं । मैं अपने सुख के लिए दूसरों को दुःखी करता हूं । मैं ऐसा पुरूष हूं जो दूसरों की मजबूरियों से लाभ उठाता है ।

सुगन से विष्वास से कहा – ठीक है, पर तुममें सत्संग से परिवर्तन होगा । जब समाज बदलेगा तो मनुष्य में भी परिवर्तन आएगा ।

बैताल तड़पे – यह असत्य है, भ्रम है । मैं इतने वर्षों तक विक्रम के साथ रहा, मुझमें कोई भी बुनियादी परिवर्तन नहीं हुआ ।

सुगन ने पूछा – इसका कारण क्या है ?

बैताल बोले – इसका मूल कारण मैंने पकड़ा है । स्वतन्त्रता के बाद से मनुष्य और समाज में भय जाता रहा । वह बाहर से जितना ही भयहीन है, उतना ही वह अपने–आपसे भयभीत है । भय मनुष्य का आधार है । भय का ही नाम धर्म है । आज जो इतना पतन, अंधकार और भ्रष्टाचार है उसका मूल कारण है मनुष्य के ऊपर कोई भय नहीं है । 'बिनु भय होत न प्रीत' यह सनातन सत्य है ।

सुगन ने कहा – पांड़ेजी तुम बहुत पुरानी बात कह रहे हो ।

– हां पर मनुष्य बहुत पुराना है, बहुत ही आदिम । उसमें नदी, जंगल, पहाड़, सांप, बिच्छू और जानवर बैठा है । और आज मनुष्य भयहीन है, पर वह भय–मुक्त नहीं है, इसलिए मनुष्य का वही प्राचीन, वही आदिम जंगल, पषु उसमें उभर आया है और वही उसमें कार्यरत है ।

– तुम कहना क्या चाहते हो बैताल ?

– यही कि, मनुष्य ही मनुष्य के दुःख, दारिद्रय, पतन और मृत्यु, संहार का कारण है । हर मनुष्य स्वयं को भयहीन बनाने के लिए दूसरे को भयभीत कर रहा है। अपनी भयभीत स्वतन्त्रता के लिए दूसरे को गुलाम बना रहा है । मैं हाथ उठाकर कहता हूं – भय ही वह सत्य है, जो सनातन है । यही सनातन धर्म है मानव–समाज का । भूख के ही भय से किसान खेती करता है । जीवन भय के ही कारण पत्नी पति की सेवा करती है । मां अपने मातृत्व के ही भय से षिषु को जन्म देकर उसका पालन–पोषण करती है । प्रेमी और प्रिया उसी इन्द्रिय–भय के कारण प्रेम करते हैं । महापुरूष नष्वरता के ही भय से महान कर्म करते हैं । ईष्वर–भय के कारण योगी, साधक, संत भक्ति–उपासना करते हैं । प्रजा–भय के कारण राजपुरूष पुरूषार्थ करते हैं ।

सुगनसुन्दरी अवाक् होकर बैताल का मुंह निहारने लगी । उसके मुंह से निकला – पर भय के लिए राजदंड है, षासन है ।

बैताल पांड़े ठहाका मारकर हंसे – यही तो बात है, राजदंड है, षासन है, पेनल कोड है, न्यायालय है, पुलिस है, पूरा षासन–तन्त्र है .... पर इसे व्यवहार और प्रयोग में ले आने वाला वही मनुष्य–समाज है, जो अपने ऊपर कोई भय नहीं मानता ।

– बैताल, सावधान, तुम भय को मूल्य मान रहे हो ।

– हां, भय मूल्य है । इसी मूल्य से संगठित हुआ है समाज, अपनी जंगली अवस्था से भयमुक्त होने के लिए । इसी मूल्य से राज्यों, देषों, षासनों की प्रतिष्ठा हुई है । इसी मूल्य से उदित हुई है विवाह–प्रथा एक–पत्नी–धर्म और हमारी सारी सामाजिक–वैयक्तिक मर्यादाएं ।

सुगनसुन्दरी चुप हो गई । कुछ क्षणों बाद बोली – पर यह भय कहां गया ?

– भय अन्दर चला गया, मनुष्य आज उसीको मारने में चुपचाप अपनी आत्महत्याएं करने में लगा है ।

– पर ऐसा क्यों ?

– सुनो धरती माता, ध्यान लगाकर सुनो अपने बैताल को । स्वतन्त्रता के बाद जब से इस देष में प्रजातन्त्र आया, तब से राजनेता, धनवान, अधिकारी ने अपनी सत्ता, अपनी कुर्सी को बनाए रखने के लिए देष को यह छूट दे दी कि तुम आजाद हो सभी भय से, हम तुम्हारी रक्षा करेंगे और तुम हमारी रक्षा करो । बस,

प्रजातन्त्र गुलाम बना रहे
भयभीत रहने के लिए
राज्यतन्त्र आजाद बना रहे
प्रजा को भयभीत करने के लिए ।
लूटो मेरे भाई
हम षासन–भार सम्हाल रखेंगे
अंधेर नगरी
सुन्दर राजा

टका सेर भाजी
टका सेर खाजा
आये राम, गये राम
भाड़ में जाओ नमक हराम
अन्हरा बांटे सिन्नी घरे घराना खायं
आग लगे चहुंदेष में को काको पतियायं

सहसा बैताल पांड़े को सुगन ने रोक दिया । बैताल की काव्य–धारा को ठेंस लगी तो उन्हें हंसी आ गई । हंसी रोककर बोले – और मजेदार बात ह कि यहां प्रजातन्त्र का मनुष्य यह कहता है कि कोई आकर देष को सुधार दे और वह हाथ पर हाथ धरे बैठा रहे । कहावत है : ऊपर टाटी भीतर टाटी, राम–दुहाई भले बाटी । उसका विष्वास है – जब–जब होय धरम की हानी, तब भगवान अवतरें भवानी । और वही सब दुबारा ठीक–ठाक कर देंगे । मगर इन ससुरों कोई नहीं पता कि 'यदा याद हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत' कहने वाले कृष्ण ने महाभारत में बदमाष–लुच्चों, अधर्मियों की कैसी खाल उधेड़ी है ! मार–मार के सालों के भुस्स भर दिए हैं । चाहे मामा हो, चाहे चाचा, चाहे हो सगा भाई या पूत, साला, बहनोई, गुरू हो चाहे बाप हो .... मार–मार के हड्डी–पसली एक करा दी कृष्ण ने । वह दंड दिया अपने ही कृष्णवंषियों को नारायणी सेना में झोंककर कि सारी खटकिल्ली, हरमजदगी भूल गई । बड़े बने थे दुर्योधन, भीष्म, अष्वत्थामा, बड़ा घमंड था द्रौपदी को पांच भतारों का .... एक–एक को मार–मारकर लटका दिया सूली पर – किसीको फेंका सरोवर में, किसीको मुलाय दिया बाणों पर, किसीको भेज दिया बर्फ पर, जाओ मरो घिस–घिसकर .... । चाहे अपराध छोटा हो या बड़ा, वह किसीके भी द्वारा किया गया हो, कोई छूट नहीं । दंड । मारो सालों को, सारी लवलंगी भूल जाएं । भगवान भी हो, उसे भी वही दंड मिलेगा । कृष्ण ने अपराध किया था पांडवों का पक्ष लेकर – मारा बहेलिये ने तलुए में बाण, भस्स से गिर गए जंगल में, धरा रह गया चक्र सुदर्षन .... ।

सुगन ने डांटा – बस, बस, बन्द करो बोलना । बहुत हो गया ।

– जवाब दो न धरती माता, मुझे इतना बोलने की जरूरत क्या है ? इसीलिए कि मेरे ऊपर कोई डर नहीं है । हम आजाद हैं बकवास करने के लिए, कुछ भी कर गुजरने के लिए । लूट मची है .... ।

सुगन ने पूछा – नहीं रहोगे चुप ?

बैताल ने हाथ जोड़कर कहा – एक उदाहरण देकर, नहीं, नहीं, दिखाकर चुप हो जाऊंगा ।

एक
उदाहरण

बैताल पांड़े सुगनसुन्दरी के साथ षहर में गए । दिन–भर, घूम–घूमकर नंगी–भूखी आजादी से उत्पन्न लोगों के अपराध, झूठ, अनैतिकता, छल, प्रपंच और बत्तमीजियों के उदाहरण दिखाते रहे ।

रात हो गई । षहर के मुख्य चौराहे पर यातायात–नियम के खिलाफ लालबत्ती में ही एक कारचालक को पुलिस ने पकड़ लिया । कार में रोषनी भी नहीं ।

पुलिस–अधिकारी ने चालान के कागज निकाले – आपका लाइसेंस ?

– घर पर है ।

– पिता का नाम ?

– पता नहीं ।

– ठीक से जवाब दो ।

कारचालक नषे में था । कार से नीचे उतरकर निहायत बत्तमीजी से बोला – डिनर के बाद पान खाने जा रहा हूं ! जानते हो मैं कौन हूं ? गोइंठा सिंह का लड़का .... बिरजू !

पुलिस अधिकारी चालान भरता जा रहा था ।

कारचालक ने कहा – जानते हो यह किसकी कार है .... मिनिस्टिर की । नौकरी चाहते हो या नहीं ?

पुलिस अधिकारी के हाथ से पेंसिल छूट गई । वह देखता रह गया । तेजी से कार चली गई है।

बैताल ने कहा – यह है एक महत्त्वपूर्ण उदाहरण । ध्यान दीजिए । पहली बात – कारचालक को कोई भय नहीं ; किसीकी कोई परवाह नहीं । दूसरी बात – ठीक है, छोटा–सा अपराध हुआ उससे, इसका दंड ज्यादा से ज्यादा पचास–साठ रूपये है । पर वह दंड को मानता ही नहीं, क्योंकि उसके पास न मानने की षक्ति है । पहले उसने

अपने–आपको एम0 पी0 का लड़का बताया, पुलिस–अधिकारी को उसका मूल्य कम लगा । फिर वह ऊपर चढ़ा, मिनिस्टर तक, कीमत बराबर ।

सुगन ने पूछा – लोग इतनी छोटी–छोटी बातों के लिए इस तरह राजषक्ति का सहारा क्यों लेते हैं ?

बैताल ने मुस्कराते हुए कहा – क्योंकि राजनेता के लिए यह मनुष्य नहीं, 'वोटर' है । अपराध तो मनुष्य ही कर सकता है, वोटर तो मुक्त है, जैसे राजनेता मुक्त है ।

सुगनसुन्दरी चुपचाप बैताल की मुखमुद्रा देखती रही । बैताल ने कहा – तो इस उदाहरण का निष्कर्ष यह निकला कि पहले मनुष्य, फिर प्रजातन्त्र । प्रजातन्त्र कोई जंगल नहीं हो सकता ।

दंड–भय मनुष्य बनाता है
जैसे घोर दुःख मनुष्य में करूणा जगाता है
दंड सबकी रक्षा करता है
संसार सोता है तो वह जागता है
विद्धान इसीको धर्म की संज्ञा देते हैं
प्रायष्चित्त पाप का होता है
और दंड हर अपराध का ।

दंड संहिता

विक्रमादित्य और धरती माता सुगनसुन्दरी की अनुमति पाकर बैताल दंड–संहिता–निर्माण के काम में लग जाता है । वह लिखना षुरू करता है :

आजादी से पूर्व की पहली पीढ़ी में जहां–जहां अंधता, अकर्मण्यता, आजादी के बाद की दूसरी पीढ़ी में जहां विलक्षण विरोधी गुण–दोषों का विस्तार और उसके बाद वर्तमान भारत में महाभागों और खलपुरूषों का एक ही धरातल पर उतर आना, इस पूरी सच्चाई का हम जितनी गहराई में आकर अनुसंधान करते हैं, तो यही दिखता है कि इनका मूल आधार और स्रोत मनुष्य है । प्रत्यक्ष जन्मदाता – राजनेता, पूंजीपति और अमलावर्ग झूठ, दुराचार, पतन, दुष्चरित्रता को जन्म देकर अलग हट जाता है, फंस जाता है इन भ्रष्ट–अंध मूल्यों का पालनकर्ता मानव–समाज, जो इसे चुपचाप सहता है । अतएव प्रथम कोटि का दंडभागी है जन्मदाता – उसे मृत्युदंड मिलना है । द्वितीय कोटि का दंडभागी है वह मानव जो इससे संघर्ष नहीं करता, अतएव जो भी स्त्री–पुरूष अपने जन्मदाताओं को केवल आलोचना करके, उसके प्रति मात्र निराषा दिखाकर चुपचाप उसे सहता है, उसे उल्टा टांगकर पेड़ पर लटका दिया जाए ।

प्रजातंत्र, सत्ता अथवा षासन को गर्भिणीधर्म का अनुसरण करना होगा । गर्भिणी अपना हित नहीं देखती, मनमानी नहीं करती ; केवल अपने गर्भ के हित को देखती है । प्रजातंत्र में गर्भ है प्रजा । जो तंत्र इस गर्भहित की अवज्ञा करे, उसे तत्काल षासन–पद से च्युत किया जाए ।

जिसे धर्म–भय, भागवत विष्वास, पर–कल्याण–भय, देषप्रेम, आदर्ष–भय, मानव–मूल्य, आदर्ष प्रेम नहीं है, उसे पंच चबूतरे पर खड़ा करके गोली मार दी जाए ।

जो जातपांत, छूआछूत, हिन्दू–मुसलमान, ऊंच–नीच, प्रांत–अप्रांत, सवर्ण–अवर्ण पर विष्वास करे या ऐसा आचरण करे, उसके षरीर पर मिट्टी का तेल छिड़ककर उसे पंच चबूतरे पर जला दिया जाए ।

अपनी वासना–तृप्ति के लिए या किसी भी प्रकार के बल या अधिकार–प्रयोग से, जो कोई भी दूसरे का षोषण, बलात्कार करेगा या किसी प्रकार का भी दुख, अपमान या ग्लानि देगा उसे बेतों से मारकर प्राणदंड मिलेगा ।

अपना भय मिटाने के लिए जो दूसरे को भयाक्रांत करेगा, या अपनी स्वतंत्रता के लिए दूसरे की स्वतंत्रता का हरण, विनाष या उसे किसी भी प्रकार की चोट देगा, उसे गहरे पानी में डूबोकर मार दिया जाएगा ।

पूरे देष, सम्पूर्ण समाज, पूरी धरती के जो साधन हैं, उपज हैं, पूंजी है, उनका उपभोग सबको समानता और बंधुत्व के आधार पर करना होगा । जब तक संपूर्ण साधन से केवल एक मोटी रोटी, एक मोटा कपड़ा और एक झोंपड़ी ही समान रूप से संभव है, तब तक इससे ज्यादा उपभोग करने वाला कोई भी व्यक्ति राष्ट्र और समाज–द्रोही माना जाएगा और उसे दस वर्षों की सख्त मेहनत के साथ बंदी–गृह में रहना होगा । जैसे–जैसे साधन, उपज और उत्पादन बढ़ेंगे वैसे–वैसे समान उपभोग बढ़ेंगे ।

जो झूठ, असत्य, अमंगल बोलता हुआ पकड़ा जाएगा, उसकी जवान काट ली जाएगी । जो चोरी करता हुआ पकड़ा जाएगा, उसके हाथ काट लिए जाएंगे । जो दूसरे को धोखा देकर भागेगा, उसके पैर काट लिए जाएंगे । जो जिस अंग से, साधन से पापाचार, भ्रष्टाचार और अनैतिक कार्य करते हुए पकड़ा जाएगा, उसका वह अंग काट दिया जाएगा और उसके वे साधन जब्त कर लिए जाएंगे ।

सबको अपने–अपने क्षेत्रों में, कार्यों और दायित्वों में पूरी जिम्मेदारी के साथ दिन में पूरे आठ घंटे कठिन परिश्रम करना होगा ।

जो कोई भी अपने दायित्व से जरा भी स्खलित होगा, उसे अन्न–जल मिलना बन्द कर दिया जाएगा ।

जो भी अपने अधिकार का जरा भी दुरूपयोग करता हुआ पाया जाएगा उसे पागल कुत्तों से नुचवाया जाएगा ।

जो भी लेखक, कलाकार, बुद्धिजीवी, षिक्षक, पत्रकार समाज में झूठ–आडम्बर फैलाएगा, मानव–गरिमा को दूषित और भंग करता हुआ पाया जाएगा, उसे खेत में हल चलाना पड़ेगा अथवा उससे खेती करने का बलपूर्वक काम लिया जाएगा ।

कोई भी व्यक्ति जो किसी भी तरह काम करने लायक है, यदि वह दिन के समय कहीं भी किसी तरह से भी सोता हुआ पाया जाएगा उसे गधे की पीठ पर बिठाकर सबके सामने घुमाया जाएगा ।

स्वयं स्वस्थ रहना, प्रसन्न रहना और दूसरों को भी प्रसन्न और स्वस्थ रखना, प्रत्येक नागरिक का दायित्व होगा । जो इसमें दोषी पाया जाएगा, उसे सात दिनों तक पेड़ से बांधकर रखा जाएगा ।

प्रत्येक भारतवासी केवल अपनी भारतीय भाषा का ही अपने जीवन और कार्यों में प्रयोग करेगा । यहां जो भी भारतीय अंग्रेजी बोलता हुआ या यहां उसका प्रयोग करता हुआ पाया जाएगा, उसकी जवान काट ली जाएगी ।

स्त्री, वृद्ध, विवष को किसी भी तरह अपमान करने वाले, उसे किसी भी प्रकार से दुख देने वाले की आंखें फोड़ दी जाएंगी ।

जो बिना बुलाए किसीके पास आकर उसका समय, मन और चित्त खराब करेगा, उसे पूरे पांच घंटे तक सिर के बल धूप में खड़ा कर दिया जाएगा ।

जो अन्याय, झूठ, भ्रष्टाचार का संघर्षमय विरोध न कर सिर्फ उसकी आलोचना करता हुआ पाया जाएगा, उसे अगर वह पुरूष है तो उसे स्त्री के भेस में रखा जाएगा और अगर वह स्त्री है, तो उसके सिर के बाल मुंडवा दिए जाएंगे ।

मिलावट करने वालों को पकड़कर उनके हाथ–पैर काट लिए जाएगे, आंखें फोड़ दी जाएंगी और जंगल में डाल दिया जाएगा ।

जो भी प्रेम में विष्वासघात करेगा, उसकी चमड़ी उधेड़ ली जाएगी और उसे केवल फिल्मी गीत गाते रहना होगा ।

किसी भी गांव में, नगर या षहर में, यदि कोई भी व्यक्ति भूखा है, बीमार है, दुखी या किसी भी तरह प्रताड़ित है, तो उसे बिना भोजन खिलाए, बिना उसकी सहायता किए यदि वह गांव, नगर भोजन करता है, चैन से सोता रहता है, तो इस अपराध के लिए दंड यह होगा कि वह पूरा गांव, वह पूरा नगर तीन दिनों तक के लिए भूखा–प्यासा रखा जाए ।

देष–समाज में पुलिस–व्यवस्था नहीं होगी । हर व्यक्ति दूसरे की रक्षा करेगा । जो पहले अपने अपराध की सूचना पंच चबूतरे को, सावित्री आंगन को देगा, वही दूसरों के अपराधों की सूचना देने का हकदार होगा ।

न्याय और दंड केन्द्र होगा पंच चबूतरा, सावित्री आंगन । मानव–मंगल केन्द्र उसे पूरे क्षेत्र के मंगल, कल्याण, श्रम, निर्माण और उत्पादन की प्रेरणा और कर्म–स्थल होगा ।

लोक–फौज का सदस्य वह समूचा युवकवर्ग होगा जिसकी अवस्था सोलह वर्ष से पचीस वर्ष तक होगी। उसका कार्य होगा अपराध पकड़ना और अपराधियों को 'पंच' और 'आंगन' में उपस्थित करना ।

और इसीके बीच से उपजेगा वह विकल्प दल, जो इस देष के प्रजातंत्र का स्वामी नहीं, सेवक होगा ।

18

विक्रम चारों तरफ घूम–घूमकर हर प्रदेष, जिला, नगर और गांव के छात्रों को लेकर जो युवा संगठन बनाता है, उसीको नाम देता है 'लोक–फौज' । वह सर्वत्र घोषणा करता है कि यही युवा संगठन 'विकल्प दल' की धुरी, केन्द्र और आधार होगा ।

वह देष–भर में भ्रमण करता है, और राजनीति से मानव–मूल्यों को मिलाकर राजनीति के प्रति मनुष्यों की उदासीनता का निवारण करता है । वह मानव–समाज से राजनीति और नैतिकता से मानव–कल्याण के टूटे हुए संदर्भों को जोड़ता है ; व्यवहार और यथार्थपरक राजनीति के नये अर्थों की सृष्टि करता है ।

वह जगह–जगह जिस भाषा, जिन उदाहरणों, प्रतीकों और षब्दों का जिस तरह सत्यबोध के लिए इस्तेमाल करता है, लोग उनसे भमक पड़ते हैं ।

वह कहता है :

– देखो पूरी दैव–सृष्टि को, इस वृक्ष को देखो, इसका जो सबसे मजबूत हिस्सा है, वह है इसकी जड़, जिसके ऊपर यह पूरा पेड़ खड़ा है । इसका सबसे ज्यादा मजबूत हिस्सा नीचे है । और इसके ऊपर क्या है ? पत्तियां, फूल ... इसका सबसे कोमल भाग । ध्यान दो, मजबूत नीचे है । कोमल ऊपर। तभी यह फूल देता है, सुगन्ध बिखेरता है, फल देता है । पर मनुष्य–समाज में क्या है ? जो सबसे ज्यादा कमजोर है, निर्बल है वह नीचे है, और जो सबसे ज्यादा मजबूत है वह ऊपर है । उल्टा वृक्ष । तभी इसमें न फल है, न फूल । न सुगन्ध है, न छाया । इसे उलट दो । यही चुनौती है मनुष्य–मात्र की।

यही हमारा कर्म है ।

यही सृष्टि–धर्म है ।

कई स्थानों पर जहां उसे कांग्रेस दल ने घेरा, उसके साथ खुली बहसें हुईं, वहां उसने कहा :

– कोई भी राजनीतिक दल यदि किसी भी देष पर दस वर्षों से ज्यादा षासन और सत्ता का उपभोगी हो तो वह भ्रष्ट हो जाता है । उसके भीतर सड़न षुरू हो जाती है, क्योंकि तब तक वह अपने मूल से कट जाता है, टूट जाता है । क्योंकि सत्ता भ्रष्टाचार की जननी है और परम सत्ता परम भ्रष्टाचार की माता है ।

एक जगह उसने कहा :

– यहां हर आदमी, अपने से दूसरे की, एक चीज से दूसरी चीज की तुलना और विरोध में सच्चाइयों को देखता है । जैसे दिन को रात की तुलना में । रात को दिन के विरोध में । तभी वह कोई पूरी सच्चाई नहीं देख पाता । रात की अपनी अलग खूबसूरती है, दिन का अपना अलग सौन्दर्य है । यहां कैसी तुलना, कैसा विरोध ? हम कांग्रेस को इस विरोध के सन्दर्भ में नहीं, सम्पूर्ण मानवीय, राष्ट्रीय सन्दर्भ में देखते हैं । विरोध और संघर्ष हमारे लिए मूल्य है, तुलना नहीं !

इसी तरह की बातें सुनकर बिहार के दरभंगा जिले में एक बुढ़िया ने विक्रम से पूछा – ए बबुआ, राउर कउन देष कै आदमी हौअ ?

– तुम्हारे ही देस, गांव–जवार का हूं मां ।

– का होई बेटबा ?

– जो तुम चाहोगी, वही होगा मां ।

– अपन को दो जून रोटी चाही अउर तन ढाकन एक मोटा कपड़ा ।

यह कहती हुई वह वृद्धा रो पड़ी ।

विक्रम को लगा उस वृद्धा के आंसुओं में गौतम बुद्ध, विवेकानन्द, महर्षि रमण, अरविन्द, स्वामी दयानन्द, सुभाष और गांधी बह रहे हैं ।

विक्रम का
सुगनसुन्दरी से पुनर्मिलन

वर्षों बाद विक्रम अपने गांव – लालगंज लौटा । उसके साथ बहुत सारे लोग थे – युवक–युवतियां, छात्र–छात्राएं, किसान–मजदूर । अन्य प्रान्तों के तमाम स्त्री–पुरूष ।

इतने लम्बे विरह और कर्म–संघर्षों ने दोनों को कृषकाय बना दिया था । दोनों की आंखों में तप की दृष्टि थी । दोनों ने एक–दूसरे के चरण स्पर्ष करने चाहे । दोनों को लगा :

दुष्यन्त और षकुन्तला का अभिज्ञान हो रहा है
गौतम बुद्ध और यषोधरा एक–दूसरे की
देहरी पर आ मिले हैं
कौन किसे भिक्षा देगा ?
राहुल ही तो भिक्षा में दिया जा सकता है
कौन है राहुल ?
विक्रम और सुगन की तपस्या ।
वह सुजाता कौन थी ?
वही तो मानव–करूणा की जननी थी ।

विक्रम और सुगन चुपचाप एक–दूसरे के सामने नत–मस्तक खड़े थे । बिल्कुल चुपचाप । मूक । यही तो जीवन की चरम अवस्था है न । अन्तिम मंजिल । आखिरी लक्ष्य । दोनों के बीच में भारत की दरिद्र, निरीह, षोषित जनता खड़ी थी ।

सुगनसुन्दरी के मुंह से षब्द फूटे – हे प्राणप्रिय ! तुमने क्या पाया ?

विक्रम भरे कंठ से बोला – जो दुख एक को है, वही दुख सबको है । मैंने इस देष के एक–एक प्राणी में तुमको देखा है प्रिये । हमारे प्रेम ने ही देष की दषा का ज्ञान कराया है । उसीने हमें मार्ग दिया है ।

सुगन बोली – तुमने मुझे मानव–कल्याण के कार्य सौंपे । मैंने उसे तम्हारे चले जाने क बाद, भगवान को सौंप दिया । तब से मैं उसीके हाथों से कार्य करती हूं । उसीकी सांसों से सांस लेती हूं । मेरी सांसों की वीणा में तुम्हारा ही संगीत है विक्रम ।

सुगन के उन षब्दों ने विक्रम को ऐसा स्पर्ष किया कि उसे लगा, वह षिवि है, जिसका पूरा षरीर, सारा जीवन किसी अदृष्य तुला पर रख दिया गया है । विक्रम एक अद्‌भुत आनन्द और उत्साह से भर गया ।

वह पालथी मारकर वहीं जमीन पर बैठ गया । सुगन उसके सामने बैठ गई । दोनों को लगा, वे दोनों चारों ओर फैलकर पृथ्वी पर बिछ गए हैं ।

दोनों न जाने कब तक बातें करते रहे । कभी षब्दों से, कभी चुपचाप ।

विक्रम ने कहा – घर छोड़ने से पहले मेरा विचार था कि देष–कल्याण, लोक–कल्याण और आत्मकल्याण, ये तीनों वस्तुएं बिना धन के सम्भव नहीं । पर ज्यों–ज्यों मैं यात्रा करता गया, विषेषकर बम्बई पहुंचने के बाद मुझे अनुभव हुआ, धन का कोई भी सम्बन्ध कल्याण से नहीं है । अपने साथ रहो, धन तो पीछे–पीछे चलता है । मुख्य है प्रेम–तप से युक्त तपोमय संन्यास ।

सुगन ने विक्रम का माथा चूमकर कहा – मैं तब से चारों ओर, हर क्षण एक ही रंग देखती हूं – लाल रंग ।

विक्रम बोला – हमारे योगियों–सिद्धों का यही अलख रंग है प्रिये !

19

चारों तरफ कार्यालयों में, अदालतों–दफ्तरों में और विभिन्न उद्योगों में लोक–फौज के सिपाही, मानव–मंगल केन्द्रों के कार्यकर्ता तैनात कर दिए जाते हैं । षिकायतें सुनने के लिए दफ्तर खोल दिए जाते हैं । चारों ओर बहुमुखी, बहुरूपी अनैतिकता, भ्रष्टाचार के खिलाफ समाजव्यापी आवाज उठने लगती है ।

गोरखपुर
गंजदेव भंजदेव

गोरखपुर के पास राप्ती नदी पर एक बहुत बड़ा पुल बनने वाला था – दोमंजिला पुल – नीचे पैदल और सवारी यात्रियों के लिए, ऊपर रेलगाड़ी के लिए ।

गारेखपुर मानव–कल्याण केन्द्र से पुन–निर्माण मुख्य अधिकारी को लिखित सूचना मिलती है कि हमारे यहां जो पुल बनने वाला है, उसमें लगने वाले लोहे, ईंट–पत्थर, सीमेण्ट आदि समस्त सामानों की पूरी कैफियत हमें बताई जाए । उसी कैफियत और तथ्यों के आधार पर, पुल–निर्माण के समय लोक–फौज के सिपाही सामान की परीक्षा करेंगे और

उन्हीं के सामने सामान लगाया जाएगा पुल–निर्माण में । और यदि सामान दी हुई कैफियत के अनुसार न हुआ, उचित सामान निर्माण में न लगा तो विरोध किया जाएगा ।

यह सरासर सरकारी काम में दखलंदाजी है – अमलातंत्र में एक तीव्र प्रतिक्रिया हुई । गोरखपुर से लेकर लखनऊ विधानसभा और सचिवालय तक आवाजें उठीं ।

गोरखपुर केन्द्र के मुख्य कार्यकर्ता रघुवीरषरण मित्र ने सीधे सरकार से प्रष्न किया – यह प्रजातंत्र, लोकतंत्र है या अमलातंत्र ? अगर यह अमलातंत्र है तो हम अपनी मांग वापस लेने को तैयार हैं।

सरदार मांग मान लेती है ।

पर तब कोई ठेकेदार ही नहीं मिलता ।

काफी अधिक कीमतों पर बस्ती जिले का वही पराक्रमी दीनबन्धु पुन–निर्माण का ठेका लेता है । पुल–निर्माण का कार्य षुरू होता है ।

एक दिन दीनबन्धु का एक आदमी रघुवीरषरण के पास नोटों की एक थैली लेकर जाता है । कहता है – आपके दल के लिए सहायता है ।

मित्र ने कहा – इसे रिष्वत क्यों नहीं कहते ?

वह आदमी बोला – अब इसे चन्दा कहा जाता है ।

मित्र ने रूपयों सहित उस आदमी को पकड़कर पुलिस के हवाले कर दिया । दीनबन्धु इन्कार कर गया – वह मेरा भेजा हुआ आदमी नहीं था ।

पुल–निर्माण का कार्य चलने लगा । लोक–फौज की टोलियां बारी–बारी निर्माण–कार्य का पहरा देती हैं ।

एक टोली का नायक था हरिमोहन – बनारस विष्वविद्यालय इंजीनियरिंग कालेज का छात्र । एक दिन दीनबन्धु उसे खरीद लेता है और गलत ढंग से गलत सामान पुल–निर्माण में इस्तेमाल होने लगता है । टोली के अन्य सदस्य इस भ्रष्टाचार को पकड़ लेते हैं और बैताल पांड़े की दंडनीति के अनुसार हरिमोहन को सजा मिलती है ।

हरिमोहन के सिर के बाल मुंडवाकर, मुख पर कालिख पोत गधे पर बिठाकर गोरखपुर की सड़कों पर घुमाया जाता है ।

बैताल और
गोइंठा सिंह–उपाख्यान

बस्ती जिले के समस्त एम0 एल0 ए0 और एमपियों को साथ लिए, एम0 एल0 ए0 बाबू गोइंठा सिंह एक दिन विक्रमादित्य से मिले । सबके सब चुपचाप विकल्प दल की सदस्यता लेना चाहते थे ।

विक्रम ने कहा – आप लोग बैताल पांड़े से मिलिए ।

लोग बैताल पांड़े से मिले । गोइंठा सिंह दीनबन्धु के खास आदमी थे । उस समय बैताल पांड़े, दल के किसी खास काम से लखनऊ जा रहे थे । साथ में पंड़ाइन भी जा रही थीं । सारे लोग पांड़ेजी के साथ–साथ लखनऊ आए ।

दो दिनों में अपने दल का काम समाप्त कर जैसे ही वह कुछ निष्चिन्त हुए, गोइंठा सिंह अपने दल के साथ मिले ।

फिर वह उपाख्यान हुआ ।

अपने उस दल के प्रतिनिधि रूप में गोइंठा सिंह ने पूछा – आपके विकल्प दल का दर्षन क्या है ?

बैताल बोले – सुदर्षन ।

– सुदर्षन क्या ?

– चक्र सुदर्षन ।

– क्या मतलब ?

– मतलब यह कि आप लोगों ने कृष्ण का नाम सुना है ? कृष्ण, आसक्ति और विरक्ति की पराकाष्ठा जिसका रूप है । महाभारत के बाद .... यानी भारत की आजादी की लड़ाई के बाद .... मतलब सन् सैंतालीस के बाद, सारी द्वारका जलकर भस्म हो गई । सारे पांडव गल, मर गए । कृष्ण का ही क्या षेष रह गया ? कुछ भी तो नहीं । सिर्फ उनकी बांसुरी का संगीत, जिसमें जलते हुए कपूर की गधं आज भी शेष है । यहां की जनता में गरीब, निरक्षर किसान, षोषित मजदूर, निर्वासित अछूत, छात्र और स्त्रियों में । इसीका नाम है चक्र सुदर्षन । इसीके संगीत–दर्षन से उपजा है

विकल्प दल । इस दल की सदस्यता इन लोगों के लिए वर्जित है – जिसकी मासिक आमदनी, या वेतन चार सौ रूपये से अधिक है, जो कभी भी एम0 एल0 ए0, एम0 पी0 रहा हो, जिसने कभी भी नीच–ऊंच, हिन्दू–मुसलमान, सिख–ईसाई में अन्तर किया हो, जिसने .... ।

– बस, बस, बस – गोइंठा सिंह चिल्लाए – पांड़ेजी, आपको क्या हो गया ? आष्चर्य है, आप पहले ऐसे न थे । आप तो सीधे–साधे ब्राह्मण थे, मैं आपको लालगंज गांव में बचपन से ही जानता हूं ।

पांड़ेजी हंसते हुए बोले – मुझे स्वयं आष्चर्य है, मुझे ऐसा अब क्या हो गया ? मैं समझता हूं, मनुष्य के एक ही जन्म में कितने जन्म होते रहते हैं । ऐसे ही तो कृष्ण थे ..... देखते ही देखते एक भूमिका से दूसरी भूमिका में बेरोक–टोक प्रवेष करते चले गए । नई भूमिका में आकर पुरानी भूमिकाओं को ही नहीं भूलते, बल्कि उससे सम्बन्धित तमाम व्यक्तियों को भी होम देकर अलग हो जाते हैं ।

गोइंठा सिंह ने दुख से कहा – जो भी हो पांड़े, यह बुरी संगत का फल है ।

बैताल पांड़े ठहाका मारकर हंस पड़े ।

पंड़ाइन ने कहा – हे जी, चलो चिड़ियाघर दिखा लाओ ।

पांड़े पंड़ाइन चिड़ियाघर पहुंचे । गोइंठा सिंह का वह दल उनका पीछा नहीं छोड़ रहा था ।

चिड़ियाघर में बैताल पांड़े पंड़ाइन को सांप–बिच्छू, जीव–जन्तु दिखाते चले जा रहे थे और समझाते जा रहे थे – मनुष्य–तंत्र इतना निर्मम और बेषर्म हो गया है कि इन जीव–जन्तुओं को कठघरी में बन्द करके अपनी पषुषक्ति की लीला दिखा रहा है । अगर यही व्यवस्था बनी रही तो आगे चलकर अच्छा और सुन्दर मनुष्य भी, पकड़कर इसी तरह कठघरों में बन्द करके, देखने–दिखाने की वस्तु होगा ।

भालू के कठघरे से जैसे ही पांड़े आगे बढ़े, उन्हें एक विचित्र–सी आवाज सुनाई पड़ी । पांड़े भालू के सामने लौटे । भालू के मुंह से आवाज निकली –

– बताओ मैं कौन हूं ?

– अरे, तू भालू है रे ?

– नहीं, मैं हरिमोहन हूं । मुझे भालू की खाल पहनाकर यहां रखा गया है ।

– आष्चर्य है।

– हां, पिछले दिनों अधिकारियों की लापरवाही से भालू की मौत हो गई, इसलिए दस रूपये रोज पर मैं यह काम कर रहा हूं । गोरखपुर मैं दंडित–अपमानित होने के बाद मैं किसी को अपना मुंह भी तो नहीं दिखा सकता था ।

– निर्भय होकर भालू की खाल उतार दो हरिमोहन !

हरिमोहन ने प्रष्न किया – क्या आप भय से मानव–कल्याण करना चाहते हैं ? भय से क्या मानव–आत्मा नहीं मर जाती ?

बैताल ने कहा – भालू के रूप में, हे हरिमोहन, ध्यान से सुनो । जिसके पास आत्मा है .... आत्मा का बोध है, उसके लिए भय पाप है, विनाषक है । भय की दंडनीति केवल उसीके लिए है जो अपने–आपको केवल षरीर, केवल भोग, अधिकार रूप और स्वतन्त्र मानता है । दूसरी बात, भय की दंडनीति केवल उसीके लिए है, जो दूसरों को भयभीत करना चाहता है ।

भालूरूप हरिमोहन ने आगे पूछा – पर आगे चलकर वह षरीरी, भोगी, अधिकारी और स्वतन्त्र स्वयं भयमुक्त कैसे होगा ?

भयमुक्त होगा ईष्वर–भजन से । जैसे सन्त के लिए मृत्यु भय नहीं, आनन्द है, उसी तरह वह षरीरी, भोगी और स्वयं को अधिकारी स्वतन्त्र मानने वाला व्यक्ति जब दंडभय से दुखी होगा, तभी उसमें उसका सहज, सामाजिक, मांगलिक रूप अपने–आप प्रकट होगा । तब भय के स्थान पर उसमें मर्यादा आएगी । भोग के स्थान पर त्याग के संस्कार पैदा होगें ।

यह सुनकर हरिमोहन ने अपना भालूस्वरूप त्याग दिया । चिड़ियाघर में तहलका मच गया । हरिमोहन कठघरे से बाहर निकल आया ।

बैताल ने हरिमोहन के हाथ पकड़कर कहा – भय ही मनुष्य को भयमुक्त करता है । जो भयमुक्त है वही आधुनिक मनुष्य है । जिसके पास कुछ दिखाने को न हो, वही है आधुनिक ।

हरिमोहन रोने लगा ।

बैताल ने डांटकर कहा – भयमुक्त होकर ईष्वर के सामने खुलकर रोओ ।

हरिमोहन ने उस रूदन से गोइंठा सिंह दल–सहित वहां से भाग निकले ।

– तब बैताल ने पूछा – यहां इस तरह तुम्हें किसने रखवाया ?

– उसी दीनबन्धु और गोइंठा सिंह ने ।

– अब रोना बन्द करो ।

– बस, अब नहीं रोऊंगा ।

– उनकी योजना क्या थी ?

हरिमोहन ने बताया – ताकि आप भालू की मानव–बोली सुनकर बेहोष हो जाएं और आपको सदा के लिए गायब कर दिया जाए !

यह दंडनीति क्यों

चारों तरफ से खबरें आने लगीं – पंच चबूतरों और सावित्री आंगनों में अपराधियों को दंड मिलने लगे । भोगी, भ्रष्टाचारी, झूठे, पाखडी और हत्यारों को दंड–कराह से हाहाकार मच गया ।

विक्रम ने तब बैताल से पूछा – हे बैताल, इतनी कठोर दंडनीति क्यों ?

बैताल ने कहा – सुनो, ध्यान लगाकर विक्रम ! कोई भी समय, कोई भी मनुष्य बहुत दिनों तक जीवन, धर्म और मानव–आदर्षों के प्रति गंभीर और जिम्मेदार नहीं रह सकता । वह थोड़ी–सी ही गंभीरता, जिम्मेदारी के बाद खुलकर खेलना चाहता है । सम्पूर्ण इतिहास साक्षी है, समय और मनुष्य की इस बुनियादी प्रकृति और स्वभाव का । देखो, बुद्ध के बाद महायान । और ....

विक्रम ने टोक दिया – बैताल, आधुनिक युग से साक्ष्य दो ।

– लो ! ब्रह्मसमाज, और आर्यसमाज की गंभीरता और कठोरता के बाद फिर वही खेल–कबड्डी वाला सनातन धर्म–समाज । गांधी–युग की गंभीर अंहिसा, मानव–मूल्य, सत्य के बाद आज हिंसा, असत्य, अमानव मूल्यों की धकापेल, बुरा न मानो, होली है ।

विक्रम बैताल पांड़े का मुंह देखता रह गया ।

बैताल ने कहा – अंधी होली और खेल–कबड्डी अब फौरन खत्म हो, क्योंकि सारी मानवता अब घायल होकर कराह रही है, चारों तरफ एक करूण रागिनी बज रही है, इसलिए हे विक्रम ! परिवर्तन के लिए यह दंडनीति अनिवार्य है । दंडनीति में इतनी कठोरता इसलिए कि आज का भ्रष्ट–पतित मनुष्य तरह–तरह के जीव–जंतुओं और देवी–देवताओं की खाल अपने ऊपर ओढ़े हुए है । अतः हे विक्रम, जब तक उसकी खाल उधेड़कर उसे असली रूप में न पा लिया, तब तक नई रचना अंसभव है । ध्यान दो विक्रम, जैसे नया मकान बनाने के लिए जब उसकी नींव खोदी जाती है, तब पृथ्वी के भीतर उस असली मिट्टी की तह ढूंढ़ी जाती है, जो बहुत गहरे होती है ; जैसे फोड़ा और घाव को ठीक करने के लिए चिकित्सक पूरी निर्ममता से उस सारे सड़े–गले रक्तमांस को काटकर तब तक फेंकता चला जाता है, जब तक उसे असली स्वस्थ मांस की तह न मिल जाए । अतः याद रखो विक्रम ! जैसे अस्वस्थता से स्वास्थ्य बनता है, वैसे ही कठोरता से कोमलता–सौन्दर्य की नवसृष्टि होती है । देखो अपना वर्तमान समाज, यह एक सड़ता हुआ फोड़ा है .... देखो इसके पहनावे, इसके मनोरंजन, इसके सारे संस्कार और आचरण ! छीःछीः मत करो, नाक पर रूमाल मत रखो, उठाओ अस्त्र–षस्त्र, वीर अर्जुन ! यह फोड़ा तुम्हारा ही अंग है ।

उठो–उठो, जागो, बिगुल बज गया ।

सबके झंडे हवा में लहराने लगे ।

क्या हुआ भाई ?
आ गया आम चुनाव
अरे पांच साल बीत गए ?
और नही तो क्या
विकल्प दल की जय !
विक्रमादित्य जिन्दाबाद

चारों ओर से ये बातें हहराने लगीं । सारे प्रांतों के विकल्प दल, मानव–कल्याण केन्द्रों से ये प्रष्न पूछे जाने लगे कि आम चुनाव में विकल्प दल कितना, किस तरह, कैसे चुनाव लड़ेगा ?

विक्रमादित्य ने घोषणा की :

पहले नीति, फिर राजनीति
पहले नैतिकता, फिर राजनैतिकता
पहले सफाई,
फिर बोआई ।

विक्रम ने कई आदेष दिए । बैताल पांड़े ने उन आदेषों की कठोरता से पालन की विज्ञप्ति जारी की ।

पहला, किसी भी व्यक्ति की जै–जैकार या जिन्दाबाद के नारे नहीं ।

दूसरा, विकल्प दल का कोई भी सदस्य अभी इस चुनाव में हिस्सा नहीं लेगा ।

तीसरा, हर व्यक्ति मनुष्य है 'वोटर' नहीं ।

चौथा, अपना मत अभी सुरक्षित रखना है ।

पांचवां, हर प्रांत, हर जिला और नगर–गांव में जो भी नदी पवित्र मानी गई है, उसकी सफाई होगी । सफाई अभियान को धर्म–भाव से पालन करना होगा ।

गंगा मइया की सफाई

गमी के दिन । गंगा नदी में जल कम था । पतली धारा में गंगा को फिर से साफ और षुद्ध करने का अभियान छिड़ गया था ।

विक्रम ने कहा था – हमारी पवित्र नदियों को नगरों और बड़े–बड़े षहरों ने भ्रष्ट और गंदा कर रखा है । अतः नगरों और षहरों से सफाई का कार्य षुरू किया जाए ।

विक्रम, बैताल पांड़े, सुगनसुन्दरी के अलावा बस्ती के सुदामा सिंह, हरिमोहन, हंसराज महतो, सुदीहल चमार, हनमान धरकार, कानपुर के अलाउद्दीनखां, कन्नौज के मुनीर आलम, मथुरा के बजरंगी, इलाहाबाद के बेचन षर्मा, गोरखपुर के रघुवीर षरण मित्र; बंगाल के हुगली जिले की राधा बोस, मद्रास की उर्वषी मेनन, बम्बई की मिस सोनिया दंडवते, दिल्ली की नयनतारा, अहमदाबाद के सुरेष भटट्, पूना के महेष जोषी, बिहार के बांकेनन्दन सिन्हा, मध्यप्रदेष में जबलपुर की बीना माथुर, उज्जैन के रनवीर, राजस्थान में जयपुर के मोहन सिंह ; जोधपुर के कन्हाई पवार, हरयाना में गुड़गांव के षीतल चौधरी, कुरूक्षेत्र के अर्जुन सिंह, पंजाब में चंडीगढ़ के सरदार नानकसिंह, अमृतसर की सुरजीतसिंह, हैदराबाद की रूक्मिनी नारायन, बंगलौर के सदाषिव कारंत, त्रिचूर के महालिंगम, त्रिवेन्द्रम के षिवा नायर, कन्याकुमारी के केषवन के नेतृत्व में समस्त स्थानीय पवित्र नदियों की सफाई का वह महा अभियान प्रारंभ हुआ ।

सबसे पहले ज्यादा बल गंगा नदी की सफाई–आंदोलन पर दिया गया । गंगा के तट पर बसे समस्त षहरों में मानव–कल्याण, लोक–फौज और विकल्प दल के कार्यकर्ता, सत्याग्रही और दल के सिपाही छा गए । आसपास का अपार जनसमूह, कुछ हिन्दुत्व के नाम पर, कुछ धर्म की प्रेरणा से, कुछ तमाषा देखने के भाव से गंगा के तटों पर एकत्र हो गया ।

गंगा–सफाई अभियान का काम होने लगा । असंख्य कंठों से स्त्रियों के मंगल–गीत आकाष में गूंज उठे :

अंसुवन सुरूज मनैइबै
तबै गंगा मइया कै पइवै ।
ग ग ग
गंग तोरी लहर हमारे
मन भावे ।
ग ग ग
गंगाजी के तीर राजा हरिनवां मारें ।
ग ग ग
तर बहै गंगा उपर बहै जमुना रे
सुरसरि बहै बीच धार हे ।
ग ग ग

जननी बिनु राम अब ना अवध मां रहिबै
जेहि अवधा में गंगा बहतु है ।
सरजू बहित हैं
मंदिरा लागेला उदास
अब न अवध मां रहिबै ।
ग ग ग
माई रे गंगा जमुनवा के चिकनी मटिया
माई आनि देहु ना मइया गंगा कै मटिया
माई बनाय देहु ना राम सीता के मुरतिया .... ।

जनता एक ओर गंगा में पड़े, सड़े, धंसे, पटे सारी गन्दी चीजों को पानी से बाहर करती थीं, दूसरी ओर काफी संख्या में लोग नगर महापालिका, नगर अधिकारियों के कार्यालयों पर सत्याग्रह करने लगे कि नगर का कूड़ा–करकट, मलबा, मल, कारखानों की गंदी चीजें, षहर का विषपाप गंगाजल से दूर रखा जाए : जीवन के दूषण से गंगा मां को दूषित न किया जाए ।

एक ओर सत्याग्रह
दूसरी ओर गंगा की सफाई –
इस सम्पूर्ण अभियान से व्यवस्था घबड़ा गई ।
विपक्षी अखबारों में इसके खिलाफ षीर्षक दिए जाने लगे :
विक्रमादित्य पागल है ।
गंगा–सफाई अभियान जनता को धोखा देने का प्रयत्न है ।
विकल्प दल साम्प्रदायिक दल है ।
विकल्प दल प्रजातन्त्र का षत्रु है ।

विक्रम हर षाम को, सफाई का उस दिन का कार्य समाप्त होने के बाद, विभिन्न षहरों के गंगा–तट पर जनता से निवेदन करता :

राजनेता और षासन के भ्रष्टाचार का षिकार कौन होता है ? नीचे की प्रजा, सारा मनुष्य–समाज। ऊपर का दूषित जल जैसे विभिन्न नाले, नालियों, छोटी–छोटी नदियों, घाटियों और मैदानों से बहकर अंत में गंगा में आता है, ठीक उसी तरह ऊपर के सत्ताधारियों का, षासनतंत्र का झूठ, अन्याय, षोषण, अनैतिकता, भ्रष्टाचार, बहकर नीचे के मनुष्य–समाज के रक्त को विषाक्त और दूषित करता है । गंगा वही मनुष्य–जीवन है – इसके षुद्ध जल में, इसकी पवित्र धारा में जो मल, जो दुर्गंध, जो मलबा सैंकड़ों वर्षों से घुलता–पटता आया है, वही है आज का मनुष्य जीवन । इसे साफ–सुथरा करना, इसे फिर से षुद्ध और पवित्र करना हर मनुष्य का धर्म है ।

गंगा को कौन ले आया था पृथ्वी पर ? भगीरथ राजा । क्यों आई थी गंगा मां यहां ? सगरपुत्रों की असंख्य लाषें पृथ्वी पर सड़ रही थीं । उस सड़ान को, उस मृत्यु को गंगा ने छूकर पवित्र किया था। तब से इस गंगा में अन्याय, षोषण, अपराध और विनाष की जितनी लाषें सड़ रही हैं, उन्हें इस जल से बाहर करके मां को षुद्ध करना है । तुम सब, तुम एक–एक नागरिक – हिन्दू, मुसलमान, सिख, ईसाई, छूत और अछूत, दुखी और पीड़ित – वही भगीरथ हो । इक्ष्वाकु वंष के सगर के पौत्र, अंषुमान के पुत्र, दिलीप के वंषज। सगरपुत्र पाताल में अष्व को ढूंढ़ने गए और वहां कपिल मुनि की अवहेलना की । उनके क्रोध में सगर के असंख्य पुत्र भस्म हो गए । केवल तब गंगा ही ऐसी मां थी जो उनका उद्धार करती । दिलीप के पुत्र भगीरथ ने घोर तपस्या की । मां गंगा प्रसन्न हुई । पर उसने कहा – मैं पाताल–लोक से धरती पर जाऊंगी, तो पापी, अपराधी लोग अपना पपा मुझमें धोकर, मुझमें डालकर मुझे कलुपित करेंगे । आज यही हो रहा है । उठो, पवित्र करो अपनी मां को । इसका मैला आंचल धो डालो, बदल डालो वह सारी व्यवस्था, जो तुम्हारे पवित्र मन को, हृदय के जल को दूषित और भ्रष्ट करती है । देखो, गंगातट पर सगर के असंख्य पुत्र तुम्हें निहार रहे हैं । जल ईष्वर की प्रथम सृष्टि है । गंगा अनादि मां है इसे पृथ्वी पर ।

जिस दिन हम लोग अपनी इस मां से बिछुड़कर दूर कुहरे में चले जाएंगे, जिस दिन मृत्यु आकर हमारे षरीर को भीख मांगकर ले जाएगी उस दिन यही गंगा मां हमारे षव की राखों से फिर हमें जन्म देगी । हम हम सब लौटकर आएंगे, इस गंगा–जमुना के अंचल में, इसके पवित्र तट पर, नये मनुष्य के रूप में ; मांगुर, नैनी मछली के रूप में ; सारसमैना के वेष में, या सुबह का कागा बनकर कातिक में नवान्न करने ; कटहल, बरगद, आम की छाया में तब हम

गीत गाएंगे नई भारत मां के । तब इसी गंगा का षुद्ध, निर्मल जल हमें षुद्ध प्रजातन्त्र की सहज अनुभूति देगा । पहले षुद्ध जल, फिर षुद्ध मानव, तभी षुद्ध प्रजातन्त्र ।

गंगा का पुत्र–कौन था ?
भीष्म
भीष्म को महाभारत में किसने षरषय्या दी ?
अर्जुन ने षिखंडी के पीछे से
भीष्म पर बाण चलाए
तुम सब वही भीष्म हो
जीवन की षरषय्या पर
घायल पड़े हुए
हमें षिखंडी प्रजातंत्र
षिखंडी समाजवाद के पीछे से
मार गया ।

जंगल की आग किसने देखी

मंद, अज्ञानी, निरक्षर और न जाने कब की सोई हुई जनता–गंगा सफाई से जगने लगी । उसके कांपते हुए निर्बल हाथों में जैसे ही जीवन, राजनीति और धर्म का टूटा हुआ सूत्र इस अभियान से मिला, लोग आष्चर्य चकित हो गए ।

सत्ताधारी लोग, विपक्षी समाचारपत्रों में यह चिंता जग उठी कि आग से नहीं, जल से जंगल से आग लग गई ।

और इस आग को किसने देखा ?

सबसे अधिक गरीब–निर्धन गांव भुइंलोटनपुर के सबसे निर्बल, कमजोर, अंधविष्वासी, असहाय गोबर चमार और उसकी पत्नी बिपती ने ।

बिपती चमाइन ने गोबर चमार से कहा – सुनत हयौ महतो, आजुरात हमैं ऐसे लगा कि उहैं विकरमादित बाबू यहि हमरे पीपर के पेड़ पर आइ बैठे । हमें पुकारिन – सुनो महतिन, जरा हमरे पास तो आवो । हम पीपर पर चढ़िकै उनके पास पहुंचि गए ।

– बिकरमा बोले – अच्छा महतिन, आंख मूनि लेव ।

– हम आंख मूनि लेहन । चारों ओर अन्हेर ।

– बिकरमा बोले – महतिन, आंख खोलो ।

– हमार आंख खुलि गै । देखन कि हमारी मड़ई मां आग लगी है । वही आग बढ़िकै पूरे गांव–भर में फैलिगै । ठाकुर की बखरी, लाल की खपरैल, कुर्मियाना टोले की छपरहिया में आगै आग । सारा गांव स्वाहा । फिर सारे खेतन में आग ।

फिर का देखन कि बिकरमा बाबू की फौज आई । मुला अपनी फौज को बिकरमा ने भगा दिया ।

– फिर का देखन कि बिकरमा बाबू अपनी तिरिया – सुगना के साथ सिवान में आय खड़े हुए । बोले –

जै गंगा मइया की
सब की एक झोंपड़ी
सबका एक खेत
जो न मानै
उसे लगाओ बैंत ।

सो हम का देखन कि हमरे महतो हाथ में बेंत लिए गांव में खड़े हैं – सबके लिए एक–एक झोंपड़ी बन रही है – खुद सारे गांव वाले मिलिकै बनाय रहे हैं । गांव की सारी जमीन, सारे खेत को सारे लोग जोत–बोय रहे हैं । मेड़न पर खड़े बिकरमा और ओनकै मेहरारू के साथ हम पंचन गाइ रहे हैं:

सब कुछ भगवान का

सब है समाना ।
सबका दुख–सुख
सब बांटि खाना ।
गंगा के तीरे–तीरे बौइलों मैं राई
राजा कै हरिनवां चरि–चरि जाईं ।
राजा कैं तीर मारो हरिना लो खाई
गंगा के तीरे–तीरे बोइलों मैं राई ।

गोबर चमार को बहुत दिनों बाद हंसी आई । आज गोबर को बिपती ने महतो कहा है । आज बिपती खुद महतिन बन गई है ।

बिपती ने तब पूछा – मुला महतो, का ई कभौं सच होई ?

– होई काहैं ना ।

– कैसे होई ? हम पंचन एतना कमजोर, इतना दरिदर, बड़कवा लोग एतना ताकतवर, एतना धनी–सम्पन्न ।

तब गोबर के मुंह से एक किस्सा फूटा ।

किस्सा
चिड़िया और सांड़ का

पूरा चमार टोला पीपल के नीचे बैठा हुआ गोबर चमार का किस्सा सुन रहा था :

एक गांव था । गांव में एक हरा–भरा खेत था । उस खेत की मिट्टी इतनी बढ़िया थी कि उसमें सब तरह की खूब फसल पैदा होती थी ।

वह खेत था उस गांव के सबसे ज्यादा एक गरीब का ।

उस खेत के मेड़ में एक चिड़ा और चिड़िया का घोंसला था । उस गांव में एक धनी बलवान ठाकुर था । उसका छोड़ा हुआ एक सांड़ रहता था उस गांव–जवार में । वह खुलकर सबके खेत चरता था । कोई न उस सांड़ को मार सकता था न ठाकुर से उसकी षिकायत कर सकता था ।

चिड़ा और चिड़िया ने दो अंडे दिए । एक दिन सांड़ आया और चिड़ा के दोनों अंडे कुचल गया।

चिड़ा–चिड़िया बहुत रोए । उस गरीब के पास गए । सांड़ के अत्याचार की षिकायत की । गरीब बोला – ठाकुर का सांड़ है, मैं क्या कर सकता हूं ! सांड़ तो मेरी भी फसल का नाष कर देता है। मैं किससे क्या कहूं ?

चिड़ा–चिड़िया उदास लौट आए । कुछ दिनों बाद चिड़ा–चिड़िया ने फिर दो अंडे दिए । सांड़ ने फिर उन अंड़ों को कुचल डाला ।

ऐसा कई बार हुआ । तब चिड़िया ने चिड़ा से कहा – चलो, यहां से कहीं और किसी खेत में घोंसला बनाएं और अंडे देकर बच्चे पैदा करें । हम लोग अब वृद्ध हो रहे हैं और अब तक हमारे कोई बाल–बच्चा नहीं ।

चिड़ा गंभीर हो गया । सोचता रहा । फिर बोला – अब दो अंडे, मैं सांड़ को मारने का कोई उपाय करता हूं ।

चिड़िया हंस पड़ी – कहां चिड़ा और कहां सांड ! तुम भला कैसे मारोगे सांड को !

– देखना, मैं क्या करता हूं ।

चिड़िया ने फिर दो अंडे दिए । सांड़ आया गरीब की फसल चरने । चरते–चरते जैसे ही सांड़ अंडों के पास आया, चिड़ा तेजी से उड़कर सांड़ की नाक में घुस गया । सांड़ लगा नथुना पीटने । पर चिड़ा तो नथुने के भीतर घुसता हुआ उसके सिर के भी भीतर समा गया ।

सांड़ लगा चीखने–चिल्लाने । बेहोष होकर गिर गया और चारों पैर पटक–पटककर मर गया ।

चिड़िया के अंडे से दो बच्चे निकले – एक चिड़ा और एक चिड़िया । वे दोनों बच्चे धीरे–धीरे बड़े होने लगे । चिड़िया मां अपने स्वर्गवासी पति चिड़ा के लिए दिन–रात रोती रहती ।

एक दिन नन्हे चिड़ा ने कहा – मां, पिताजी ने मुझे यह कहने के लिए भेजा है कि दुष्मन कैसा भी हो, वह मारा जा सकता है ।

इस बात को सुना उस गरीब ने । गरीब ने जाकर पूरे गांव से कहा । गांव से वह बात फैलते–फैलते ठाकुर के पास पहुंची ।

ठाकुर वह गांव छोड़कर भाग गया ।

21

आमचुनाव के दिन नजदीक आ रहे थे । विकल्प दल की सारी षक्ति देष–भर की पवित्र नदियों की सफाई में लगी हुई थी ।

लोक–फौज अपना काम कर रही थी ।

मानव–मंगल केन्द्र अपने पथ पर पूरी षक्ति और उत्साह के साथ चल रहे थे । पंच चबूतरों और सावित्री आंगनों में लोग असत्य से सत्य की, अन्याय से न्याय की प्रतिष्ठा में लगे थे ।

यथार्थपरक राजनीति मानव–कल्याण–नीति को व्यवहार में ला रही थी ।

सुगनसुंदरी ने तभी एक दिन अपनी लाल रंग की चुनरी के आंचल पर एक युवक किसान और युवती छात्रा की उमंग–भरी तेजस्वी छवि अंकित की । दोनों के दायें हाथ एकसाथ आसमान में तने हुए हैं । उन हाथों में है एक रक्त कमल । युवक के बायें हाथ में है मषाल, युवती के हाथ में है गीता ।

झंडा ऊंचा
रहे हमारा

पूरे भारतवर्ष में विकल्प दल का वह रक्तकमल झंडा लहरा गया । तभी राजनीतिक दल आने वाले आम चुनाव में विकल्प दल की सहायता–समर्थन के लिए विक्रम बैताल पांड़े और सुगनसुन्दरी के आसपास दौड़ने लगे ।

यही नहीं, विकल्प दल के भी मुख्य प्रतिनिधि लोग विक्रम से आग्रह करने लगे आमचुनाव में खड़े होने के लिए ।

उत्तरप्रदेष से गोरखपुर केन्द्र के रघुवीरषरण मित्र, बस्ती के सुदामा सिंह, इलाहाबाद के बेचन षर्मा, महाराष्ट्र के दिलीप देसाई, गुजरात के मोहन भट्ट, राजस्थान के अनूप सिंह, हरयाना के दलजीत चौधरी, पंजाब के गुरूनाम सिंह, दिल्ली की पद्मा खन्ना, मध्यप्रदेष के नंदूराव, आंध्रपदेष के आनन्द रेड्डी, तमिलनाडू के जे0 के0 कृष्णमूर्ति, केरल की पद्मिनी मेनन, बिहार के सकलदीप सिन्हा, बंगाल के अमिताभ बन्दोपाध्याय, मैसूर के षंकरन, आसाम के नीलकांत चौधरी, उड़ीसा के रानू पटनायक और हिमाचल प्रदेष तथा जम्मू–कष्मीर के जसबीर सिंह, षेखू करीम का सामूहिक प्रतिनिधि–मंडल आया विक्रम के पास, यह आग्रह करने कि विकल्प दल को आम चुनाव लड़ना चाहिए । विकल्प दल की पचास प्रतिषत विजय पूरे भारतवर्ष में निष्चित है ।

विक्रम ने कहा – विकल्प अधूरा नहीं, सम्पूर्ण दिया जाना चाहिए । अभी हमारा काम आधा हुआ है । इसे पूर्णता देने के लिए हमें अभी पांच वर्षों की कठिन साधना और तपस्या करनी है जनता के साथ।

हरयाना के दलजीत चौधरी ने कहा – जनता के पास अब और धीरज नहीं है ।

बैताल पांड़े ने डांटा – यह क्यों नहीं कहते, तुम्हारे पास धैर्य नहीं है । तुम्हें झटपट विधानसभा और लोकसभा में कुर्सी चाहिए । यह समझ लीजिए, विकल्प देने का मतलब केवल चुनाव लड़ना नहीं है। मनुष्य में जीवन की नई दृष्टि, साहस और नया विष्वास पैदा कर, उसीके द्वारा विकल्प आएगा । विकल्प बाहर से आरोपित नहीं होगा, वह मनुष्य और समाज से उपजेगा ।

पर प्रतिनिधि मंडल अपने सबल तर्कों से चुनाव लड़ने की इस सच्चाई को सामने रख रहा था कि जनता स्वयं चुनाव चाह रही है । विकल्प दल के माध्यम से हमारा समाज नई षासन व्यवस्था, सच्चे लोकतन्त्र के स्वप्न देख रहा है । जो श्रेष्ठ जीवनतत्त्व उसमें इतने वर्षों के भीतर मरा था, वह फिर से जी उठा है । कांग्रेस दल की भी तुलना में विकल्प दल ....

विक्रम ने बीच ही में टोक दिया– मत करो किसीसे अपनी तुलना । तुलना गरीबी पैदा करती है। केवल विरोध करो, संघर्षमय विरोध .... इसीसे मनुष्य और उसकी मानवता पैदा होती है ।

स्त्री क्या
नहीं कर सकती

लालगंज गांव में थे एक नेउर बाबा – अस्सी साल की उमर । गजब के जिभ–चटोर । लंठ पुरनियां । हर वक्त बिना दांत के ही–ही–ही–ही । नसेरी–भंगेड़ी ।

सो नेउर बाबा ने सबकी आंख बचाकर गांव में आय टिके प्रतिनिधिमंडल के दो सदस्यों को अलग ले जाकर कहा – ऐ बबुआ, आप लोग इतने–इतने दूर–दूर देस–मुलूक से हमरे गांव में आए हैं, सो अच्छा नहीं लगता कि आप यहां से उदास–निराध लौट जाएं । ई हमारी बेइज्जती है । सो ऐसा करो बबुआ, वह कहावत तो याद है न, अरे वही जो तुलसीदास ने कहा है :

का नहिं अबला करि सकै
का न समुद्र समाय
का नहिं पावक जलि सकै
काल काहि ना खाय ।

तो हे बबुआ, तुलसीदसवा ने नारी को अबला कहा है और अबला किसके बराबर है ? समुद्र के, अग्नि के और काल के । तो भइया, नारी अबला है, यही भगवान की कृपा है, अगर वह सबला हो गई तो हे भगवान, भगवान ही बचावै ।

यह कहकर नेउर बाबा ही–ही–ही–ही हंसने लगे । पिच्च से थूककर फिर बड़े ही रहस्यमय स्वर में बोले – बबुआ, मेरा नाम मत बताना, वरना मारा जाऊंगा । ऐसा करो, जो बैताल पांड़े की पंड़ाइन है न, उनके पास सिर्फ तीन जने चले जाव चुपचाप । पंड़ाइन के पैरों पर धड़ाम से गिर जाओ, फिर देखो तमाषा, जो मांगो बरदान :

पार्वती खड़ी लिए निदान
पंड़ाइन आ रा रा रा रा ।

नेउर बाबा की खी–खी खी–खी वाली हंसी फूट पड़ी । हंसी समाप्त करके नेउर बाबा ने आषीर्वाद दिया – जाओ, काम पूरा होगा । – बैताल पांड़े पहले खटकिल्ल करता था । बड़ा लवलंग था। अब पता नहीं का हो गया उसे, बड़ा बमकता है साला । लगता है सचमुच गंभीर हो गया है । उसकी सारी भाषा–बोली बदल गई । सत्यानास हो गया ससुरे का ।

लोग जाने लगे तो नेउर बाबा ने कहा –ऐ बबुआ, जाते समय मेरे लिए थोड़ा गांजा–भांग का प्रबन्ध कर दीजिएगा तो चौचक्क है, वरना बमभोले तो हई है । सब कुछ चाक–चौबन्द उन्हींके हाथ है भइया ।

नेउर बाबा के बताए हुए उपाय अनुसार, उत्तरप्रदेष, बस्ती के सुदामा सिंह, हरयाना के दलजीत चौधरी और गुजरात के मोहन भट्ट – ये तीनों सज्जन अंधेरा होते–होते बैताल पांड़े के घर के पिछवारे मकोइया की झाड़ी में जा छिपे ।

पहर–भर रात जाते–जाते घर के भीतर से चमकती हुई निकली पंड़ाइन – घर के पिछवारे । वे तीनों सज्जन आकर फाट पड़े पंड़ाइन के चरणों पर ।

पंड़ाइन के मुंह से निकला – खुष रहो, आषीर्वाद । अरे आप लोग इहां कइसे ?

– आप ही के षरण आए हैं माताजी ।

– हां, हां, बोलो–बोलो, क्या है मनोरथ ?

– माताजी, बस चुनाव करा दीजिए । समय बिलकुल अनुकूल है । आप ही यह काम करा सकती हैं ।

पंड़ाइन खुष । चाक–चौबन्द दुरूस्त । पंड़ाइन के मुंह ने निकला – हां, ठीक भी है :

कल करे सो आज कर
आज करे सो कल
पल में परलय होत है
क्या आज क्या कल !

उसी दम पंड़ाइन गईं सुगनसुन्दरी के पास, जैसे रामायण में मंथरा गई थी कैकेयी के पास । साक्षात् सरस्वती आकर बैठ गई थी पंड़ाइन की जिह्वा पर ।

रात–भर दोनों अबलाएं एक कमरे में परस्पर लड़ती रहीं, वाद–विवाद करती रहीं । यहां तक कि पंड़ाइन रोती–गाती भी रहीं । और प्रातःकाल होते–होते पंड़ाइन की विजय हुई ।

सुगनसुन्दरी ने जाकर विक्रम से कहा । विक्रम दौड़ा हुआ बैताल पांड़े से मिला । बैताल पांड़े गरजे – हम

चरित्रवान पुरूष हैं । हम संघर्ष कर रहे हैं । हम एक संकट की घड़ी से गुजर रहे हैं, ऐसे वक्त हमें इन औरतों की बात पर ध्यान नहीं देना चाहिए ।

विक्रम समझाने चला तो पांड़ेजी तनतनाकर बोले – आप इस मामले में चुप रहिए । मुझे मालूम है .... स्त्री आपके लिए हमेषा निर्बलता रही है । पर मैं जानता हूं, यह अबला लोग क्या हैं ?

बैताल पांड़े अपने घर पहुंचे । गुस्से में चूर । आवेष में चिल्लाए – तेरी यह हिम्मत !

पंड़ाइन ने सोचा, अब और कोई उपाय नहीं है, सो वह पिछवारे जाकर उसी मकोइया की झाड़ी के पास लगी रोने ।

फिर तो क्या था !

पंड़ाइन का विलाप सारे गांव–घर में गूंज उठा । पांड़े का क्रोध और बढ़ गया । दौड़ा हुआ विक्रम आया । पांड़ेजी पूरे आवेष में अपने पूरे घर का चक्कर लगाते हुए मानो पहरा दे रहे थे । पांड़ेजी ने विक्रम को रोकते हुए कहा – आप पंड़ाइन के पास नहीं जा सकते । वह कितनी चतुर और खतरनाक स्त्री है, आपको नहीं पता ।

– भाई, वह भाभी है, जो कुछ भी हो । बाहर से आए हुए लोग सुनेंगे तो क्या कहेंगे ?

विक्रम फिर बोला – सुनो विक्रम, मैं आधुनिक पुरूष हूं – मेरे पास किसीसे कुछ भी छिपाने को नहीं है ।

बैताल को अपने रास्ते से हटाकर विक्रम पंड़ाइन के पास गया – भाभीजी, चुप हो जाइए । ठीक है, चुनाव होगा !

बैताल पांड़े चिल्लाए – विक्रम ? यह तूने क्या किया ?

विक्रम बोला – करने वाला कोई और है ।

– पर यहां तो सरासर स्त्री है सामने ।

– हां मित्र ! इस स्त्री के ही कारण तो सब कुछ होता है । यही महाभारत कराती है, यही रामायन । अगर स्त्री जाति न होती तो मनुष्य की न कोई मानव–संस्कृति होती, न कोई सभ्यता जन्म ले पाती ।

– चुप रहो !

– यही विकल्पदात्री है बैताल, षांत हो !

हरा समन्दर
अन्दर
गोपीचन्दर

विक्रम चुनाव लड़ने की घोषणा करता है । पूरे भारतवर्ष में विधानसभा और लोकसभा की सारी सीटों पर विकल्प दल के उम्मीदवार खड़े होते हैं ।

विक्रम अपने चुनाव के घोषणा–पत्र में कहता है – भारत की धरती में, इसके जनमानस में जितनी सहनषक्ति है उतनी दुनिया के किसी भी और हिस्से में नहीं है । मैं इसी धरती पर माथा झुकाकर कहता हूं – कांग्रेस सरकार ने राष्ट्रहित, मानव–कल्याण–हित, अनेक कार्य किए, अनके महत्त्वपूर्ण फैसले लिए । लेकिन हुआ क्या ? वह मनुष्य कहां है जो उन कार्यों और फैसलों को कमरूप देता ? विचार सुन्दर थे, पर व्यवहार में क्या हुआ ? पष्चिम की नकल का भोगवाद, दूसरों से उधार लिया हुआ समाजवाद, केवल नौकरषाही तंत्र पर खड़ा इस देष का प्रजातन्त्र कितना खोखला और बेमानी है ! यहां के राजनेता, पूंजीपति और अमला तन्त्र – इन तीनों ने मिलकर अर्थ और समाज की जो दीवारें बनाई हैं, उन्हें पहले तोड़कर ही तब कोई बुनियादी काम हो सकता है । वह अंधा समन्दर, जो सारे प्रकाष को चुपचाप पी लेता है, उसे सुखाकर, पाटकर ही वह नया वृक्ष लगाया जा सकता है – जिसकी जड़, निचला भाग मजबूत हो ।

यह कार्य केवल विकल्प दल से ही संभव है – विकल्प के अर्थ हैं – विरोध, सतत मानवीय विरोध, सतत राजनीतिक संघर्ष ।

विकल्प दल का वह चुनाव क्या था, दरअसल आम चुनाव था ।

चुनाव में खड़ा हुआ विकल्प दली अपने क्षेत्र के एक पंच चबूतरे पर अंखड मौनव्रत लिए बैठा रहा। षेष सारी जनता अपने उस प्रतिनिधि का चुनाव अपने–आप लड़ती रही ।

अन्य राजनीतिक दलों ने जहां हजारों–लाखों रूपये खर्च किए, कांग्रेस दल ने जहां लाखों–करोड़ों रूपये चुनाव

लड़ने में फूंक दिए, वहां विकल्प दल को एक पैसा भी न खर्च करना पड़ा ।

चारों तरफ विकल्प दल की पचास प्रतिषत विजय हुई ।

महाराष्ट्र, बिहार, उत्तरप्रदेष, मध्यप्रदेष और हरयाना में विकल्प दल के साथ कांग्रेस की संविद सरकारें बनीं । लोकसभा में संकटमय अल्प–बहुमत से कांग्रेस सरकार बनी ।

फीता और तौलने की मषीन

विक्रम देष–भर के पंच चबूतरों पर पेट नापने का एक फीता और वजन तौलने की एक मषीन रखवाता है । सरकार में आए प्रत्येक विकल्प दल के मंत्री, उपमंत्री, तथा विधानसभा ओर लोकसभा में गए हुए प्रत्येक एम0 एल0 ए0 और एम0 पी0 को हर सप्ताह अपने पंच चबूतरे पर जाना पड़ता है । पंच लोग फीते से पेट नापते हैं और मषीन से उनके वजन लेते हैं ।

लोक–फौज के नौजवान उनके घरों में बना खाना खाते हैं । उनके कपड़ों, नाते–रिष्तेदारों और घर–परिवारों पर कड़ी निगाह रखते हैं ।

कहीं कोई एक मोटी रोटी और एक मोटे कपड़े से ज्यादा तो नहीं भोग रहा है । अगर कहीं किसीने विकल्प दल की मर्यादा तोड़ी, तो वही बैताल पांड़े की दंडनीति के अनुसार सजा ।

एक दिन गृह उपमंत्री सुदामा सिंह धर लिए गए । बस्ती के दीनबंधु ने लखनऊ के एक होटल में सुदामा सिंह की षानदार दावत की और तस्करी के एक मामले में उन्होंने दीनबंधु से पचास हजार रूपये लिए ।

लोक फौज के पचास युवकों ने सुदामा सिंह का घेराव कर लिया । पुलिस की सहायता से सुदामा सिंह भाग निकले और विधानसभा में विकल्प दल को छोड़कर कांग्रेस में जा मिले ।

इस अनैतिक, अप्रजातांत्रिक सवाल पर विक्रम ने आमरण अनषन षुरू किया । तीन दिनों के भीतर ही सारा उत्तरप्रदेष कांप उठता है । और सुदामा सिंह को मंत्रिपद से इस्तीफा देना पड़ता है ।

अब विक्रम उन सब मानव–कल्याण योजनाओं को क्रियान्वित करना चाहता है जिनमें वह पहले विफल रहा है ।

जनता की सतर्कता–समितियां बनती हैं । लोग अपने क्षेत्रों में विकास के काम का जिम्मा उठा लेते हैं ।

पांच वर्ष बाद अगला आम चुनाव आता है । विकल्प दल पूरे देष में काफी बहुमत से विजयी होता है । केन्द्र और प्रांतों में विकल्प दल की सरकार बनती है ।

विकल्प दल एक राष्ट्रीय मोर्चे के रूप में देष के सामने आता है । सारा मुल्क एक राष्ट्रीय विकल्प का दर्षन कर आनन्द–विभोर हो जाता है – एक स्थिर और स्थायी विकल्प, एक स्वच्छ और आदर्षप्रिय विकल्प, एक षुद्ध भारतीय मनीषा के अनुरूप लोकतंत्रात्मक और उदार विकल्प ।

तभी बिहार, उत्तरप्रदेष और गुजरात में भयंकर अकाल आता है, तो सारा देष और समाज बढ़कर उस अकाल से राष्ट्रीय स्तर पर लड़ता है और कहीं एक भी व्यक्ति भूख या अभाव से मरने नहीं पाता ।

फिर महामारी आतीी है तो देष–भर के डाक्टर, चिकित्सक, मेडिकल कालेजों के तमाम छात्र सेवा–मदद के लिए फट पड़ते हैं । सर्वत्र निःषुल्क चिकित्सा, मुफ्त में दवाइयां दी जाती हैं ।

पांच वर्षों में सारा देष हर मामले में स्वावलम्बी, आत्मनिर्भर हो जाता है । जनता में एक नया विष्वास, एक नया मानव–आदर्ष जगता है ।

फिर अगला आम चुनाव आता है, तब विक्रम सम्पूर्ण राष्ट्र के नाम संदेष देता है :

हे प्यारे देष, हे मेरे करूण देष,
अब दूसरा अधिकार–पत्र
विकल्प दल को मत देना
कोई भी राजनीतिक दल
लगातार सत्ता में रहने से
कहीं भ्रष्ट–नष्ट न हो जाय
इसलिए अब जरूरी है
किसी विरोधी दल को

अपना पुण्यमय अधिकार–पत्र देकर
उसके नये हाथों में सत्ता सौंप दो
विकल्प दल ने षासन और समाज को
स्वच्छ और सुन्दर बनाया
अब विकल्प दल को स्वच्छ और सुन्दर
बनाए रखने में
सारा देष उसकी मदद करे
इस बार विकल्प दल को सत्ता मत दो
अपना अधिकार–पत्र किसी नये विकल्प को दो
सुनो, सुनो, मेरे करूण देष,
राजनीति न बुनियादी तौर पर
एक अनैतिक धारणा है
न ऐसा कार्यक्षेत्र
जो बुनियादी मानव मूल्यों से रिक्त है !

सारे मुल्क में तहलका मच गया । देष–भर के विकल्प दल के नेता और प्रतिनिधियों ने विक्रम को आ घेरा । देष–विदेष के तमाम पत्रकार, प्रेस–फोटोग्राफर्स, टेलीविजन कैमरे से लैस लोगों की भीड़ लालगंज गांव में उमड़ पड़ी ।

विक्रम अपने गांव के उसी विक्रमादित्य के ऊंचे टीले पर खड़ा होकर घोषणा करता है :

अगर फिर मेरी सरकार बनी
तो मैं उसके विरोध में
खड़ा होऊंगा
और घर–घर अलग जगाऊंगा
तुम्हारी स्वतन्त्रता छीनने
लोकतंत्र से हमारा विष्वास लूटने ।
सुनो सुनो !
जो था अब तक मिला उसे फिर खोजना होगा
क्योंकि हारे प्रतिपक्षी फिर से जी जाते हैं
संघर्षों पर एक बार जय पाना नहीं अलम् है
निष्फल जीवन के समक्ष वे बार–बार आते हैं ।

धीरे–धीरे वहीं टीले पर संध्या उतरने लगी ।

विक्रम वहीं टीले पर अब मौन–चुपचाप खड़ा था । एकाएक विक्रम के पास सुगनसुन्दरी आकर खड़ी हो गई – कंधे से कंधा मिलाए ।

फिर दोनों जैसे एक ही कंठ से गाने लगे :

आओ चलें वहां
जहां पर अब तक कोई गया नहीं है
दस्तक दें उस दर पर
जिसकी कुंजी यहां नहीं है ।

सारी भीड़ उस संगीत में आनन्द–विभोर थी । लोगों ने फिर देखा, विक्रम सुगनसुन्दरी से कुछ बातें कर रहा है । टीले से नीचे उतरकर विक्रम बैताल पांड़े से बातें करने लगता है ।

सारे लोग विक्रम को घेरे खड़े हैं : भीड़ बढ़ती चली जा रही है । हर आदमी विक्रम को देखना चाहता है । उससे कुछ प्रष्न करना चाहता है ।

सहसा षोर मचता है – कहां गया विक्रम ? विक्रम कहां है ?

लोग पेड़ों पर चढ़–चढ़कर उसे ढूंढ़ने लगते हैं । हरएक घर में लोग उसे तलाषते हैं । लोग बैताल पांड़े से पूछते हैं ।

गांव के वही नेउर बाबा तब लोगों को बताते हैं – अरे बबुआ, वह आदमी नहीं, बन्दर था । कहीं किसी पेड़ पर

जा छिपा होगा । उसका क्या, कहीं भी आ–जा सकता है ।

सहसा षोर मचा, गांव के पूरब–पष्चिम सिवान में । लोग उसी दिषा में दौड़ रहे हैं । कार्यकर्ता, पार्टी के लोग, पत्रकार, विद्यार्थी, रेडियो–टेलीविजन आदि के लोग उसी ओर भागे जा रहे हैं ।

चारों ओर भगदड़ । षोर ।

भीड़ में लोगों की जबान पर केवल एक ही प्रष्न –

क्या हुआ ? क्या देखा ? किसने क्या देखा ?

अचानक एक आदमी की कांपती हुई आवाज सुनाई पड़ने लगी – मैंने .... मैंने उसे देखा, वह क्षितिज को छूने .... नहीं–नहीं, पकड़ने दौड़ रहा था । दौड़ता चला जा रहा था । अकेला । दौड़ता । क्षितिज को पकड़ने । मैं उसे देखकर बेहद चिंतित और दुखी होता चला गया । मैं उसके पीछे चिल्लाया – सावधान, यह गैरमुमकिन है । यह कभी भी संभव नहीं ।

सहसा सुगनसुन्दरी बोल पड़ी – पर उसने उत्तर दिया – 'नहीं, तुम झूठ बोलते हो ।'

और वह अपनी उसी दिषा में दौड़ने लगा ।

हर झोंपड़ी, हर घर–परिवार में एक थाली विक्रम के लिए परोसकर रख दी जाती है । वह किसी भी समय कहीं भी आ सकता है ।

जहां कहीं भी अन्याय–अपराध होने लगता है, लोगों के मुंह से निकलता है – देखो–देखों, वह विक्रम आ रहा है । ,

दफ्तरों, कार्यालयों, विद्यालयों, खेत–खलिहानों, उद्योगगृहों, विधानसभाओं और लोकसभा में एकाएक सुनाई पड़ता है – हे, विक्रम को क्यों मारते हो ?

रास्तों, बाजारों, मेलों, रेलगाड़ियों में लोग बातें करने लगते हैं – देखो, देखो, विक्रम अभी इधर से ही तो गया है – देखो, उसके पदचिह्न !

पंच चबूतरों और सावित्री आंगनों में, समस्त मानव–कल्याण केन्द्रों में स्त्री–पुरूष कहते हैं – विक्रम के लिए यहां बैठने की जगह रखो ।

●

● ●